Registered with the Registrar of Newspaper for India
R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946
94251-01132

Supported by:
Ksaan Helpline
+91-7415538151

मध्य भारत कृषक भारती

READ FOR ONLINE EDITION
Website: www.krishakbharti.in
E-mail: bhartikrishak75@gmail.com

ISSN-2582-5976

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली मासिक पत्रिका

वर्ष-19 अंक-06 ग्वालियर, सितम्बर -2024 मूल्य 30 रुपए

गुजरात के राज्यपाल आचार्य श्री देवव्रत ने कहा-

देश को प्राकृतिक किसान की जरूरत

गुजरात के राज्यपाल आचार्य श्री देवव्रत ने कहा कि गांव का पैसा गांव में और शहर का पैसा गांव में आएगा तब किसान समृद्ध होगा और यह प्राकृतिक खेती के जरिए संभव है। देश को फैमिली डॉक्टर की नहीं, प्राकृतिक किसान की जरूरत है। रासायनिक खेती ने पूरे भारत की धरती को बंजर बना दिया है। हमारे देश में आने वाले दस सालों में कैंसर का भयंकर विस्फोट होने वाला है। घर-घर बीपी, शुगर के मरीज हो गए हैं। लिहाजा हमें रासायनिक और जैविक खेती की जगह प्राकृतिक खेती को अपनाने की सख्त जरूरत है। यह बात राज्यपाल आचार्य श्री देवव्रत ने स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय में प्राकृतिक खेती पर चल रही राष्ट्रीय संगोष्ठी के समापन समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में कही।

मध्यप्रदेश को एक बार फिर मिला

"सोया प्रदेश" का ताज

मध्यप्रदेश ने सोयाबीन उत्पान में अपने निकटतम प्रतियोगी राज्यों महाराष्ट्र और राजस्थान को पीछे छोड़ते हुए फिर से 'सोयाबीन प्रदेश' बनने का ताज हासिल कर लिया है। भारत सरकार के जारी ताजा आंकड़ों के अनुसार मध्य प्रदेश 5.47 मिलियन टन सोयाबीन उत्पादन के साथ पहले नंबर पर आ गया है। देश के कुल सोयाबीन उत्पादन में मध्यप्रदेश का योगदान 41.92 प्रतिशत है।

छत्तीसगढ़ उद्यानिकी एवं प्रक्षेत्र वानिकी को उत्कृष्ट प्रदर्शनी के लिए मिला प्रथम पुरस्कार

नई दिल्ली के भारत मण्डपम में आयोजित राष्ट्र स्टार की प्रदर्शनी एग्रीटेक इनोवेट इंडिया में छत्तीसगढ़ उद्यानिकी एवं प्रक्षेत्र वानिकी को उत्कृष्ट प्रदर्शनी के लिए प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ है। कृषि विकास एवं किसान कल्याण मंत्री राम विचार नेताम ने स्टॉल प्रदर्शनी में प्रथम स्थान प्राप्त करने के लिए बधाई और शुभकामनाएं दी है। उद्यानिकी विभाग के संचालक जगदीशन एस. के मार्गदर्शन में उद्यानिकी एवं वानिकी कृषकों की सफलता की कहानी पर आधारित प्रदर्शनी लगाई गई है।

श्री गणेशाय नमः

श्री सॉवलिया सेठ

किसान कृषि सेवा केन्द्र

Gmail
Kisankrishisevakendramanasa@gmail.com

7692967419 9109726855

हमारी सेवाएँ:-

सभी तरह के उन्नत बीज- अश्वगंधा, अकरकरा, कलौंजी, तुलसी, केमोमाईल, चिया, जीरा, हल्दी, सौंप, सर्पगंधा, तरबूज एवं सभी प्रकार की सब्जिया एवं फुलो के बीज, कृषि दवाईया, उर्वरक, वर्मी कम्पोस्ट यूनिट, अजोला यूनिट, किसान के घर पर तैयार वर्मी कम्पोस्ट, जैविक खेती से संबंधित सभी कार्य, सभी फसलो के फोरोमेन ट्रेप, सोयाबीन स्पाईरल ग्रेडर,कृषि एवं किसान संबंधित समस्त प्रकार के ऑर्डर की विश्वास पूर्ण, पूर्ति करना हमारा परम ध्येय है।

कृषि विभाग एवं उद्यानिकी विभाग संबंधित सभी योजनाओं के पंजियन किए जाते है।

उन्नत किस्म के नर्सरी के पौधे, मासिक, साप्ताहिक कृषि साहित्य सभी प्रकार की पत्रिका उपलब्ध है।

स्थान- पुराना टॉकीज, एल.आई.सी. ऑफिस के सामने, रामपुरा रोड़ मनासा जिला नीमच (म.प्र.) 458110

An ISO 9001:2008 Certified Company

कृषि दर्शन®
खेत-खलिहान का राजा

1988 से भारतीय किसानों की सेवा में...

थ्रेशर 35HP हापर मॉडल

हडम्बा कटर थ्रेशर

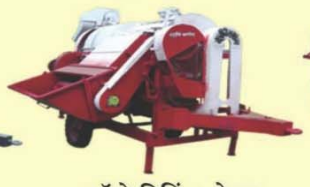
ऑटोफीडिंग थ्रेशर

मक्का थ्रेशर

मिनी कम्बाईन थ्रेशर

रेज बेड सिड ड्रील

स्प्रे पंप 500 लि. गन बूम मॉडल

मोटर लिफ्टर

कृषि दर्शन® पाटीदार उत्पाद
सुदर्शन इण्डस्ट्रीज

विक्रम नगर मौलाना, बड़नगर, जिला-उज्जैन-456771 (म.प्र.)
फोन : 07367-262235, मोबा.: 09827078882

वेब : www.krishidarshan.com, ई-मेल : krishidarshan@rediffmail.com

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

सूक्ष्म कणों से पैदा होने वाले जानलेवा प्रदूषण में गिरावट

यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो के एनर्जी पॉलिसी इंस्टीट्यूट की हालिया वार्षिक रिपोर्ट 'वायु गुणवत्ता जीवन सूचकांक-2024' बताती है कि भारत में साल 2021 की तुलना में 2022 के वायु प्रदूषण में 19.3 फीसदी की कमी आई है। हालांकि, यह उपलब्धि मौजूदा हालात में बहुत बड़ी तो नहीं कही जा सकती है, लेकिन यह बात उत्साहवर्धक है कि प्रत्येक भारतीय की जीवन प्रत्याशा में 51 दिन की वृद्धि हुई है। हालांकि, हम अभी विश्व स्वास्थ्य संगठन के मानकों की कसौटी पर खरे नहीं उतरे हैं,लेकिन एक विश्वास जगा है कि युद्ध स्तर पर प्रयासों से भयावह प्रदूषण के खिलाफ किसी हद तक जंग जीती भी जा सकती है। लेकिन इसके साथ ही 'वायु गुणवत्ता जीवन सूचकांक-2024' में यह भी चेताया गया है कि यदि भारत में डब्ल्यूएचओ के वार्षिक पीएम 2.5 के सांद्रता मानक के लक्ष्य पूरे नहीं होते तो भारतीयों की जीवन प्रत्याशा में करीब साढ़े तीन साल की कमी आने की आशंका पैदा हो सकती है। दरअसल, पीएम-2.5 हवा में विद्यमान ऐसे सूक्ष्म कण होते हैं जो हमारे श्वसनतंत्र पर घातक प्रभाव डालते हैं।

> **यह खबर उत्साहवर्धक है कि भारत में सूक्ष्म कणों से पैदा होने वाले जानलेवा प्रदूषण में गिरावट आई है। लेकिन अभी जीवन प्रत्याशा घटाने वाले प्रदूषण को लेकर जारी लड़ाई खत्म नहीं हुई है।**

उल्लेखनीय है कि एनर्जी पॉलिसी इंस्टीट्यूट की वार्षिक रिपोर्ट में उल्लेखित प्रदूषण में आई गिरावट की वजह अनुकूल मौसम संबंधी परिस्थितियां बतायी गई हैं। हालांकि, हकीकत यह भी है कि प्रदूषण नियंत्रण के लिये चलायी जा रही कई योजनाओं के सकारात्मक परिणामों का भी इसमें योगदान रहा है। खासकर भारत सरकार द्वारा चलाये जा रहे राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम के तहत जिन शहरों को शामिल किया गया था, वहां भी पीएम-2.5 सांद्रता में गिरावट देखी गई है। वहीं स्वच्छ ईंधन कार्यक्रम का सकारात्मक प्रभाव प्रदूषण नियंत्रण पर नजर आया है। इससे भारत के रिहाइशी इलाकों में कार्बन उत्सर्जन कम करने में मदद मिली है। ऐसी योजनाओं को पूरे देश में लागू करने का सुझाव भी दिया गया है।

बहरहाल, हमें वर्ष 2022 के उत्साहजनक परिणामों के सामने आने के बाद व्यापक लक्ष्यों के प्रति उदासीन नहीं होना है। यह एक लंबी लड़ाई है और इसमें सरकार व समाज की सक्रिय भागीदारी जरूरी है।

'माँ' मुझे बस अपने आँचल की छांव में ही रख

'माँ' मुझे बस अपने आँचल की छांव में ही रख
दुनिया-जमाने से अब डर लगता है

'माँ' मुझे अपने पास ही रहने दे
तेरे पास ही अब महफूज़ लगता है

'माँ' मुझें दिल्ली, हाथरस, कोलकाता न जाने देना
अब दुनिया के हर शहर से डर लगता है

'माँ' मुझे तेरी रात की
लोरी से ही नींद आती है
रात के अंधेरो से अब डर
लगता है

'माँ' ये देश, आजाद तो
हो गया है
पर मुझे इस देश की
सरसराहट से डर लगता है

डॉ. प्रिया पचौरी
वेटेरिनरी विश्वविद्यालय
मथुरा (उ.प्र.)

'माँ' भरोसा करूं भी तो, किस पर करूं
हर एक पुरुष से अब, डर लगता है

'माँ' अपनी गलियों के वो कुत्ते ही अच्छे हैं
उन शिकारियों से, अब डर लगता है

'माँ' उन हैवानो का शिकार न बन जाऊँ कही
घर से निकलने में अब, डर लगता है

'माँ' मुझको तेरी आँचल की छांव में ही रहने दे
इनकी ऐसी हैवानियत से अब, डर लगता है ।।

सदस्यता ग्रहण करने एवं विज्ञापन प्रकाशन हेतु निम्न प्रतिनिधियों से सम्पर्क करें

छिंदवाड़ा (म.प्र.)
रामप्रकाश रघुवंशी
98272-78063

***

नरसिंहपुर (म.प्र.)
नवीन शुक्ला: 89894-36330

मुंगावली (म.प्र.)
भगवानदास चौबे
96854-88453

बलिया (उ.प्र.)
आर.एन. चौबे-94535-77732

पश्चिम बंगाल
राजेश नायक-98831-57482

उड़ीसा
समीर रंजन नायक
70422-31678

***

हापुड़ (उ.प्र.)
मयंक गौड़: 83848-66823

Online मंगाएं साहित्य

मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में अत्यंत लोकप्रिय हिन्दी मासिक समाचार पत्रिका **मध्य भारत कृषक भारती** द्वारा प्रकाशित कृषि साहित्य अब आप ऑनलाइन भी खरीद सकते हैं। हमारी वेबसाइट **www.krishakbharti.in** पर जाकर **Purchase** को क्लिक करके ऑनलाइन ऑर्डर कर सकते हैं।

वैज्ञानिक/लेखकों के लिए सूचना

प्रत्येक माह की 22 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को प्रिंट एडिशन में स्वीकार किया जाता है तथा 23 से 28 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को डिजीटल एडिशन में सम्मिलित किया जाना संभव हो सकेगा। लेख में मोबाइल नम्बर होना अनिवार्य है। -संपादक

मध्य भारत कृषक भारती में प्रकाशित पाठ्य सामग्री में व्यक्त विचार वैज्ञानिकों/लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। किसी त्रुटि शंका या समाधान के लिये वैज्ञानिकों/लेखकों के पते प्रकाशित किये जाते हैं जिस पर संपर्क किया जा सकता है। सभी प्रकार के विवादों के लिये न्याय क्षेत्र ग्वालियर होगा। सभी पद मानसेवी हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in

मध्य भारत कृषक भारती

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

सदस्यता एवं विज्ञापन के लिए सम्पर्क करें
94251-01132 0751-4070802

वार्षिक ₹ 500 द्विवार्षिक ₹ 950
पंचवार्षिक ₹ 2000

वर्ष 19 अंक 06 ग्वालियर, सितंबर 2024 मूल्य ₹ 30/-

: सम्पादक मण्डल :

प्रधान सम्पादक

राजू गुर्जर (MJC)

94251-01132

94245-22090

❖

प्रसार/मार्केटिंग टीम

डी.के. बरार

91791-85002, 70247-93010

महेश अहिरवार: 94251-48365

: तकनीकी मार्गदर्शन/वैज्ञानिकगण :

डॉ. व्ही.एस. तोमर (पूर्व कुलपति)
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय

***

डॉ. अर्पिता श्रीवास्तव
(Assistant Professor)
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

***

डॉ. आर.के.एस. तोमर
केविके दतिया, राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि वि.वि. ग्वालियर (म.प्र.)

***

डॉ. अनिल कुमार सिंह (उद्यान वैज्ञानिक)
कृषि विज्ञान केन्द्र, पीपराकोठी (पूर्वी चम्पारण), डॉ.रा.प्र.के.कृ.वि.वि.,पूसा, समस्तीपुर

प्रो. (डॉ.) के. आर. मौर्य
पूर्व कुलपति, राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय पूसा (बिहार), एवं महात्मा ज्योति राव फूले विश्वविद्यालय जयपुर (राजस्थान)

***

डॉ. रंजु कुमारी (स.प्रा. सह कनीय वैज्ञानिक)
पादप प्रजनन एवं अनुवांशिकी विभाग, नालन्दा उद्यान महाविद्यालय, नूरसराय (नालन्दा), बिहार कृषि वि.वि.,सबौर, भागलपुर

***

डॉ. भागचन्द जैन
प्राध्यापक एवं प्रचार अधिकारी
कृषि महाविद्यालय, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

***

डॉ. योगेन्द्र कौशिक (प्रगतिशील कृषक)
ग्राम अजडावदा जिला उज्जैन (म.प्र.)

डॉ. विनीता सिंह, अध्यक्ष
अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
AKS विश्वविद्यालय, सतना (म.प.)

***

तपस्या तिवारी पीएचडी शोधार्थी, मृदा विज्ञान और कृषि रसायन विज्ञान विभाग, चंद्रशेखर आज़ाद कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

***

बसंत कुमार दादरवाल
इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर साइंस बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी वाराणसी (उ.प्र.)

***

श्रीमती रिया ठाकुर (वैज्ञानिक उद्यानिकी)
कृषि विज्ञान केन्द्र, चंदनगांव, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
मोबाइल: 9907279542

***

डॉ. मोहब्बत सिंह जमरा (असिस्टेंट प्रोफेसर)
पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, महू, (म.प्र.)

अंदर के पन्नों पर

मध्यप्रदेश/छत्तीसगढ़

- उन्नत उत्पादकता और स्थिरता के लिए रागी खेती तकनीक 08
- रेबीज से बचाव: टीकाकरण, सही उपचार... 09
- कुक्कुट पालन हेतु जगह का चयन 10
- कपास की खेती 11
- न्यूनतम समर्थन मूल्य 12
- पशुपालकों हेतु वर्षा ऋतु में हरे चारे के लिए मक्का की उन्नत खेती 13
- तिल की उन्नत उत्पादन तकनीक 14
- खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में जैविक खेती की भूमिका 15
- विज्ञान की खाद्य पदार्थों की दुनिया में एक नई छलांग:... 16
- धान की फसल में लगने वाले प्रमुख रोग और कीट प्रबंधन 17
- फसल उत्पादन में नैनो यूरिया का उपयोग 18
- जन्म से लेकर दूध छुड़ाने तक पिगलेट की देखभाल... 19
- दुधारू पशुओं में थनैला रोग 20
- सोयाबीन की फसल में तना मक्खी के प्रकोप से कैसे बचें 21
- एथनोवेटरिनरी मेडिसिन: ... 22
- ब्रूसेलोसिस: एक गंभीर जूनोटिक रोग और इसकी रोकथाम 23
- केन्द्रीय बजट और किसान 24
- जुकिनी की खेती में कौन-कौन से महत्वपूर्ण बातों का ध्यान रखें 25
- श्वानों में एर्लिचियोसिस- जानलेवा संक्रमण की पहचान 26
- कृषि में ड्रोन का महत्व 27

उत्तर प्रदेश

- महिलाओं में एनीमिया: एक व्यापक दृष्टिकोण 28
- एजोला: फसल के लिए एक जैविक वरदान 29
- बायोप्लास्टिक: हरित पर्यावरण के लिए सतत... 30
- हाई टेक नर्सरी प्रबंधन:... 31
- औषधीय गुणों का भंडार है आंवला 32
- डिजिटल डिटॉक्स क्रांति:... 33
- आंवला की किस्में, मौसम और उत्पादन 34
- धान की रोपाई के बाद एकीकृत कीट प्रबंधन 35
- कार्बन खेती: कृषि और पर्यावरण... 36
- सर्वश्रेष्ठ आहार विकल्प: वेगन दूध व उत्पाद 37
- ड्रैगन फ्रूट की खेती मे लगने वाले प्रमुख रोगों... 39
- तिल की फसल में खरपतवार नियंत्रण 40
- मृदा अपरदन: किसानों के लिए अभिशाप 41
- नैनो यूरिया प्लस का फसल उत्पादन में क्रांतिकारी प्रभाव 42

राजस्थान

- बारानी खेती में अधिक पैदावार लेने की तकनीक 43
- कृषि विकास में जनसंचार माध्यम की भूमिका... 44
- मूंग की फसल में लगने वाले प्रमुख कीट.... 45

हरियाणा

- डिजिटल डिमेंशिया: युवा पीढ़ी के लिए बढ़ता खतरा 46
- मृदा उर्वरता एवं मुनाफा की दृष्टि से लाभकारी है 'ग्रीष्म मूंग' 47
- माँ और बच्चे के लिए स्तनपान के फायदे 48

मेघालय

- 'कृषि में क्रांति:... 49

बिहार

- लकड़ी की कलाकृतियां: गरीबों के लिए आय का एक स्रोत 50
- सेब में विकास की किशोर अवस्था... 51
- सूरजमुखी की खेती के विभिन्न पहलू 52
- एकीकृत आम की खेती सह मुर्गी पालन ... 53
- बायपास फैट का पशुओं में महत्व 54
- उच्च आय के लिए ग्लैडियोलस की व्यवसायिक खेती 55

गुजरात

- थिलेरियोसिस: दुधारू पशुओं का घातक रोग 56

महाराष्ट्र

- कृषि में मल्चिंग तकनीक साबित हो रही है फायदेमंद 57
- नैनो यूरिया-भविष्य का दर्शन 58

हिमाचल प्रदेश

- स्वस्थ सब्जी पौध तैयार करने की तकनीकें 59
- टमाटर उत्पादन की मुख्य सिफारिशें 60

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

लाल किले की प्राचीर से बोले पीएम मोदी- सरकार बड़े सुधारों के लिए प्रतिबद्ध

नई दिल्ली। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा कि जब 40 करोड़ देशवासी गुलामी की जंजीरों को तोड़कर देश को आजाद कर सकते हैं तो आज 140 करोड़ 'परिवारजन' इसी भाव से समृद्ध भारत भी बना सकते हैं। 78वें स्वतंत्रता दिवस के मौके पर लाल किले की प्राचीर से देशवासियों को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि 'विकसित भारत 2047% सिर्फ भाषण के शब्द नहीं हैं बल्कि इसके पीछे कठोर परिश्रम जारी है और देश के सामन्य जन से सुझाव लिए जा रहे हैं।

इससे पहले, प्रधानमंत्री ने स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर लगातार 11वीं बार लाल किले पर राष्ट्रीय ध्वज फहराया। स्वतंत्रता दिवस पर, अपने तीसरे कार्यकाल के पहले संबोधन में उन्होंने पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को पीछे छोड़ दिया। मनमोहन सिंह ने 2004 से 2014 के दौरान लाल किले की प्राचीर से 10 बार तिरंगा फहराया था। इस मामले में मोदी पूर्व प्रधानमंत्रियों जवाहरलाल नेहरू और इंदिरा गांधी के बाद तीसरे स्थान पर पहुंच गए हैं। नेहरू को यह सम्मान 17 बार और इंदिरा को 16 बार मिला था। आजादी के आंदोलन में अपना सर्वस्व न्यौछावर करने वाले शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि उन्होंने देशवासियों को स्वतंत्रता की सांस लेने का सौभाग्य दिया है और यह देश उनका ऋणी रहेगा। उन्होंने कहा, 'आज तो हम 140 करोड़ हैं। अगर 40 करोड़ देशवासी गुलामी की जंजीरों को तोड़ सकते हैं, आजादी के सपने को पूर्ण कर सकते हैं, आजादी लेकर दिखा सकते हैं तो 140 करोड़ देशवासी, 140 करोड़ मेरे परिवारजन अगर संकल्प लेकर चल पड़ते हैं, एक दिशा निर्धारित करके चल पड़ते हैं, कदम से कदम मिलाकर और कंधे से कंधा मिलाकर अगर चल पड़ते हैं तो चुनौतियां कितनी भी क्यों ना हो, अभाव कितना भी तीव्र क्यों ना हो, संसाधनों के लिए जूझने की नौबत क्यों न हो तो भी.. हर चुनौती को पार करते हुए हम समृद्ध भारत बना सकते हैं।' उन्होंने कहा, 'हम 2047 तक विकसित भारत का लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं। अगर 40 करोड़ देशवासी अपने पुरुषार्थ, समर्पण, त्याग और बलिदान से आजादी दिला सकते हैं, आजाद भारत बना सकते हैं तो 140 करोड़ देशवासी इसी भाव से समृद्ध भारत भी बना सकते हैं।' प्रधानमंत्री ने कहा कि आज यह समय है देश के लिए जीने की प्रतिबद्धता का और अगर देश के लिए मरने की प्रतिबद्धता आजादी दिला सकती है

संभाग स्तर पर हाईटेक नर्सरियां स्थापित की जाएं

भोपाल। मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने कहा है कि उद्यानिकी और खाद्य प्रसंस्करण गतिविधियों से किसान और उद्योगपति दोनों लाभान्वित होंगे। इनके माध्यम से प्रदेश के सभी जिलों में उद्यमिता और औद्योगिक गतिविधियों को प्रोत्साहित किया जा सकता है। अतः उद्यानिकी तथा खाद्य प्रसंस्करण और सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम विभाग के परस्पर समन्वय से रोजगार के अवसरों व आर्थिक गतिविधियों को बढ़ाने में मदद मिलेगी। इस दिशा में सार्थक प्रयास किए गए हैं। किसानों के साथ उनके परिवारों को जोड़ने के लिए स्व-सहायता समूहों का भी गठन किया जाए। प्रदेश में संभाग स्तर पर हाईटेक नर्सरियां स्थापित कर आवश्यक प्रशिक्षण उपलब्ध कराने की व्यवस्था की जाए। उद्यानिकी और खाद्य प्रसंस्करण विभाग का बजट बढ़ाकर बाजार की माँग के अनुसार गतिविधियां संचालित की जाएं। इस दिशा में हॉर्टिकल्चर प्रमोशन एजेंसी स्थापित कर समय-सीमा व रोडमैप निर्धारित करते हुए कार्य किया जाए। मुख्यमंत्री डॉ. यादव उद्यानिकी एवं खाद्य प्रसंस्करण विभाग की समीक्षा का रहे थे। बैठक में मंत्री श्री नारायण सिंह कुशवाहा, मुख्य सचिव श्रीमती वीरा राणा, अपर मुख्य सचिव श्री राजेश राजौरा, प्रमुख सचिव वित्त श्री मनीष सिंह, प्रमुख सचिव श्री सुखवीर सिंह तथा अन्य अधिकारी उपस्थित थे।

भारत 2023 में वैश्विक कृषि निर्यात में आठवें स्थान पर

नई दिल्ली। भारत ने 2023 में कृषि उत्पादों के दुनिया के आठवें सबसे बड़े निर्यातक के रूप में अपनी स्थिति बरकरार रखी है, जबकि 2022 में निर्यात में 55 बिलियन डॉलर से 51 बिलियन डॉलर की गिरावट आई है। यह स्थिरता शीर्ष दस निर्यातक देशों में से सात में कृषि निर्यात में सामान्य कमी के बीच आई है। डब्ल्यूटीओ की व्यापार सांख्यिकी 2023 रिपोर्ट में बताया गया है कि शीर्ष दस में से केवल तीन देश- ब्राजील, यूरोपीय संघ (ईयू) और थाईलैंड- ने 2023 में अपने कृषि निर्यात में वृद्धि की है। ब्राजील ने 6% की वृद्धि के साथ .157 बिलियन का निर्यात किया, जिससे उसका तीसरा स्थान बरकरार रहा, जबकि यूरोपीय संघ का निर्यात 5% बढ़कर 836 बिलियन हो गया, जिससे उसका शीर्ष स्थान बरकरार रहा।

01/2023-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

पैडी ट्रांसप्लांटर का प्रदर्शन एवं अधिकारियों द्वारा धान की रोपाई खेत में की गई

शहडोल। कृषि विज्ञान केन्द्र शहडोल के वैज्ञानिक दीपक चौहान एवं कृषि अभियांत्रिकी विभाग के सहायक कृषि यंत्री रितेश प्यासी के सामंजस्य से कृषि विज्ञान केन्द्र शहडोल द्वारा ग्राम जरवाही में धान की ट्रांसप्लांटिंग मशीन द्वारा कृषकों के खेत में कृषक प्रक्षेत्र प्रदर्शन कराये गए। इस मोके पर मुख्य कार्यपालन अधिकारी जिला पंचायत राजेश जैन (आईएएस), अतिरिक्त मुख्य कार्यपालन अधिकारी एमपी सिंह, उपसंचालक कृषि आरपी झारिया एवं कृषि विभाग के अन्य अधिकारी मौजूद रहे। वैज्ञानिक दीपक चौहान द्वारा सभी अधिकारियों एवं कृषकों को मशीन के संचालन के बारे में विस्तृत रूप से बताया की आज के समय में धान बुवाई के सीजन में लेबर को लेकर किसानों के सामने एक बड़ी समस्या उत्पन्न होती है। इस समस्या का समाधान धान रोपाई यंत्र से हो जाता है। इस यंत्र के माध्यम से आप अपने एक एकड़ भूमि पर तेजी के धान की रोपाई कर सकते हैं और इसमें सिर्फ एक व्यक्ति ही इस मशीन को चला सकता है। जिससे लेबर की बचत होने के साथ समय की भी बचत होती है। पैडी ट्रांसप्लास्टर से रोपाई किये जाने से लागत में कमी आती है, मजदूरों पर निर्भरता कम हो जाती है। जिससे खेत में खरपतवार नियंत्रण आसानी से किया जा सकता है और धान में अधिक कंसे निकलते हैं। दीपक चौहान द्वारा यह भी बताया की राइस ट्रांसप्लांटर एक कृषि मशीन है जिसकी मदद से किसान चावल के पौधे रोपने की प्रक्रिया को स्वचालित कर सकते है। इसमें एक सीडलिंग ट्रे होती है जो पहले से अंकुरित बीजों को स्टोर करके रखती है। इन बीजों को इस मशीन के कन्वेयर सिस्टम की मदद से बीज बोने की जगह तक पहुँचाया जाता है। यह कन्वेयर सिस्टम चौन या बेल्ट आधारित होता है। इसके अलावा इस मशीन में एक रोपण तंत्र भी होता है जो पहले से ही निर्धारित सेटिंग्स के अनुसार अंकुरित बीजों को मिट्टी में डालने का काम करता है। इस मशीन को ट्रैक्टर के साथ जोड़ कर उपयोग में लाया जा सकता है। इसलिए इसको ट्रैक्टर से धान लगाने की मशीन के नाम से भी जाना जाता है। इस मोके पर मुख्य कार्यपालन अधिकारी जिला पंचायत राजेश जैन द्वारा स्वयं मशीन का संचालन कृषक के खेत में किया एवं उनके मौजूद सभी अधिकारीयों द्वारा भी मशीन का संचालन कर धान का रोपा लगाया गया एवं मशीन को भलीभांति समझा।

पशु चिकित्सा अधिकारियों का उन्नत पशुपोषण तकनीकियों पर प्रशिक्षण

दतिया। कृषि विज्ञान केन्द्र दतिया में उन्नत पशुपोषण तकनीकियां विषय पर एक दिवसीय पशुचिकित्सा अधिकारियों का अंतः सेवाकालीन प्रशिक्षण केन्द्र प्रमुख डॉ. अवधेश सिंह के मार्गदर्शन एवं विषय विशेषज्ञ डॉ. रूपेश जैन के तकनीकी निर्देशन में संपन्न हुआ। प्रशिक्षण में पशुपालन विभाग के 25 पशु चिकित्सा अधिकारियों ने भाग लिया। प्रशिक्षण के उद्घाटन अवसर पर उपसंचालक पशु चिकित्सा डॉ. दास द्वारा पशुपालकों को पशुओं के लिये संतुलित आहार हेतु प्रेरित करने की सलाह दी गई। केन्द्र प्रमुख डॉ. अवधेश सिंह ने संतुलित संपूरक आहार मिनरल सप्लीमेंट एवं नमक की पशु आहार में उपयोगिता एवं उसके पशुपालन पर पड़ने वाले प्रभाव को वैज्ञानिक तरीके से बताया। तकनीकी सत्र में प्रशिक्षण प्रभारी डॉ. रूपेश जैन द्वारा दुधारू पशुओं के लिये संतुलित आहार तैयार करने की विधि के साथ-साथ दुधारू पशुओं को वर्ष भर हरा चारा उपलब्ध कराने हेतु एक आदर्श पशु चारा उत्पादन फसल चक्र को समझाया गया। उन्होंने बताया कि पशुओं को साल भर हरे चारे के साथ-साथ हरे चारे को संरक्षित करने के लिये साइलेज बनाना एक बहुत उपयोगी तकनीकी है। इस तकनीकी की मदद से किसान हरे चारे को साइलेज में परिवर्तित कर सकते हैं जिसको किसान उस समय पशुओं को खिला सकते हैं जबकि सामान्यतः हरा चारा खेतों में उपलब्ध नहीं रहता इससे पशुओं का दुग्ध उत्पादन भी संतुलित रहता है तथा हरे चारे की पूर्ति भी साइलेज के रूप में होती रहती है। इसके साथ-साथ डॉ. जैन ने यूरिया मोलिसिस मिनरल ब्लॉक, कम्पलीट फीड ब्लॉक और सूखे चारे को यूरिया से उपचारित करने की विधि को भी विस्तार पूर्वक बताया साथ ही उन्होंने दुधारू पशुओं के लिये अजोला उत्पादन तकनीकी एवं हाइड्रोपॉनिक हरा चारा उत्पादन तकनीकी को भी अधिकारियों को विस्तार से बताया। कार्यक्रम में पशु चिकित्सा विभाग के डॉ. महेन्द्र परिहार, डॉ. शिवा गुप्ता सहित लगभग 25 पशु चिकित्सा अधिकारी एवं गौसेवकों ने भाग लिया। कार्यक्रम का आभार केन्द्र के वैज्ञानिक डॉ. व्ही.एस. कंसाना द्वारा किया गया। प्रशिक्षण के अंत में सभी प्रशिक्षणार्थियों को केन्द्र की बकरीपालन, मुर्गीपालन, वर्मीकम्पोस्ट, अजोला, हरा चारा आदि इकाईयों का भ्रमण कराया गया।

जनेकृविवि में आयोजित कैम्पस प्रक्रिया में 13 छात्रों का चयन

जबलपुर। जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर के कुलपति डॉ. प्रमोद कुमार मिश्रा की प्रेरणा से छात्रों की शिक्षा के साथ-साथ उनके रोजगार के साधन हेतु विश्वविद्यालय प्रशासन लगातार प्रयासरत् है। इस दिशा में अधिष्ठाता कृषि संकाय डॉ धीरेन्द्र खरे के मार्गदर्शन में विगत दिवस देश की प्रतिष्ठित कंपनियों एवं एन.जी.ओ. द्वारा कृषि विश्वविद्यालय के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों हेतु कैम्पस साक्षात्कार का आयोजन किया गया। जिसमें जनेकृविवि के 13 छात्रों का चयन हुआ।

प्रो. बालिक दास राय
बन्टी राय
98276-11495
88715-18885
मै. माँ उर्वरक केन्द्र

अमित राय
रसायनिक एवं
जैविक खाद बीज
एवं दवाई के विक्रेता

पताः भितरवार रोड, डबरा (म.प्र.)
03/2023-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
समाचार

109 उच्च उपज देने वाली बीज की किस्में विकसित

नई दिल्ली। हाल ही में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 109 नई बीज की किस्मों को प्रस्तुत किया है, जो उच्च उपज देने वाली, जलवायु-सहिष्णु और जैव-संवर्द्धित/बायोफोर्टिफाइड हैं। इन बीजों को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) द्वारा विकसित किया गया है तथा इनका उद्देश्य कृषि उत्पादकता में सुधार लाना एवं किसानों की आय में वृद्धि करना है।

विविध फसल कवरेज

बीज की 109 किस्में 61 फसलों से संबंधित हैं।

जैव-संवर्द्धित फसलों को बढ़ावा देना

- सरकार ने लगातार जैव-संवर्द्धित या बायोफोर्टिफाइड फसलों की किस्मों को बढ़ावा दिया है तथा उन्हें मध्याह्न भोजन योजना और आँगनवाड़ी सेवाओं जैसी सरकारी पहलों से जोड़ा है।
- इन पहलों का उद्देश्य कृषि के माध्यम से अधिक पौष्टिक भोजन का विकल्प प्रदान कर भारत में कुपोषण की समस्या का समाधान प्रस्तुत करना है।

जैव-संवर्द्धित फसलों के बारे में

ये संशोधित फसलें होती हैं। इसमें कुछ विशिष्ट गुण होते हैं, जो पारंपरिक प्रजनन या ब्रीडिंग प्रोसेस में संभव नहीं हैं।

बायोफोर्टिफिकेशन क्या है?

- बायोफोर्टिफिकेशन खाद्य फसलों की पोषण सामग्री में सुधार करने की प्रक्रिया है।
- ऐसा फसलों में आवश्यक विटामिन और खनिजों के स्तर को बढ़ाने के लिए किया जाता है।
- बायोफोर्टिफिकेशन मुख्य रूप से चावल जैसी प्रमुख फसलों को लक्षित करता है, ताकि आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व उपलब्ध कराए जा सकें, विशेष रूप से उन लोगों को जिनकी विविध आहार तक सीमित पहुँच है।

बायोफोर्टिफिकेशन की प्रणालियां

कृषि-संबंधी पद्धतियाँ: फसलों में पोषक तत्त्वों की मात्रा बढ़ाने के लिए विशिष्ट कृषि तकनीकों का उपयोग करना।

पारंपरिक प्रजनन: अधिक पौष्टिक फसल किस्मों का उत्पादन करने के लिए उच्च पोषक तत्त्वों वाले पौधों का चयन और उनमें क्रॉसब्रीडिंग करना।

जैव प्रौद्योगिकी दृष्टिकोण: बेहतर पोषण के लिए फसलों की आनुवंशिक संरचना को सीधे संशोधित करने के लिए आनुवंशिक इंजीनियरिंग और जीन एडिटिंग जैसी उन्नत विधियों का उपयोग किया जाता है।

बायोफोर्टिफिकेशन से हानि

उच्च लागत: जैव-संवर्द्धित फसलों को विकसित करने हेतु जैव-प्रौद्योगिकी में उच्च अनुसंधान और निवेश की आवश्यकता होती है।

सीमित उपलब्धता: जैव-संवर्द्धित फसलें सभी क्षेत्रों में व्यापक रूप से उपलब्ध नहीं हैं, जिससे इसके लाभ सीमित हो जाते हैं।

आनुवंशिक विविधता में कमी: जैव-संवर्द्धित किस्मों को अक्सर विशिष्ट गुणों हेतु चुना जाता है, जिससे इस किस्म का व्यापक उपयोग किया जा सकता है।

- इस प्रथा से फसलों में विद्यमान आनुवंशिक विविधता में कमी हो सकती है।

पारिस्थितिकी तंत्र में व्यवधान: जैव-संवर्द्धित फसलों को जब गैर-जैव संवर्द्धित फसलों के साथ संकरित किया जाता है, तो संकर पौधे विकसित होते हैं, जिनके पारिस्थितिकी तंत्र पर अप्रत्याशित प्रभाव पड़ सकता है।

उच्च उपज देने वाली बीज की किस्मों से किसानों को लाभ

फसल उत्पादकता में वृद्धि: उच्च उपज देने वाली बीज किस्मों से प्रति हेक्टेयर अधिक फसल उत्पादन होता है, जिससे किसान एक ही भूमि क्षेत्र से अधिक फसल काट पाते हैं।

बढ़ी हुई आय: उच्च उत्पादकता का अर्थ है विपणन योग्य अधिशेष में वृद्धि, जिससे किसान अधिक उपज बेच पाते हैं और अधिक आय अर्जित कर पाते हैं।

लागत दक्षता: बेहतर बीज किस्मों के लिए अक्सर पानी, उर्वरक और कीटनाशकों जैसे कम लागत की आवश्यकता होती है, जिससे कुल खेती की लागत कम हो जाती है।

बाजार प्रतिस्पर्द्धात्मकता: बेहतर बीज किस्मों तक पहुँच वाले किसान बेहतर गुणवत्ता वाली फसलें पैदा कर सकते हैं, जिससे उन्हें बाजार में प्रतिस्पर्द्धात्मकता बढ़त मिलती है और संभावित रूप से बेहतर कीमतें मिलती हैं।

जलवायु परिवर्तन के प्रति लचीलापन: जलवायु-लचीली बीज किस्में प्रतिकूल मौसम की स्थिति के कारण फसल की विफलता के जोखिम को कम करती हैं, जिससे किसानों के लिए अधिक स्थिर और अनुमानित आय सुनिश्चित होती है।

दीर्घकालिक स्थिरता: जैव-सशक्त और जलवायु-लचीले बीजों का उपयोग स्थायी कृषि पद्धतियों में योगदान देता है, जो लगातार पैदावार और बाहरी लागत पर कम निर्भरता के माध्यम से किसानों के आर्थिक भविष्य को सुरक्षित करता है।

जानिए...नए बीज की किस्में

श्रेणी	फसलें
फिल्ड क्रॉप/फसलें	जौ, मक्का, ज्वार, बाजरा (पर्ल मिलेट), रागी (फिंगर मिलेट)
दालें	चना, अरहर, मसूर, मूंग
तिलहन	कुसुम, सोयाबीन, मूंगफली, तिल
चारा फसलें	चारा बाजरा, बरसीम, जई, चारा मक्का, चारा ज्वार
विशिष्ट फसलें	गन्ना, कपास, जूट, कुट्टू, अमरैंथ, विंग्ड बीन, अडजुकी बीन, पिल्लिपेसरा, कलिंगडा, पेरिला
बागवानी फसलें	फल, सब्जियां, मसाले, कंद फसलें, बागानी फसलें, फूल, औषधीय पौधे

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

उन्नत उत्पादकता और स्थिरता के लिए रागी खेती तकनीक

आदित्य तिवारी कृषि विस्तार अधिकारी, किसान कल्याण तथा कृषि विकास विभाग, सतना (म.प्र.)

श्रेया तिवारी एम.एस-सी. (कृषि प्रसार) छात्रा, म.गॉ.चि.ग्रा.वि., चित्रकूट, सतना सतना (म.प्र.)

रागी की खेती मोटे अनाज के रूप में की जाती है। इसे फिंगर बाजरा और लाल बाजरा, मडुआ एवं अफ्रीकन रागी के नाम से भी जाना जाता है। कुछ जगहों पर इसे नाचनी के नाम से भी पुकारते हैं। यह भारत में लगभग 4000 वर्ष पहले लाई गई थी। यह मुख्य रूप से एशिया महाद्वीप अफ्रीका में पैदा की जाती है। भारत में रागी मुख्य रूप से कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र और गोवा में उगाया और प्रयोग किया जाता है। इसके पौधे एक से डेढ़ मीटर ऊँचे एवं पूरे वर्ष पैदावार देने में सक्षम होते हैं। रागी की उन्नत खेती का संयोजन कर एवं अपनी फसलों की व्यवस्थित सुरक्षा द्वारा फिंगर बाजरा किसान अधिकतम उपज प्राप्त कर अधिक मुनाफा कमा सकते हैं।

रागी का महत्व

रागी में कैल्शियम सर्वाधिक मात्रा में पाये जाने के कारण इसके उपयोग से हडियॉ मजबूत होती हैं। रागी युक्त आहार कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स का होता है। इसमें वसा, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स तथा रेशा पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। शरीरिक कियाओं हेतु इसमें आवश्यक महत्वपूर्ण विटामिन्स थायमीन, रिबोफ्लेविन, नियासिन एवं आवश्यक अमीनों अम्ल की प्रचुर मात्रा पाई जाती है। यह ओस्टियोपोरोसिस से संबंधित बीमारियों तथा बच्चों के आहार हेतु विशेष रूप से उपयोगी होता है, क्योंकि इसमें कैल्शियम व अन्य खनिज तत्वों की प्रचुर मात्रा पाई जाती है। ये सभी चीजें शारीरिक क्रियाओं को करने में सहायता करते हैं।

उपयुक्त मिट्टी जलवायु एवं भूमि की तैयारी

रागी की खेती कई तरह की उपजाऊ मिट्टी में की जा सकती है परन्तु अच्छे उत्पादन के लिए कार्बनिक पदार्थों से युक्त बलुई दोमट मिट्टी सबसे उपयुक्त रहती है। इसकी खेती हेतु जल निकास व्यवस्था आवश्यक है, क्योंकि जल भराव से पौधे नष्ट हो जाते हैं। रागी की खेती के लिये भूमि का पीएच मान 5.5 से 8 के बीज अच्छा रहता है। इसकी खेती खरीफ के मौसम में की जाती है। रागी की फसल शुष्क और आर्द्र शुष्क जलवायु में अच्छे से उगती है तथा इसे सामान्य वारिश की आवश्यकता होती है। बीज अंकुरण हेतु 20 से 22 डिग्री तापमान एवं विकास हेतु 35 डिग्री तापमान अच्छा रहता है। गर्म जलवायु में इसके पौधों में अधिक वृद्धि होती है।

खेत की तैयारी के लिये ग्रीष्म ऋतु में मिट्टी पलटने वाले हलों से दो गहरी जुताई कर खेत से खरपतवार के अवशेषों को निकाल देना चाहिये। कुछ दिनों के लिए खेत को खुला छोड़ दे। ताकि सूर्य की धूप से मिट्टी में मौजूद हानिकारक कीट नष्ट हो जायें। जैविक खाद के रूप में पुरानी गोबर की खड़ी खाद को डालकर अच्छे से मिट्टी में मिला दें। खेत में पलेवा लगाकर या मानसून प्रारम्भ होते ही एक-दो जुताई कर पाटा लगाकर खेत को समतल एवं भुरभुरा बना लें। इसकी खेती फसली चक्र और अंतर फसली चक्र के रूप में की जा सकती है।

बुवाई एवं बीजोपचार

रागी की उन्नत उत्पादकता हेतु प्रमाणित बीज को प्रयोग में लाना चाहिये। बीज को बुवाई से पूर्व फफूंदनाशक दवा कार्वेन्डाजिम/ कार्वोक्सिन/ क्लोरोथेलोनिल से उपचारित करने के पश्चात बुवाई करना चाहिये। बुवाई रोपा पद्धति या सीधी बुवाई द्वारा की जा सकती है। सीधी बुवाई जून के

अंतिम सप्ताह से जुलाई मध्य तक उपयुक्त रहती है। कतार बुवाई हेतु बीज दर 8 से 10 किलो प्रति हेक्टेयर एवं छिटवा पद्धति से बुवाई करने पर बीज दर 12-15 किलो प्रति हे. करना चाहिए। कतार विधि में कतारों के बीच की दूरी 22.5 सेमी एवं पौधे की दूरी 10 सेमी. उचित रहती है। रोपाई के लिये 25 से 30 दिन की पौध होने पर रोपाई करनी चाहिये। रोपाई में कतार से कतार व पौधे से पौधे की दूरी क्रमशः 22.5 सेमी व 10 सेमी रखें।

उन्नत किस्म

रागी की मध्यप्रदेश के लिए उन्नत किस्में निम्नानुसार है-

1. **जी.पी.यू. 45:** इस किस्म में झुलसन रोग नहीं लगता है। यह जल्दी पकनेवाली किस्म है जो 104 से 109 दिनों में पककर तैयार होती है। इसकी उपज क्षमता 30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

2. **जे.एन.आर. 852:** इस किस्म का पौधा एक मीटर लम्बा होता है। यह किस्म 110 से 115 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। यह रोग प्रतिरोधक क्षमता वाली किस्म है।

3. **चिलिका आ.ई.बी. 10:** यह किस्म छेदक कीट प्रतिरोधी होती है। देर से पकती है तथा इसके पौधे ऊँचे, पत्तियॉ चौड़ी एवं हल्के हरे रंग की होती हैं। प्रत्येक बाली में 6-8 अंगुलियॉ होती हैं। यह 120 से 125 दिन में पककर तैयार हो जाती है तथा इसकी उपज क्षमता 26 से 27 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है। दाने भूरे रंग के बड़े आकार के होते हैं।

4. **भैरवी बीएम 9-1:** यह किस्म झुलसन व भूरा धब्बा रोग तथा तना छेदक कीट के लिये मध्य प्रतिरोधी होती है। यह किस्म 103 से 105 दिनों में तैयार हो जाती है जिसकी उत्पादन क्षमता 25 से 30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है। इसकी पत्तियॉ हल्की हरी होती है। अंगुलियों के आगे का भाग मुड़ा रहता है।

5. **शुभ्रा ओयूएटी 2:** यह किस्म पर्णछेदक झुलसन के लिए प्रतिरोधी एवं सभी झुलसन के लिये मध्यम प्रतिरोधी होती है। इसकी उत्पादन क्षमता 21 से 22 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है ।

खाद एवं उर्वरक

उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण उपरान्त संस्तुति के आधार पर करना उचित रहता है। अच्छी सड़ी गोबर की खाद अथवा कम्पोस्ट खाद 100 क्विंटल प्रति हेक्टेयर देने से उपज में वृद्धि होती है। अधिक उत्पादन बढ़ाने के लिये जैविक खाद एजोस्पाइरिलम ब्रेसीलेन्स एवं एस्परजिलस अवामूरी से बीज का उपचार करना चाहिये। इसके लिये 25 ग्राम प्रति किलो बीज की दर उचित रहती है। असिंचित खेत में 40 किलो नत्रजन व 40 किलो फास्फोरस प्रति हेक्टेयर देना चाहिये। नत्रजन की आधी मात्रा व फास्फोरस की पूरी मात्रा बोवाई पूर्व खेत में मिला दे तथा नत्रजन की शेष मात्रा पौध अंकुरण के 3 सप्ताह बाद प्रथम निदाई के उपरान्त समान रूप से डालें।

निदाई गुड़ाई

निदाई गुड़ाई कर खेत को खरपतवार मुक्त रखना चाहिये। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार के नियंत्रण हेतु बुवाई से 3 सप्ताह के अंतर 2, 4 डी सोडियम साल्ड 80 प्रतिशत की एक कि.ग्राम प्रति हे. की दर से छिड़काव करना लाभकारी रहता है।

01/2023-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

रेबीज से बचाव: टीकाकरण, सही उपचार और घरेलू नुस्खों से बचने की सलाह

डॉ. शशांक विश्वकर्मा, डॉ. एन.के. बजाज, डॉ. अभिषेक बिसेन

डॉ. पुष्कर शर्मा, डॉ. पियूष मंगल पशु मादा रोग एवं प्रसूति विज्ञान विभाग, नानाजी देशमुख पशुचिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

डॉ. असद खान पशु आनुवांशिकी एवं प्रजनन प्रभाग, भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

डॉ. पंकज उमर, डॉ. ज्योति डागर पशु चिकित्सा औषध एवं विष विज्ञान विभाग नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

डॉ. अंजुल वर्मा पशु शल्य चिकित्सा एवं क्ष-रश्मि विभाग, नानाजी देशमुख पशुचिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

रेबीज एक गंभीर और जानलेवा वायरल संक्रमण है जो इंसानों और जानवरों दोनों में पाया जाता है। यह वायरस मुख्यतः संक्रमित जानवरों के काटने से फैलता है, विशेषकर कुत्तों के माध्यम से। रेबीज के प्रबंधन में रोकथाम और त्वरित उपचार बेहद महत्वपूर्ण होते हैं। संक्रमण के बाद रेबीज का इलाज लगभग असंभव हो जाता है, इसलिए बचाव ही सबसे प्रभावी उपाय है। रेबीज से बचाव के लिए सबसे पहले पालतू जानवरों का नियमित टीकाकरण सुनिश्चित करना चाहिए। टीकाकरण न केवल जानवरों को सुरक्षित रखता है, बल्कि इंसानों को भी संक्रमित होने से बचाता है। इसके अलावा, जंगली जानवरों से दूरी बनाए रखना और अज्ञात जानवरों के संपर्क में आने से बचना चाहिए। यदि किसी व्यक्ति को संक्रमित जानवर काट लेता है, तो उसे तुरंत प्राथमिक उपचार करना चाहिए। कुत्ते के काटने के बाद हल्दी और मिर्च का उपयोग करना सख्त मना है। ऐसे घरेलू उपाय न केवल नुकसानदायक हो सकते हैं, बल्कि वे संक्रमण के फैलने का जोखिम भी बढ़ा सकते हैं। कुत्ते के काटने के बाद सबसे पहले प्रभावित जगह को साफ पानी और साबुन से अच्छी तरह से धोना चाहिए। इसके बाद तुरंत डॉक्टर से संपर्क करना चाहिए ताकि रेबीज के खतरे से बचने के लिए आवश्यक चिकित्सा उपचार शुरू किया जा सके। घरेलू नुस्खों पर भरोसा करने के बजाय, सही और त्वरित चिकित्सा सहायता लेना जरूरी है। काटे गए स्थान को साबुन और पानी से अच्छी तरह धोना चाहिए और तुरंत चिकित्सक से संपर्क करना चाहिए। चिकित्सक संभावित रेबीज संक्रमण को रोकने के लिए पोस्ट-एक्सपोजर प्रोफिलेक्सिस (PEP) नामक उपचार प्रारंभ करेंगे। इस उपचार में एंटी-रेबीज टीके और इम्यूनोग्लोबुलिन का उपयोग किया जाता है, जो संक्रमण को रोकने में अत्यधिक प्रभावी होते हैं। सार्वजनिक जागरूकता बढ़ाना भी रेबीज के प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। लोगों को रेबीज के लक्षण, टीकाकरण के महत्व और काटने के बाद के उपचार के बारे में जागरूक करना चाहिए। रेबीज को पूरी तरह से नियंत्रित करने के लिए सामुदायिक स्तर पर टीकाकरण अभियान चलाना और लोगों को सावधान रहने की सलाह देना आवश्यक है। इस प्रकार, रेबीज का प्रभावी प्रबंधन संभव है, बशर्ते समय पर सही कदम उठाए जाएं।

केविके बड़गांव, बालाघाट में कृषक प्रशिक्षण एवं प्राकृतिक खेती जागरूकता कार्यक्रम

बालाघाट। कृषि विज्ञान केन्द्र बड़गांव बालाघाट में कृषक प्रशिक्षण एवं प्राकृतिक खेती जागरूकता कार्यक्रम का आयोजन किया गया कार्यक्रम का आयोजन कृषि विज्ञान केन्द्र के वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रमुख डॉ. आर.एल. राऊत के मार्गदर्शन में किया गया कार्यक्रम में डॉ. उत्तम बिसेन, सहायक प्राध्यापक कृषि महाविद्यालय, बालाघाट, कु. अर्चना डोंगरे, परियोजना संचालक, आत्मा बालाघाट, सुनील सोने सहायक संचालक, आत्मा बालाघाट, कुलदीप गणवीर, वरिष्ठ कृषि अधिकारी, लांजी, डॉ. रमेश अमूले, कृषि विज्ञान केन्द्र, बड़गांव, बालाघाट, जिले के 25 कृषि विस्तार अधिकारी एवं 89 से अधिक किसानों ने भाग लिया। कृषि विज्ञान केंद्र के प्रमुख डॉ. आर.एल. राऊत द्वारा किसानों को सलाह दी कि फसल पद्धति में बदलाव लाना चाहिए साथ ही धान रोपाई के पश्चात् किसानो के पास जा समय बच रहा है, उस समय में अन्य आय के स्त्रोत के बारे में सोचना चाहिए जिससे कि किसान की आमदानी बढ़े आपने बताया कि कृष जलवायु के अनुकूल फसलों एवं उनकी प्रजातियों का किसान चयन करें जिससे उसकी कृषि लागत कम हो सकें। कृषि व्यवसाय के सहायक व्यवसाय, गौपालन, बकरी पालन, मुर्गी पालन, बटेर पालन, मशरूम उत्पादन, लाख उत्पादन, रेशम उत्पादन आदि को कृषि के साथ-साथ अपनाने हेतु विस्तार से जानकारी प्रदान की। जल आधारित कृषि में मछली पालन, सिंघाड़ा, एजोला उत्पादन आदि को अपनाने की सलाह दी। कार्यक्रम मे डॉ. उत्तम बिसेन द्वारा धान की खेती के बारे में किसानों विस्तृत में जानकारी दी कि जैसे कि रोपाई का सही समय, धान के खेती में पानी की मात्रा, खाद्य की सही मात्रा, निंदाई-गुड़ाई का सही समय, विभिन्न प्रकार के नींदानाशक, चूहे का नियंत्रण के बारे बताया। कार्यक्रम में परियोजना संचालक आत्मा से अर्चना डोंगरे द्वारा कृषक को सलाह दी कि किसानों ने एक फसल पद्धति को छोड़ना चाहिए।

01/2023-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

कुक्कुट पालन हेतु जगह का चयन

डॉ. मोहब्बत सिंह जमरा
डॉ. संदीप नानावटी, डॉ. निर्मला जमरा
डॉ. नवलसिह रावत, डॉ. डी. एस. यादव
डॉ. रश्मि चौधरी
पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन
महाविद्यालय महू, (म.प्र.)

गांव में बहुत से बेरोजगार युवा मुर्गी पालन का व्यवसाय शुरू करना चाहते हैं, पर जानकारी की अभाव की वजह से इस व्यवसाय को करने में घबराते हैं व कोई युवा बिना प्रशिक्षण व जानकारी के बिना प्रशिक्षण शुरू कर देते हैं उससे व्यवसाय की पूरी जानकारी नहीं होने से कामयाब नहीं होते हैं। इस व्यवसाय को शुरू करने से पहले हर बारीकी को जानना चाहिए। जैसे कि मुर्गी पालन फार्म के लिए के लिए मुख्य व बहुत ही महत्वपूर्ण कदम है एक उपयुक्त भूमि का चयन करना होता है। व्यवसाय के लिए खुद की जमीन ही तो बेहतर होता है। जमीन कितनी होना चाहिए यह आप के व्यवसाय की योजना के आधार पर निर्भर होता है। यदि जगह का चयन में जमीन, सड़क, बाजार, बिजली, पानी आदि सभी बातों का ध्यान रखें तो भविष्य में मुर्गी पालन व्यवसाय में काफी मुनाफा प्राप्त कर सकते हैं।

स्थान

- मुर्गी पालन के लिए जगह चुनते समय कुछ बातों का खास ध्यान रखना चाहिए, मुर्गी पालन का फार्म ग्रामीण क्षेत्रों में करना चाहिए जिससे भूमि व श्रमिक सस्ते मिल जाते हैं व मुर्गी पालन के लिए रहवासी बस्ती से लगभग 8-10 किलोमीटर की दूरी पर चयन करना चाहिए, वातावरण शांत व प्रदूषण रहित होना चाहिए साथ ही साथ मुख्य शहर भी पास हो जिससे परिवहन में भी आसानी व खर्च कम लगे।
- मुर्गीपालन हेतु स्थान का चयन जंगल में नहीं करना चाहिए क्योंकि जंगली जानवर (सिह, बाघ, लोम्डी, बंदर, हाथी व जंगली कुत्ते आदि) मुर्गी पालन व परिवहन में विविधता पहुचा सकते हैं व शिकारियों से मुक्त होना चाहिए।
- मुर्गी पालन हेतु स्थान आसपास के स्थान से ऊच्चा होना चाहिए जिससे बारिश का पानी प्रक्षेत्र व आसपास जमा न हो सके। पानी जमन से फार्म में बीमारियां व दुर्गन्ध फैलता है जिससे मुगियों की मृत्यु दर बढ़ जाती है।
- किराये की भूमि में मुर्गी पालन का व्यवसाय स्थापित न करें जिससे भविष्य की परेशानी से बच सकते हैं क्योंकि मालिक आपका मुनाफा देकर जमीन छोड़ने के लिए मजबूर कर सकता है।
- भूमि का चयन जहां किए वहां ऐसा होना चाहिए कि भविष्य में भी यदि फार्म की जगह बढ़ाना पड़े तो आसपास मिल सके।

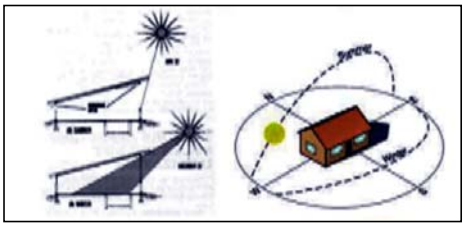

2. मार्ग: मुर्गी पालन के लिए स्थान का चयन मुख्य राजकीय मार्ग के पास होना चाहिए, बस्ती से लगभग 8-10 किलोमीटर की दूरी पर चयन करना चाहिए व मुख्य मार्ग से लगभग 200-250 मीटर का दूरी पर होना चाहिए। जिससे परिवहन में खर्च कम होगा व वाहन की ध्वनि से मुर्गियों को प्रभावित न करे जिससे मुर्गी पालन उत्पादन जैसे अंडे, चूजे व मुर्गों को आसानी से ले जाया जा सके व बाहर से दाना व दवाईयां ला सके। मार्ग ऐसा होना चाहिए कि बड़े वाहन भी उस मार्ग पर आसानी से आजा सके।

3. मजदूर: मेहनती व सस्ते मजदूर मिलना मुश्किल ही गया है। मुर्गी पालन हेतु स्थान का चयन ऐसी जगह पर करें जहां मजदूर आसानी से व कम मजदूरी दर पर मिल सके।

4. बाजार: मुर्गी पालन के कुछ दूरी पर स्थानीय बाजार होना चाहिए जिससे अंडे, मुर्गियों को बिक्री व दवाईयां, टिका आसानी से उपलब्ध हो सके व परिवहन का खर्च कम लगेगा।

5. बिजली: मुर्गी पालन के लिए स्थान का चयन कर रहे हों वहां पर बिजली का 24 घंटे उपलब्ध होना चाहिए ऐसा इसलिए क्योंकि चूजों की ब्रूडिंग के लिए बिजली की हमेशा आवश्यक होती है। साथ ही रात में मुर्गियों की देखभाल, ठंड से बचाने के लिए बल्ब का जलाना, फरटाईल अंडे हेतु व इनक्युबेटर में अंडे को कुछ प्रभाव ना हो जिससे चूजों की संख्या में वृद्धि होगी।

6. पानी: मुर्गी फार्म मे पानी की अच्छी सुविधा होनी चाहिए। पानी स्वच्छ, शुद्ध व जीवाणु रहित होना चाहिए। मुर्गियों को पानी हमेशा उपलब्ध होना चाहिए कयोकि मुर्मियां पानी पीते रहती हैं।

7. दिशा: मुर्गी पालन के लिए स्थान का चयन करते समय यह ध्यान देना है कि जो जगह है उसकी लम्बाई पूर्व से पश्चिम की ओर हो जिससे सूर्य का रोशनी सीधे घर में प्रवेश नहीं करेगी जिससे गर्मी के मौसम में मुर्गियो को बचाया जा सके।

8. सुविधाएं: पाठशाला, डाकघर, बैंक, दुकान केन्द्र व सिनेमाघर आदि की सुविधाएं होना चाहिए जिससे मजदूर के बच्चे पाठशाला पढ़ाई हेतु, मनोरंजन हेतु सिनेमाघर जा सकें व मजदूर अपनी आवश्यक सामग्री व दैनिक जीवन अच्छे से यापन कर सकें।

9. मुर्गी नस्ल: मुर्गी के नस्ल भारत की 20 प्रकार की होती है। जिस प्रजाति की मुर्गी पालन करना है उस जैसे वातावरण को भी भूमि चयन करने वक्त ध्यान देना चाहिए।

10. फार्म से दूरी: मुर्गी पालन हेतु स्थान का चयन पब्लिक मार्ग से लगभग 200-250 मीटर का दूरी पर होना चाहिए। पानी पीने के स्थान से 1000 मीटर की दूरी, उद्योग से 500 मीटर की दूरी, दूसरे फार्म से 500 मीटर की दूरी, नदी, तालाब से 200 मीटर की दूरी, कुओं, नलकूप से 100 मीटर कर दूरी कम से कम होना चाहिए। मृत मुर्गियां व पशुओं को खुले में न जलाते हों व नया मुर्गी फार्म के लिए प्रदूषण कंट्रोल बोर्ड से सलाह लेने से आगे भविष्य में दिक्कत का सामना नहीं करना पड़ेगा।

11. फार्म आसपास: मुर्गी फार्म के आसपास पेड़ होना चाहिए यदि नहीं है तो नए पेड़ लगाना चाहिए कम से कम दो पंक्तियों में जिसकी दूरी 3 मीटर से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। फार्म के ऊपरी सतह पर बांध बना नहीं होना चाहिए।

12/2022-23

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

कपास की खेती

✍ **बलराम नायक** (छात्र) कृषि विभाग, सेज यूनिवर्सिटी इंदौर (म.प्र.)

✍ **सुविधा मिश्रा** सहायक प्रोफेसर सेज यूनिवर्सिटी इंदौर (म.प्र.)

कपास भारत में सबसे महत्वपूर्ण नगदी फसलों में से एक है कृषि अर्थव्यवस्था के साथ-साथ औद्योगिक रूप से भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है।कपास भारत की सबसे बड़े सूती वस्त्र उद्योग का कच्चा माल उत्पादन करता है। कपास की खेती मुख्यतः काली मृदा तथा दोमट मृदाओं वाले राज्य गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु में मुख्यतः की जाती है। यह कपड़े तैयार करने का आवश्यक रेशा स्रोत है। भारत में कपास सिंचित एवं असिंचित दोनों प्रकार के क्षेत्र में लगाया जाता है। देश में कपास फसल लगभग 7.5 लाख हेक्टेयर में किया जाता है।

कपास की प्रमुख जातियां

भारत में लगभग 250 के लगभग जातियां अनुमानित है जो प्रायः सभी हमारे प्रदेश में उगाई जा सकती है। बी.टी. कपास बी.टी.1 तथा बी.टी.2 दोनों प्रकार की जातियां आती है। बी.टी.1 जातियों में तीन प्रकार केडेंडू छेदक इल्लियों के लिए प्रतिरोध उत्पन्न करता है तथा बी.टी.2 उनके साथ तंबाकू की इमली के प्रति भी प्रतिरोध उत्पन्न करती है। **आप निम्न किस्म का प्रयोग कर सकते हैं:**

DCH32, H4 H8, G Cutt Haiti 10,NRC H, NRC 10,JK-4, JK-5 जवाहरताप्ती।

कपास की बुवाई का समय: कपास की बुवाई का मौसम अलग-अलग क्षेत्र में और फसल की नस्ल के आधार पर काफी भिन्न होता है। भारत के कुछ हिस्से जैसे पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, गुजरात तथा हमारे मध्य प्रदेश में खरीफ तथाअगेती की खरीफ में बुवाई की जाती है। मध्य प्रदेश में संचित क्षेत्रोंमें वर्षा के पूर्व तथा असंचित क्षेत्रोंमें वर्षा आधारित बुवाई की जाती है।

कपास की बुवाई के लिए आवश्यक मौसम दशाएं: कपास के अंकुरण हेतु 15°c का तापमान तथा वृद्धि हेतु सामान्य तापमान लगभग 25°C से 27°C का तापमान उचित रहता है तथा कपास 45°C तक का तापमान सहनकर सकता है। कपास की खेती गर्म वनम जलवायु के सभी क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जा सकती है।

कपास की खेती के लिए आवश्यक बीज दर तथा बुवाई की विधियां: कपास की खेती के लिए पर्याप्त सिंचाई की आवश्यकता होती है परन्तु सिंचाई की सुविधा न होने पर वर्षा आधारित खेती भी की जा सकती है। कपास की खेती के लिए भुरभुरी मृदा की आवश्यकता होती है। कपास की खेती के लिए सामान्य बीजका उपयोग नहीं करना चाहिए कपास की खेती के लिए उन्नत व प्रमाणित बीजों का उपयोग किया जाता है। कपास की खेती के लिए 2.5 से 3.5 ग्द्द/द्धद्द बीच की आवश्यकता होती है तथा शंकर तथा बी.टी. के लिए एक से 1.5 ग्द्द/द्धद्द बीजकाफी है। कपास की बुवाई क्यारी विधि द्वारा भी की जाती है जिसमें देसी किस्म के लिए क्यारी से क्यारी की दूरी 2.5 से 3 फीट तथा पौधे से पौधे की दूरी 1.5 फीट तक रखते हैं तथा शंकर व बेटी के लिए प्यारी से प्यारी की दूरी 4 से 5 फीट तथा पौधे की दूरी 3 फिट रखते हैं।

कपास की खेती के लिए उर्वरक व खाद की आवश्यकता: कपास की खेती हेतु 80 से 120 kg/he नाइट्रोजन, 40 से 60 kg/he फॉस्फोरस और 20 से 30 kg/he पोटाश तथा 20kg/he गंधक की आवश्यकता होती है। शंकर किस्म के लिए 150 kg/he नाइट्रोजन, 75 kg/he फास्फोरस तथा 40 kg/he पोटाश की आवश्यकता होती है पोषक तत्वों की पूर्ति जैविक खाद के लिए 7 से 10T/he गोबर की खाद की आवश्यकता होती है तथा बुवाई के समय एक हेक्टेयर के लिए लगने वाले बीज को 500 ग्राम यह एजोस्पाईरिलमएवं 500 ग्राम प्रति हेक्टेयर PSB.से उपचारित करने पर 20 किलोग्राम नाइट्रोजन, 10 किलोग्राम फास्फोरस की पूर्ति होती है।

सिंचाई

कपास की खेती कतर विधि से की जाती है जिसमें सिंचाई की सुविधा होती है सामान्यतः कपास की खेती के लिए मृदा में 50 से 70न्न तक नमी की आवश्यकता होती है वर्ष के पूर्व बुवाई की गई फसल में तीन से चार बार सिंचाई की आवश्यकता होती है परंतु वर्षा आधारित फसल मैं पूर्व कोई सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती।

कपास की खेती में सिंचाई के लिएक्यारीविधि के अलावा टपक सिंचाई का भी प्रयोग किया जाता है जिससे सिंचाई के 70% जल की बचत की जा सकती है।

कपास के प्रमुख रोग एवं कीट

कपास में वैसे तो कहीं प्रकार के रोगों कीटों का प्रभाव देखने को मिलता है दिन में से ज्यादातर आम किट हैं। **जिनका प्रकोप सभी फसलों पर देखने को मिलता है जो निम्न है: i) सफेद मक्खी ii) माहों iii) तेला**

इनकीटों के अलावा कपास मेंसुनडियों का सर्वाधिक

प्रकोप देखने को मिलता है।जिनका नियंत्रण के लिए बीटी कॉटन का प्रयोग तथा स्थानांतरित कीटनाशक का प्रयोग कर सकते हैं। **इन कीटों के अलावा कुछ विशेष रोगों का भी प्रकोप देखा जा सकता है-**

1.जीवाणु झुलसा रोग: यह कवक जनित रोग है जिसमें पौधे के वायवीय भाग पर भूरे रंग के दाग बन जाते हैं तथा कभी-कभी भूरे काले रंग के भी दिखाई देते हैं।

2.पत्तीधब्बारोग: इस रोग में पत्तियों पर हल्केभूरे रंग तथा गहरे भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं जो बाद में अनियमित हो जाते हैं।

3.न्यूवील्ट: इस रोग में पौधों परउकठा के लक्षण दिखाई देते हैं, बस पौधे के सूखने की गति तेज होती है तथा पौधा अचानक पुरा सूख जाता है यदि दो पौधे हैं तो एक पौधा सूख जाता है तथा एक स्वस्थ रहता है।? यह इस रोग का प्रमुख लक्षण है। इस रोग का कारण तापमान में अचानक परिवर्तन तथा मृदा में अनियमित नमी है इस रोग के नियंत्रण के लिए 100 लीटर पानी में 1500 ग्राम यूरिया को मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

कपास की फसल का उत्पादन एवं उपज

कपास की फसल का उत्पादन चुने द्वारा किया जाता है जिसके लिए मजदूरों की आवश्यकता होती है। कपास की उन्नत प्रजातियों की चुनाई नवंबर से फरवरी तक की जा सकती है। तथा बी.टी. एवं शंकर किस्मों में अक्टूबर से जनवरी फरवरी तक किया जाता है। कपास के अच्छे प्रबंधन से देसी किस्म में 10 से 15q/he तथा शंकर किस्म से 13 से 18q/he तक का उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

दिनेश शिवहरे
Mob. : 98263-55396
मध्य प्रदेश का पहला
श्री दयाल बन्धु केन्द्र
(हिनौतिया वालों की दुकान)
सभी प्रकार की कीटनाशक दवाईयां, जिन्क एवं
बीज आदि के थोक एवं खेरीज विक्रेता
गायत्री मंदिर के पास, जवाहर गंज, डबरा जिला ग्वालियर (म.प्र.)
E-mail : shridayalbandhu@gmail.com, dineshshivhare66yahoo.com
08/2023-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

न्यूनतम समर्थन मूल्य

वर्षा किरार (एम.एससी. कृषि अर्थशास्त्र), जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय जबलपुर

परिचय

''न्यूनतम समर्थन मूल्य (Minimum Support Price) वह गारंटीकृत राशि है जो किसानों को तब दी जाती है, जब सरकार उनकी फसल खरीदती है। ''

न्यूनतम समर्थन मूल्य (एम.एस.पी.) कृषि लागत और मूल्य आयोग (Commission for agricultural cost and prices) की सिफारिशों पर आधारित है, जो उत्पादन लागत मांग तथा आपूर्ति, बाजार मूल्य रुझान, अंतर फसल मूल्य समानता आदि जैसे विभिन्न कारकों पर विचार करता है।

चर्चा में क्यों ?

- केन्द्र सरकार ने 2024-25 विपणन सत्र के लिये गेहूँ और पांच अन्य फसलों के लिर न्यूनतम समर्थन मूल्य में बढ़ोत्तरी की घोषणा की है।
- वर्ष 2007-08 के बाद से गेहूँ की कीमतों में 150 रु. प्रति माह क्विंटल की सबसे अधिक वृद्धि हुई है जो उच्चतम स्तर है।
- गेहूँ एक महत्वपूर्ण रबी फसल है और भारत में क्षेत्रफल की दृष्टि से दूसरी सबसे बड़ी फसल है तथा अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

न्यूनतम समर्थन मूल्य के तहत फसलें

- कृषि लागत और मूल्य आयोग द्वारा सरकार को 22 अधिदिष्ट फसलों के लिए (एम.एस.पी.) तथा गन्ने हेतु उचित और लाभकारी मूल्य की सिफारिश की जाती है।
- अधिदिष्ट फसलों में 14 खरीफ फसलें, 6 रबी फसलें और अन्य वाणिज्यिक फसलें शामिल हैं। इसके अलावा लाही और नारियल के न्यूनतम समर्थन मूल्यों का निर्धारण क्रमशः सरसों और सूखे नारियल के न्यूनतम समर्थन मूल्यों के आधार पर किया जाता है।

न्यूनतम समर्थन मूल्य की आवश्यकता

- वर्ष 2014 और वर्ष 2015 में लगातार दो सूखे की घटनाओं के कारण किसानों को वर्ष 2014 के बाद से वस्तु की कीमतों में लगातार गिरावट का सामना करना पड़ा।
- विमुद्रीकरण व वस्तु एवं सेवा कर ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था, मुख्य रुप से गैर कृषि क्षेत्र के साथ-साथ कृषि क्षेत्र को भी नकारात्मक रुप से प्रभावित किया है।
- वर्ष 2016-17 के बाद अर्थव्यवस्था में जारी मंदी और उसके बाद कोविड महामारी के कारण अधिकांश किसानों के लिये परिदृश्य विकट बना हुआ है।

भारत में एमएसपी व्यवस्था से संबद्ध समस्याएं

- **सीमितता:** 23 फसलों के लिए (एम.एस.पी.) की आधिकारिक घोषणा के विपरीत केवल चावल और गेहूँ की खरीद की जाती है क्योंकि इन्हीं दोनों खद्यान्नों का वितरण राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम के तहत किया जाता है। शेष अन्य फसलों के लिए यह अधिकांशतः

तदर्थ व महत्वहीन है। इसका अर्थ यह है कि गैर-लक्षित फसलें उगाने वाले अधिकांश किसानों को एम.एस.पी. से लाभ नहीं मिलता है।

- **अप्रभावी कार्यान्वयन:** शांता कुमार समिति ने वर्ष 2015 में अपनी रिपोर्ट में बताया था कि किसानों को एम.एस.पी. का मात्र 6% ही प्राप्त हो सका, जिसका अर्थ यह हुआ कि 94% किसान एम.एस.पी. के लाभ से वंचित रहे हैं। इसका मुख्य कारण किसानों के लिये अपर्याप्त खरीद तंत्र और बाजार पहुँच है।
- **प्रवण फसल का प्रभुत्व:** चावल और गेहूँ के लिए एम.एस.पी. पर ध्यान केन्द्रित करने से इन दो प्रमुख खाद्य पदार्थों के पक्ष में फसल पैटर्न में बदलाव आया है।
- **बिचौलियों पर निर्भरता:** एम.एस.पी. आधारित खरीद प्रणाली में प्रायः बिचौलिये और कृषि उपज बाजार समितियों के अधिकारी शामिल होते हैं जिससे विशेषतः छोटे किसानों के लिये अक्षमताएं उत्पन्न होंगी और उनके लिये लाभ कम हो जाएगा।
- **सरकार पर बोझ:** सरकार एम.एस.पी. समर्थित फसलों के बफर स्टाक की खरीद और रख-रखाव में एक वृहद् वित्तीय बोझ उठाती है। इससे उन संसाधनों का विचलन हो जाता है जिन्हें अन्य कृषि या ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लिये आवंटित किया जा सकता है।

कृषि विशेषज्ञ की राय

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉ. रणजीत सिंह बताते हैं कि पिछले ट्रेक रिकार्ड से ज्ञात होता है कि केवल तीन से चार फसलें (मुख्य रुप से गेहूँ, धान, कपास और कभी-कभी कुछ दालें) एम.एस.पी. पर खरीद की जा रहीं थी, जबकि शेष फसलें एम.एस.पी. से काफी नीचे खरीदी जा रहीं थी। यह मुख्य रूप से इसलिए है क्योंकि किसानों को बाजार ताकतों और निजी बिचौलियों की दया पर छोड़ दिया जाता है। एम.एस.पी. का कार्यान्वन न होना और बड़ी संख्या में फसलों की एम.एस.पी. से कम खरीद, अन्य बातों के साथ-साथ फसल विविधीकरण में प्रमुख बाधाओं में से एक रही है जो भारतीय कृषि और पर्यावरण को बचाने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। एम.एस.पी. का अप्रभावी कार्यान्वन और सभी फसलों की पर खरीद न होना भी किसानों की मुख्य चिंताओं में से एक है। ऐसा पारिदृश्य को कानूनी दर्जा देने के लिये एक मजबूत माध्यम तैयार करता है क्योंकि यह न्यूनतम या संदर्भ मूल्य है।

आगे की राह

फसल विविधीकरण को प्रोत्साहित करने और चावल व गेहूँ के प्रभुत्व को कम करने के लिये सरकार धीरे-धीरे एम.एस.पी. समर्थन हेतु पात्र किसानों की सूची का विस्तार कर सकती है। इसमें किसानों को अधिक विकल्प मिलेंगे और बाजार की मांग के अनुरुप फसलों की खेती को बढ़ावा मिलेगा। सभी क्षेत्रों में सभी फसलों के लिए एम.एस.पी. प्रदान करने के बदले सरकार उन फसलों के लिये एम.एस.पी. निर्धारित करने पर ध्यान केन्द्रित कर सकती है जो खाद्य सुरक्षा के लिए आवश्यक है और जिनका किसानों की आजीविका पर प्रभाव पड़ता है। यह लक्षित दृष्टिकोण संसाधन आवंटन को अनुकूलित करने में मदद कर सकता है। पिछले कुछ वर्षों में बहुसंख्यक, विशेषकर छोटे और सीमांत किसानों के लिये खेती लाभकारी नहीं रही है। उनकी आय में वृद्धि किसानों के वित्तीय संकट का दीर्घकालिक समाधान हो सकती है। आय में इस वृद्धि को सुनिश्चित करने के लिए सरकार को किसानों को एम.एस.पी. पर सभी प्रमुख फसलों के लिए सुनिश्चित खरीद और रिटर्न प्रदान करने के लिये एक प्रभावी प्रणाली स्थापित करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

01/2023-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

पशुपालकों हेतु वर्षा ऋतु में हरे चारे के लिए मक्का की उन्नत खेती

डॉ. पुष्पेन्द्र सिंह यादव, डॉ. अमित कुमार झा
श्रीमती ललिता सोलंकी
अखिल भारतीय समन्वित चारा अनुसंधान परियोजना सस्य विज्ञान विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय जबलपुर (म.प्र.)

महत्व: हरा चारा पशुओं के आहार के लिए सबसे सस्ता स्रोत है, जो कम लागत में पशुपालकों को अधिक आय दिलवाने में सहायक है। पशुधन क्षेत्र के सतत् विकास के लिए नियमित रूप से पर्याप्त और पौष्टिक चारे की आपूर्ति अति आवश्यक है। किसान अपनी आमदनी को बढ़ाने के लिए खेती-किसानी के साथ-साथ पशुपालन यानी की गाय-भैंस का पालन भी करते हैं। लेकिन पशुपालन में उनके सामने कई तरह की परेशानियाँ आती हैं जिसमें सबसे बड़ी परेशानी गाय-भैंस के चारे को लेकर आती है। लगातार बढ़ती जनसंख्या की खाद्यान्न आपूर्ति के लिए खाद्य फसलों का क्षेत्रफल बढ़ने, शहरीकरण एवं औद्योगिकीकरण के कारण चारे वाली फसलों के अंतर्गत आने वाला क्षेत्रफल निरन्तर कम अथवा स्थिर हो गया है। वर्तमान समय में देश में क्रमशः 35.6, 10.95 एवं 44 प्रतिशत हरा चारा, शुष्क चारा और सान्द्र आहार की कमी दर्ज की गई है। इस कमी को पूरा करने के लिए हरे चारे की आधुनिक विधि से चारे की खेती करना ही एकमात्र विकल्प शेष रह जाता है। इसलिए उपलब्ध संसाधनों का सही और उन्नत तकनीकी के साथ उपयोग करते हुये मक्का फसल कि उन्नत खेती कर के पशु अहार की पूर्ती की पूर्ती कर सकते हैं। मक्का का चारा पौष्टिक होता है। इसमें पौष्टिकता सिल्क अवस्था सबसे अधिक होती है। चारे में 7-10 प्रतिशत प्रोटीन, (कार्बोहाइड्रेट) 15-36 प्रतिशत रेशा एवं 56 प्रतिशत नाइट्रोजन रहित निष्कर्षण पाया जाता है जो दुग्ध उत्पादन में पशु स्वास्थ्य एवं दुग्ध उत्पादन में सहायक है। हरे चारे की आवश्यकता एवं उपलब्धता का अनुमानित आंकलन निम्न प्रकार है:-

चारे की स्थिति (मिलियन टन में)

वर्ष	चारे की उपलब्धता		चारे की मांग		चारे की कमी (%)	
	हरा चारा	सूखा चारा	हरा चारा	सूखा चारा	हरा चारा	सूखा चारा
2005	390	443	1025	569	62.0	22.1
2010	395	451	1061	589	62.8	23.5
2015	401	466	1097	609	63.5	23.6
2020	406	473	1134	630	64.2	24.8
2025	411	488	1170	650	64.9	24.9

स्रोत: पशुपालन एवं डेयरी पर पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत गठित कार्य समूह की ड्राफ्ट

रिपोर्ट (2002-07 भारत सरकार, योजना आयोग, अगस्त 2001)

जलवायु : मक्का गर्म जलवायु की चारे की प्रमुख फसल है। इसकी खेती समुद्र तल से 4000 मीटर ऊंचाई तक की जा सकती है। इसकी खेती 50-75 सें-मी- समान वर्षा वाले क्षेत्रें में आसानी से की जा सकती है। भारत में इसकी खेती मुख्य रूप से खरीफ मौसम में की जाती है। पौधों की सामान्य वृद्धि के लिए 30-32 डिग्री सेल्सियस तापमान उत्तम माना जाता है। बीज अंकुरण के लिये अनुकूलतम तापक्रम 15-18 से उपयुक्त रहता है। प्राय हल्की वर्षा एवं भरपूर सूर्य का प्रकाश इसकी वृद्धि में अधिक सहायक होते हैं। पौधों की वृद्धि की शुरूआत में यह जलभराव के प्रति काफी संवदेनशील है।

भूमि : हमारे देश में मक्का की खेती लगभग सभी प्रकार की मृदा में की जाती है। अच्छी जल निकास वाली उपजाऊ, बुलई दोमट तथा दोमट भूमि में इसकी पैदावार के लिये सर्वोत्तम होती है, जिसका पी-एच मान 6 से 7.5 एवं रासायनिक संरचना सामान्य हो। साथ ही साथ अधिक नमी एवं जल भराव वाली हालत में पौधों की वृद्धि रूक जाती है एवं पौधे मर भी जाते है। अतः ऐसी भूमि, जिसमें जल निकास अच्छा हो, मक्का की पैदावार के लिये उपयुक्त होती है। क्षारीय भूमि में इसकी खेती के लिए उपयुक्त नहीं होती है।

मक्के के चारे के लिए खेत तैयार करने का तरीका

■ खेत को मिट्टी पलटने वाले हल से जुताएं ■ इसके बाद, दो से तीन बार कल्टीवेटर से आड़ी-खड़ी जुताई करके ज़मीन को भुरभुरा और महीन बना लें ■ पाटा चलाकर खेत को समतल बना लें ■ अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में इसी समय खेत में जल निकास नालियों का निमार्ण भी कर लेना चाहिए ■ बुआई से 20 दिन पहले, प्रति हेक्टेयर 10-15 टन गोबर की खाद मिला दें ■ दीमक से बचने के लिए, आखिरी जुताई के समय 25 किलो क्लोरोपायरीफ़ास चूर्ण डालें ■ बुआई से पहले, मिट्टी से जुड़े रोगों और कीड़ों से बचने के लिए कवकनाशी या कीटनाशक का इस्तेमाल करें ■ मक्के के बीजों को उचित गहराई पर बोना चाहिए, ताकि वे मिट्टी से अच्छी तरह से ढक जाएं और अंकुरण अच्छा हो सके

उन्नत किस्में: विभिन्न क्षेत्रें में बोई जाने वाली चारा मक्का की उन्नत किस्में निम्न हैं

किस्में	अनुकूलित क्षेत्र	औसत हरे चारे की उपज (क्विं./है.)
आफ्रीकन टॉल	सम्पूर्ण भारत	550-800
विजय, मोती एवं जवाहर कम्पोजिट	सम्पूर्ण भारत	350-470
जे-1006	उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र	450-550
वी- एल--54	पहाड़ी क्षेत्र	300-450
ए-पी-एफ-एम--8	दक्षिणी क्षेत्र	350-400
प्रताप मक्का चरी एवं पूसा हाइब्रिड-1	उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र	450-500

बोआई का समय : हरे चारे के लिए मक्का की खेती वर्षा ऋतु एवं ग्रीष्म ऋतु में की जाती है। अत वर्षा ऋतु में इसकी बुआई मानसून के आने पर जून के अंतिम सप्ताह से लेकर जुलाई के प्रथम सप्ताह तक कर लेना चाहिए तथा गर्मियों में इसकी बुआई अप्रैल माह में करते है।

बीज की मात्रा : चारे के लिए 50 -60 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर की दर से उपयोग में लाना चाहिए बीज कि मात्रा कम होने पर ताने कि मोटाई अधिक हो जाती है जिससे पशु उसे चाव से नहीं खाते हैं अतः बीज दर उचित होना नितांत आवश्यक है।

बीजों का उपचार : बीज की बुआई बीजोपचार के पश्चात ही करनी चाहिए। मृदा तथा बीजजनित रोगों एवं कीटों से फसल को बचाने के लिए बीजोपचार एक अति आवश्यक प्रक्रिया है। बीज उपचार प्रक्रिया से बीजों का अंकुरण बढ़ता है। बीज उपचार करने के लिए सबसे पहले बीजों को फफूंदनाशी से उसके बाद कीटनाशी द्वारा तथा उसके बाद जैव उर्वरक द्वारा उपचारित करना चाहिए। फफूंदनाशी के लिए 2-3 ग्रा. कार्बेंडाजिम या थीरम दवा एवं कीटनाशी के रूप में इमिडाक्लोरोप्रिड 3-5 मि-ली- दवा प्रति किलो ग्राम बीज को उपचारित करने के लिए काम में लेना चाहिए। इसके 3-5 घंटे बाद जैव उर्वरक द्वारा बीजों को उपचारित करने के लिए तरल एजोस्पिरिलम कल्चर की 200 मि-ली- मात्र एक एकड़ क्षेत्र में लगने वाले बीजों के लिए करनी चाहिए। उपचारित बीजोंको छाया में सुखाकर बुवाई के लिए काम में ले सकते हैं। जैव उर्वरक 15-20% तक उर्वरक नाइट्रोजन बचाते हैं।

खाद एवं उर्वरक : 10-15 टन गोबर की खाद बुआई के पूर्व खेत में अच्छी तरह से फैलाकर मिला देना चाहिए। इसके बाद 75-80 किलोग्राम नत्रजन तथा 30-40 किलोग्राम फास्फोरस प्रति हेक्टेयर के हिसाब से उपयोग में लाना चाहिए। नत्रजन की दो तिहाई मात्रा तथा फास्फोरस की पूरी मात्रा बुआई के समय तया शेष नत्रजन बोनी के 30-40 दिन बाद. बाकी बची नाइट्रोजन, पौधों के घुटनों तक होने और गुच्छे बनने से पहले खेत में डालना चाहिए। मक्के की फ़सल में ज़िंक और मैग्नीशियम की कमी आम है. इसे पूरा करने के लिए, प्रति एकड़ 8 किलो ज़िंक सल्फ़ेट डालें. लोहे की कमी को पूरा करने के लिए, 25 किलो सूक्ष्म तत्वों को 25 किलो रेत में मिलाकर बिजाई के बाद डालें. मिट्टी के नमूने की जांच के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करें। तो अधिक फायदा होगा।

सिंचाई: वर्षा ऋतु में साधारणत सिंचाई की आवश्यकता नहीं पडती है परंतु यदि वर्षा न हो तो सिचाई 15-20 दिनों के अंतराल से करना चाहिए। वर्षा ऋतु में पानी के साथ-साथ जल निकास का भी उचित प्रबंध होना चाहिए। गर्मी में सिंचाई का अंतराल 10-12 दिनों का होना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण: प्राय चारे के लिए उगाई गई फसल में निंदाई-गुडाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है परंतु प्रारंभिक अवस्था में पौधों को खरपतवार से बचाने हेतु एक निंदाई आवश्कतानुसार करें। खरपतवारों को खरपतवार नाशक दवा जैसे एट्राजीन एक किलोग्राम सकिय तत्व 600-800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से बुआई के तुरंत बाद छिड़ककर नियंत्रण किया जा सकता है।

कीट एवं रोग नियंत्रण : वर्षा ऋतु में रोगों एवं कीड़ों का प्रकोप ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा अधिक होती है। रोगों एवं कीड़ों के प्रकोप से बचने के लिए स्वस्थ्य और रोग रहित बीजों का उपयोग करें। रोग ग्रसित पौधों को खेत से निकालकर जला देना चाहिए। इस फसल में तना छेदक कीट का प्रकोप काफी देखने को मिलता है इसके नियंत्रण के लिए के लिए 15 किलोग्राम थायडान के दाने, प्रति हेक्टर की दर से उपयोग करना चाहिये। जब पौधे 20-25 दिन के हो जाये तो 2-3 दाना प्रति पौधे की दर से पौधे के उपर भाग में पत्तियों के घेरे में डाल देना चाहिए। इसके अतिरिक्त थायोडान का। प्रतिशत घोल 600-800 लीटर प्रति हेक्टर की दर से छिड़का जा सकता है। ध्यान रहे, उपचार के बाद 25-30 दिन तक पशुओं को चारा नहीं खिलाना चाहिये।

फसल चक्र : चारे के अन्तर्गत निरन्तर घटते क्षेत्रफल एव बढ़ती माँग को देखते हुये भविष्य में चारे की सघन खेती करते हुये अधिक उत्पादन देने वाली ऐसी फसलो तथा प्रजातियों का चयन करना होगा जिनका चारा भी अधिक पौष्टिक हो। **वर्ष भर हरा चारा उत्पादन हेतु कुछ सघन फसल चक्र निम्नलिखित है** -1. बरसीम + सरसों मक्का + लोबिया 2. मक्का + लोबिया मक्का + लोबिया जई मक्का लोबिया 3. बाजरा + ज्वार (2 कटाई) एक वर्षीय ल्यूसर्न (6 कटाई) 4. ज्वार + लोबिया - जई मक्का + लोबिया 5. ज्वार + लोबिया - बरसीम + सरसों मक्का + लोबिया 6. ज्वार + बाजरा + लोबिया ग्वार ज्वार जई + सरसों-मक्का + लोबिया बरसीम सरसों मक्का + लोबिया8. मकचरी या ज्वार + लोबिया बरसीम जई मक्का लोबिया 9. धान- गेंहूँ - मक्का + लोबिया (एक वर्षीय) 10. दीनानाथ घास-जई- मक्का + लोबिया (एक वर्षीय)

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

तिल की उन्नत उत्पादन तकनीक

डॉ. पंकज कुमार बागरी गेस्ट फैकल्टी सस्य विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, पन्ना (म.प्र.)

डॉ. विजय कुमार यादव अधिष्ठाता, पादप रोग विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, पन्ना (म.प्र.)

प्रदेश में तिल की खेती प्रमुखतया बुन्देलखण्ड की मुख्य रूप से रांकड़, पडुवा एवं अच्छे जल निकास वाली कांवर, मार भूमि में शुद्ध एवं मिलवां खेती के रूप में की जाती है। मैदानी क्षेत्रों में इसे ज्वार बाजरा तथा अरहर के साथ बोते हैं। निम्न सघन पद्धतियां अपनाकर इसका उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

खेत की तैयारी

अच्छी पैदावार के लिए उत्तम जल निकास वाली भुमि की आवश्यकता होती है। एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से व 2-3 जुताईयां कल्टीवेटर अथवा देशी हल से करना चाहिए। जुताई के समय 5 टन गोबर की सड़ी हुई खाद प्रति हेक्टेयर खेत में मिलाना चाहिए।

बीज दर एवं शोधन

एक हैक्टे यर क्षेत्र के लिये 3-4 किग्रा. स्वच्छ एवं स्वस्थ बीज का प्रयोग करें। बीज जनित रोगों से बचाव हेतु 2 ग्राम धीरम एवं 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति किग्रा. बीज की दर से शोधन हेतु प्रयोग करें।

बुआई का समय एवं विधि

बुआई का उचित समय जून के अन्तिम सप्ताह से जुलाई का दूसरा पखवारा है। पश्चिमी उ0प्र0 में इससे पूर्व बुआई करने से फाइलोडी रोग लगने का भय रहता है। बुआई हल के पीछे लाइनों में 30 से 45 से.मी. की दूरी पर करें। बीज को कम गहराई पर बोयें। बीज का आकार छोटा होने के कारण बीज को रेत,राख या सूखी हल्की बलुई मिट्टी में मिलाकर बोयें।

संतुलित उर्वरकों का प्रयोग

उर्वरकों का प्रयोग भूमि परीक्षण के आधार पर करें। यदि परीक्षण न कराया गया हो तो 30 किग्रा. नत्रजन 20 किग्रा. फास्फोरस तथा 20 किग्रा. गन्धक प्रति हे. की दर से प्रयोग करें। राकड़ तथा भूड़ भूमि में 20 किग्रा. पोटाश प्रति हे. का भी प्रयोग करें। नत्रजन की आधी मात्रा एवं फास्फोरस व पोटाश तथा गंधक की पूरी मात्रा, बुवाई के समय बेसल ड्रेसिंग के रूप में तथा नत्रजन की शेष मात्रा निराई गुड़ाई के समय प्रयोग करें। फसल में पुष्पावस्था तथा फली बनते समय 2% यूरिया का घोल बनाकर छिड़काव करने से पैदावार में वृद्धि होगी।

निराई-गुड़ाई

प्रथम निराई गुड़ाई, बुवाई के 15-20 दिनों बाद दूसरी निराई 30-35 दिन बाद करें। निराई-गुड़ाई करते समय पौधें की थिनिंग (विरलीकरण) करके उनकी आपस की दूरी 10 से 12 सेमी. कर लें। एलाक्लोर 50 ई.सी. 1.25 लीटर प्रति हे0 बुआई के 3 दिन के अन्दर प्रयोग करने से खरपतवारों का नियन्त्रण हो जाता है।

सिंचाई

जब पौधों में 50-60 प्रतिशत फली लग जाय और उस समय नमी की कमी हो तो एक सिंचाई करना आवश्यक है।

कटाई-मड़ाई

फसल की कटाई उचित अवस्था पर बण्डल बनाकर खलिहान

उन्नतिशील प्रजातियां

प्रजातियां	विशेषता	पकने की अवधि (दिनो में)	तेल प्रतिशत	उपज (क्विं./हे.)	उपयुक्त क्षेत्र
टा-4	फलियाँ एकल, सन्मुखी बीज सफेद	90-100	40-42	6-7	मैदानी क्षेत्र
टा-12	फलियाँ एकल, सन्मुखी बीज सफेद	85-90	40-45	5-6	मध्य एवं पश्चिमी क्षेत्र
टा-13	फलियाँ एकल, सन्मुखी बीज सफेद	90-95	40-45	6-7	बुन्देलखण्ड क्षेत्र
टा-78	फलियाँ एकल, सन्मुखी	80-85	45-48	6-8	सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश
शेखर	फलियाँ एकल, सन्मुखी	80-85	45-48	6-8	सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश

ऊर्द्धाकार रखें। बण्डल सूख जाने पर पक्के फर्श या तिरपाल पर ही तिल की मड़ाई करें। गोबर के लेप खलिहान में मड़ाई न करे इससे निर्यात की गुणवत्ता में कमी आ जाती है।

फसल सुरक्षा

कीट

1. पत्ती व फल की सूण्डी - इनकी सूँडियाँ कोमल पत्तियों तथा फलियों को खाती है तथा जाला बनाकर बाँध देती है।

2. जैसिड- पत्तियों का रस चूसते हैं तथा कीट के अधिक प्रकोप होने पर पतितयां सूख कर गिर जाती हैं।

रोकथाम

• डाइमेथोएट 30 ई.सी. 1.25 ली./हे0 • क्यूनालफास 25 ई.सी. 1.25 ली./हे0 • मिथाइल-ओ- डिमेटान 25 ई.सी. 1 ली./हे.

रोग

1. फाइलोडी- यह रोग माइक्रो प्लाजमा द्वारा होता है। इस रोग में पौधों का पुष्पविन्यास पत्तियों के विकृत रूप में बदलकर गुच्छेदार हो जाता है। इस रोग का वाहक कीट फुदका है।

उपचार

• तिल की बुवाई समय से पहले न की जाये।

• बुआई के समय कूड़ में फोरेट 10 जी. 15 किग्रा0/हे0 की दर से प्रयोग किया जाये।

• मिथाइल-ओ-डिमेटान 25 ई.सी. 1 ली. /हे. की दर से छिड़काव करना चाहिये।

2. फाइटोफ्थोरा झुलसा - इस रोग में पौधों के कोमल भाग व पत्तियां झुलस जाती हैं।

उपचार - इसकी रोकथाम हेतु आक्सीक्लोराइड 3.0 किग्रा. या मैंकोजेब 2.5 किग्रा. प्रति हे. की दर से आवश्यकतानुसार छिड़काव करना चाहिये।

मुख्य बिन्दु

• बुवाई 10-20 जुलाई तक अवश्यक करें। • पानी के निकास की समुचित व्यवस्था करें। • बुआई के 15-20 दिन बाद विरलीकरण अवश्य करें।

12/2022-23

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में जैविक खेती की भूमिका

उमेश पटले (अतिथि व्याख्याता)
सस्य विज्ञान, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट सतना (म.प्र.)

अग्निवेश शांडिल्य (शोध छात्र)
सब्जी विज्ञान, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट सतना (म.प्र.)

एकता पन्द्रे (ग्रामीण कृषि विकास अधिकारी) विकासखंड-लांजी, जिला-बालाघाट

परिचय: आज के समय में, जब वैश्विक जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है और पर्यावरणीय चुनौतियाँ भी गंभीर हो रही हैं, खाद्य सुरक्षा एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय बन गई है। वैश्विक स्तर पर खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न रणनीतियाँ और उपाय किए जा रहे हैं। इस संदर्भ में, जैविक खेती (ऑर्गेनिक फार्मिंग) एक प्रभावशाली और स्थायी समाधान के रूप में उभरकर सामने आई है। जैविक खेती न केवल पर्यावरण की सुरक्षा करती है, बल्कि यह मानव स्वास्थ्य और दीर्घकालिक कृषि उत्पादकता को भी बढ़ावा देती है।

जैविक खेती का परिचय: जैविक खेती वह कृषि पद्धति है जिसमें कृत्रिम रसायनों, उर्वरकों, कीटनाशकों और जीन परिवर्तित जीवों (जीएमओ) का उपयोग नहीं किया जाता है। इसके बजाय, यह पद्धति प्राकृतिक संसाधनों और प्रक्रियाओं पर निर्भर करती है, जैसे कि जैविक खाद, हरी खाद, कम्पोस्ट, फसल चक्रण, और जैविक कीटनाशक। जैविक खेती का उद्देश्य स्वस्थ, पौष्टिक और सुरक्षित खाद्य उत्पादन करना है जो पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रख सके।

खाद्य सुरक्षा का अर्थ: खाद्य सुरक्षा का अर्थ है कि सभी लोगों को हर समय पर्याप्त, सुरक्षित और पौष्टिक भोजन की उपलब्धता होनी चाहिए। यह केवल भोजन की उपलब्धता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सुनिश्चित करना भी आवश्यक है कि भोजन की गुणवत्ता उच्च हो और वह स्वास्थ्य हेतु हानिकारक न हो। खाद्य सुरक्षा के चार मुख्य स्तंभ हैं:

1.**उपलब्धता:** पर्याप्त मात्रा में भोजन का उत्पादन और आपूर्ति।
2.**पहुँच:** सभी लोगों के लिए भोजन की सुलभता।
3.**उपयोग:** भोजन का उचित पोषण और सुरक्षित तरीके से उपयोग।
4.**स्थिरता:** भविष्य में खाद्य सुरक्षा को बनाए रखने की क्षमता।

जैविक खेती और खाद्य सुरक्षा

1.**पोषण में सुधार:** जैविक खेती से प्राप्त फसलों में अधिक पोषण तत्व पाए जाते हैं। अध्ययनों से पता चला है कि जैविक तरीके से उगाए गए अनाज, सब्जियाँ और फलों में विटामिन, खनिज और एंटीऑक्सिडेंट्स की मात्रा अधिक होती है। यह न केवल खाद्य सुरक्षा को बढ़ावा देता है, बल्कि लोगों के स्वास्थ्य में भी सुधार करता है। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग से बचाव होने के कारण, जैविक उत्पादों में विषाक्त अवशेष नहीं होते, जिससे उनका सेवन सुरक्षित होता है।

2.**पर्यावरण संरक्षण:** जैविक खेती पर्यावरण के लिए अनुकूल होती है। यह मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखने में सहायक है और मिट्टी के क्षरण को रोकती है। इसके अलावा, जैविक खेती जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में भी मदद करती है। उदाहरण के लिए, जैविक खेती के माध्यम से कार्बन डाइऑक्साइड को मिट्टी में संग्रहित किया जा सकता है, जो ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करता है।

3.**स्थिरता और दीर्घकालिक उत्पादकता:** जैविक खेती के माध्यम से दीर्घकालिक कृषि उत्पादकता सुनिश्चित की जा सकती है। जैविक पद्धतियों के माध्यम से मिट्टी की संरचना और जैव विविधता को बनाए रखा जाता है, जो फसलों की दीर्घकालिक उत्पादकता के लिए आवश्यक है। फसल चक्रण, हरी खाद और जैविक उर्वरकों के उपयोग से मिट्टी की पोषण शक्ति को बनाए रखा जाता है, जिससे फसलों की उत्पादकता में वृद्धि होती है।

4.**स्वास्थ्य और कल्याण:** जैविक खेती से प्राप्त उत्पाद स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित होते हैं। इनमें रासायनिक अवशेष नहीं होते, जिससे कई गंभीर बीमारियों, जैसे कि कैंसर, हृदय रोग, और अन्य स्वास्थ्य समस्याओं का जोखिम कम होता है। इसके अलावा, जैविक खेती का अभ्यास करने वाले किसान और कृषि श्रमिक भी रासायनिक संपर्क से सुरक्षित रहते हैं, जिससे उनका स्वास्थ्य भी बेहतर रहता है।

5.**सामाजिक और आर्थिक लाभ:** जैविक खेती छोटे और मध्यम किसानों के लिए आर्थिक रूप से लाभदायक हो सकती है। जैविक उत्पादों की बढ़ती मांग के कारण किसान अधिक लाभ कमा सकते हैं। इसके अलावा, जैविक खेती के लिए आवश्यक संसाधनों की लागत कम होती है, जिससे किसानों की उत्पादन लागत भी कम होती है। जैविक खेती ग्रामीण विकास को भी बढ़ावा देती है, जिससे स्थानीय समुदायों की आर्थिक स्थिति में सुधार होता है।

जैविक खेती की चुनौतियां

हालांकि जैविक खेती के अनेक लाभ हैं, लेकिन इसे अपनाने में कुछ चुनौतियां भी हैं:

1.**प्रारंभिक लागत:** जैविक खेती की शुरुआत में अधिक निवेश की आवश्यकता होती है, विशेषकर यदि किसान पहले से ही पारंपरिक रासायनिक खेती कर रहे हों। उन्हें मिट्टी की उर्वरता को पुर्नस्थापित करने और जैविक प्रमाणन प्राप्त करने के लिए समय और संसाधनों का निवेश करना पड़ता है।

2.**जागरूकता की कमी:** कई किसान अभी भी जैविक खेती के फायदों और इसकी प्रक्रियाओं के बारे में पूरी तरह से जागरूक नहीं हैं। यह जागरूकता की कमी जैविक खेती को अपनाने में एक बड़ी बाधा बन सकती है।

3.**प्रमाणन और विपणन की समस्याएं:** जैविक खेती के लिए आवश्यक प्रमाणन प्रक्रिया जटिल और समय-साध्य हो सकती है। इसके अलावा, जैविक उत्पादों के लिए बाजार की सुलभता भी एक चुनौती हो सकती है, खासकर छोटे किसानों के लिए जो अपने उत्पादों को बड़े बाजारों में बेचने में असमर्थ होते हैं।

4.**उत्पादन में कमी:** कुछ मामलों में, जैविक खेती से पारंपरिक खेती की तुलना में कम उपज प्राप्त हो सकती है, विशेषकर पहले कुछ वर्षों में। यह किसानों के लिए हतोत्साहित करने वाला हो सकता है।

समाधान और भविष्य की दिशा: *जैविक खेती को बढ़ावा देने और खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं:*

1.**शिक्षा और प्रशिक्षण:** किसानों को जैविक खेती की तकनीकों और लाभों के बारे में जागरूक करने के लिए शिक्षा और प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए। सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों को इसमें सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए।

2.**वित्तीय सहायता:** किसानों को जैविक खेती अपनाने हेतु वित्तीय सहायता प्रदान की जानी चाहिए। सरकारें सब्सिडी, कर्ज और अन्य वित्तीय साधनों के माध्यम से किसानों को सहायता प्रदान कर सकती हैं।

जय शीतला खाद बीज भण्डार
उच्च क्वालिटी के बीज, कीटनाशक दवाईयां एवं खाद के थोक व खेरीज विक्रेता
विवेक सिंह (लोहगढ़ वाले)
मोबाइल : 9425116760, 7000820097
आई.सी.आई.सी.आई. बैंक के पास, जवाहरगंज, डबरा, जिला-ग्वालियर
03/2023-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

विज्ञान की खाद्य पदार्थों की दुनिया में एक नई छलांग: लैब उत्पादित मीट

डॉ. सुरभि यादव, डॉ. प्रदीप कुमार सिंह
डॉ. सरलीन तोमर, डॉ. नम्रता अगरवाल
डॉ. श्रीया सुमन
नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान
विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

जब से हम इतिहास में पीछे देख सकते हैं, तब से लोग मांस खाते आ रहे हैं। हमने हमेशा यह मान लिया है कि मांस जानवरों से आता है, लेकिन विज्ञान ने हाल ही में इसे बदलने का एक तरीका खोज लिया है। अब प्रयोगशाला में मांस उगाना संभव है, पूरी तरह से किसी जानवर के शरीर से बाहर। इसे प्रयोगशाला में उगाया गया मांस या संवर्धित मांस के रूप में जाना जाता है।

दुनिया अब जैव पर्यावरण सजीवन और पर्यावरण के बदलावी चयनों पर ध्यान केन्द्रित कर रही है, लैब-उत्पादित मीट एक ऐतिहासिक समाधान के रूप में सामने आ रहा है जो हमारी सबसे ज्यादा चुनौतीपूर्ण समस्याओं में से एक के लिए है: मांस उत्पादन। इस नवाचारिक प्रौद्योगिकी से हम भविष्य में बड़ी मात्रा में मांस का स्वाद लेते हुए वाणिज्यिक पशुपालन खेती के साथ जुड़े पर्यावरणीय प्रभाव को कम करते हुए पृथ्वी को संरक्षित रख सकते हैं। लैब-ग्रोन मीट बस एक प्रचलन नहीं है, यह प्रशासनयत खाद्य क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण विकास है।

स्वाद और बनावट: लैब-उत्पादित मांस के बारे में जो पहली बात प्रभावित करती है वो यह है की, इसकी स्वाद और बनावट के मामले में पारंपरिक मांस के साथ अद्वितीय समानता है। टेस्ट करने वालों ने लैब उत्पादित मांस का स्वाद लिया और वे उन्हें उनके पशु-पालन वाले समकक्ष से अलग नहीं कर पाये। मांस का स्वाद असली था और बनावट पारंपरिक मांस के अनुभव के करीब थे। जो लोग स्वाद और गुणवत्ता पर समझौता नहीं करना चाहते हैं, उनके लिए लैब-ग्रोन मीट संभावना है कि उनकी उम्मीदों को पूरा करेगा।

प्रशासनयता: लैब-ग्रोन मीट का सबसे आकर्षक पहलू जीवों के पालन-पोषण के खराब पर्यावरणीय परिणामों को कम करने की संभावना है। पारंपरिक मांस उत्पादन के लिए ज़मीन, पानी, और ऊर्जा की बड़ी मात्रा की आवश्यकता पड़ती है और मांस के लिए पाले जाने वाले पशुओं द्वारा गैस उत्सर्जन भी होती है। दूसरी ओर, लैब-ग्रोन मीट को बहुत कम संसाधनों की आवश्यकता है। यह संवेदनशीलता के लिए एक सतत विकल्प है जिससे वन कटाई, पानी की उपयोग, और कार्बन उत्सर्जन को कम करने में मदद मिल सकती है। पर्यावरण सजग उपभोक्ताओं के लिए, यह एक अच्छा विकल्प है।

नैतिक विचार: पशु कल्याण एक और महत्वपूर्ण मुद्दा है जिस पर लैब-ग्रोन मीट पारंपरिक मांस से बेहतर है। पारंपरिक मांस उत्पादन में नैतिक चिंताएं अक्सर जीव की पीड़ा के संबंध में होती हैं। लैब-ग्रोन मीट उन चिंताओं को पूरी तरह से दूर कर देता है, क्योंकि इसमें पशुओं को पालने और वध करने की प्रक्रिया शामिल ही नहीं होती। मांस के उत्पादन में मानवीय प्रकृति के दृष्टिकोण को पूरी तरह से ध्यान रखा जाता है।

सुरक्षा और स्वास्थ्य: लैब-ग्रोन मीट खाद्य सुरक्षा के मामले में पारंपरिक मांस से कहीं बेहतर है। जैसे पारंपरिक पशु खेती में प्रयुक्त बीमारियों या एंटीबायोटिक्स से प्रशासनिक भ्रष्टाचार का खतरा होता वैसा लैब उत्पादित मांस में नहीं होता, यह साफ मांस और स्वस्थ विकल्प प्रदान करता है। इसके अलावा, यह पशुओं

से मानवों में छलांग लगाने वाली जूनोटिक बीमारियों के खतरे को कम करने के लिए बहुत अच्छा विकल्प है, इन बीमारियों कि जो जानवरों से मानवों में ट्रांसफर हो सकती है, जो हाल के वर्षों में महत्वपूर्ण चिंता का विषय बनी हुई हैं।

चुनौतियां और लाग: लैब-ग्रोन मीट के पास बड़ी संभावना होने के बावजूद, इसकी उत्पादन प्रक्रिया आज किए जाने वाले तरीकों द्वारा यह महंगी है और पारंपरिक मांस के साथ प्रतिस्पर्धा करने के लिए इसे लागत-कुशल बनने की आवश्यकता है। इसके अलावा, नियामक ढांचा और जनमत को पूरी तरह से लैब-ग्रोन मीट को एक प्रमुख विकल्प के रूप में पूरी तरह स्वीकार करने के लिए विकसित होने की आवश्यकता है।

लैब-ग्रोन मीट की समीक्षा पर विचारों को और जोड़ने के लिए कुछ बिंदु प्रस्तुत हैं:

कम भूमि उपयोग: पारंपरिक पशुपालन खेती के लिए बड़ी मात्रा में भूमि की मांग करती है, जिसमें चरण और चारा फसल की उत्पादन शामिल है। लैब-ग्रोन मीट के लिए इससे कम भूमि की आवश्यकता है, जिससे वनस्पति रक्षण और जैव विविधता संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण होता है। आने वाले समय में कटते जंगलों को बचाने में ये बहुत कारगर सिद्ध हो सकता है।

पानी का उपयोग: लैब-ग्रोन मीट का पानी की फुटप्रिंट (कितना पानी प्रति किलो मांस के उत्पादन में खर्च होता है) पारंपरिक मीट की तुलना में बहुत कम होता है। यह पानी की कमी की समस्याओं का समाधान करने में मदद कर सकता है, क्योंकि पारंपरिक पशुपालन खेती और मांस में बदलने के लिए पानी का बड़ी मात्रा में उपयोग होता है।

कस्टमाइजेशन: लैब-ग्रोन मीट प्रौद्योगिकी विभिन्न पसंदों के अनुसार मांस के उत्पादों को अनुकूलित करने की संभावना प्रदान करती है। इसमें वसा संघटन, प्रोटीन संरचना बदलने और अनूठे स्वाद प्रोफ़ाइल बनाने जैसे काम शामिल हो सकते हैं। इसीलिए हर वर्ग की मांग के अनुसार मांस की संरचना बदली जा सकती है और किसी विशेष बीमारी की स्थिति में उस स्थिति के अनुरूप मांस की संरचना की परिकल्पना भी की जा सकती है।

वैश्विक खाद्य सुरक्षा: जबकि दुनिया की जनसंख्या बढ़ती रहती है, एक स्थिर और विश्वसनीय खाद्य आपूर्ति सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है। लैब-ग्रोन मीट पारंपरिक मीट उत्पादन के मुकाबले अधिक दक्ष और नियंत्रित उत्पादन विधि प्रदान कर सकता है जो जलवायु संबंधित बाधाओं के खिलाफ कम संविदान के रूप में होती है। अन्यथा अब प्रकृति के संसाधन इतने बचे ही नहीं हैं के इतनी बड़ी बढ़ती हुई आबादी के लिए लंबे समय तक मांस की आपूर्ति कर पाएं और जल्द ही हमे या तो अपने खान पान का तरीका बदलना होगा या खाद्य उत्पादन की तकनीक।

खाद्य अपव्यय कम करना: लैब-ग्रोन मीट के साथ खाद्य अपव्यय को कम करने की संभावना बड़ी है। क्योंकि इसे एक नियंत्रित वातावरण में उत्पन्न किया जा सकता है, इसके परिवहन और संग्रह के दौरान मांस की कीमत कम होने का संभावना है।

सांस्कृतिक और आहारिक समावेश: लैब-ग्रोन मीट विभिन्न सांस्कृतिक और आहारिक पसंदों और प्रतिबंधों को पूरा कर सकती है। इसे हलाल, कोशर, और शाकाहारी विकल्प बनाने के लिए इंजीनियरिंग की सहायता ली जा सकती है, जिससे इसका विशिष्ट आकर्षण विभिन्न प्रकार के उपभोक्ताओं के लिए किया जा सकता है। जैसे की कुछ धार्मिक मान्यताओं में किसी विशिस्ट प्रकार के मांस का सेवन बताया गया हो लेकिन वह जीव प्रजाति अगर विलुप्ति की कगार पे हो तो उसका मांस लब में इसी तकनीक द्वारा आसानी से बनाया जा सकता है।

अंतरिक्ष अन्वेषण: पृथ्वी के पार, लैब-ग्रोन मीट अंतरिक्ष अन्वेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इसकी नियंत्रित उत्पादन विधियाँ और अंतरिक्ष पर्यावरण के लिए योग्यता इसे दीर्घकालिक मिशन्स के लिए सुरक्षित और पोषक तत्वों में सम्पन्न अहम खाद्य स्रोत बनाती है।

कार्बन पादपराग की कमी: पारंपरिक मीट उत्पादन ग्रीनहाउस गैस विकिरण के मुख्य योगदानकर्ता है। बड़े पैमाने पर पशुपालन की आवश्यकता कम करके, लैब-ग्रोन मीट को मांस सेवन के साथ जुड़े कार्बन पादपराग को कम करने की संभावना है।

खाद्य समान्यता में सुधार: लैब-ग्रोन मीट शहरी स्थानों में उत्पादित की जा सकती है, जिससे शहरी जनसंख्या को अधिक उपलब्ध करवाया जा सकता है। इससे खाद्य जंगलों की कमी और खाद्य समान्यता में सुधार हो सकती है।

सहयोग और अनुसंधान: लैब-ग्रोन मीट के विकास ने वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, और खाद्य निर्माताओं के बीच वृद्धि कर दी है। इस अन्तर्विज्ञानीय दृष्टिकोण का परिणाम सिर्फ खाद्य उत्पादन ही नहीं, बल्कि खाद्य उत्पादन के अलावा भी विभिन्न क्षेत्रों को फायदा पहुँचाना हो सकता है। जहां अब युवा पारंपरिक पशु पालन और खेती से दूर होना चाहते हैं, यह तकनीक उन्हे रोजगार के नए अवसर उपलब्ध करा सकती है और यहाँ जैव प्रोद्योगिकी वैज्ञानिक और इंजीनीयरों के लिए बड़ी संख्या में रोजगार मिल सकते हैं। संक्षेप में, लैब-ग्रोन मीट पारंपरिक मीट उत्पादन से जुड़े कई चुनौतियों को हल करने के लिए कई प्रतिद्वंदी समाधान प्रदान करती है। जबकि यह अभी अपने प्रार्भिक चरण में है, जारी अनुसंधान और विकास खाद्य स्वाद, लागत, और पैमाने में और भी सुधार करने की बड़ी आशा है। जैसे-जैसे इन चुनौतियों का समाधान होता है, लैब-ग्रोन मीट को विश्व के खाद्य परिदृश्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनाने के लिए तैयार किया जाता है, जो एक और अधिक सामर्थ्यशाली, नैतिक, और भिन्न भिन्न खाद्य के भविष्य की ओर यात्रा कर रहा है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

धान की फसल में लगने वाले प्रमुख रोग और कीट प्रबंधन

डॉ. सोनू शर्मा सहायक प्रोफेसर, पादप रोगविज्ञान विभाग, आईटीएम, विश्वविद्यालय, ग्वालियर-474001 (म.प्र.)

प्रमुख रोग

1. खैरा रोग:

लक्षण- जस्ते की कमी वाले खेत में पौध रोपण के 2 हते के बाद ही पुरानी पत्तियों के आधार भाग में हल्के पीले रंग के धब्बे बनते है जो बाद में कत्थई रंग के हो जाते हैं, जिससे पौधा बौना रह जाता है तथा कल्ले कम निकलते है एवं जड़े भी कम बनती है तथा भूरी रंग की हो जाती है।

नियंत्रण: खैरा रोग के नियंत्रण हेतु 20-25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर बुवाई पूर्व उपयोग करें। खडी फसल में 1000 लीटर पानी में 5 किलोग्राम जिंक सल्फेट तथा 2.5 किलोग्राम बिना बुझा हुआ चुने के घोल का मिश्रण बनाकर उसमें 2 किलो ग्राम यूरिया मिलाकर छिड़काव करने से रोग का निदान तथा फसल की बढ़वार में वृद्धि होती है।

झुलसा रोग

लक्षण-पौधे से लेकर दाने बनते तक की अवस्था तक इस रोग का आक्रमण होता है। इस रोग का प्रभाव मुख्य पत्तियों, तने की गाठें, बाली पर आँख के आकार के धब्बे बनते है बीच में राख के रंग के तथा किनारों पर गहरे भूरेया लालीमा लिये होते है। कई धब्बे मिलकर कत्थई सफेद रंग के बडे धब्बे बना लेते हैं, जिससे पौधा झुलस जाता है। गाठो पर या बालियों के आधार पर प्रकोप होने पर पौधा हल्की हवा से ही गाठों पर से तथा बाली के आधर से टूट जाता है।

नियंत्रण

- स्वच्छ खेती करना आवश्यक है खेत में पडे पूराने पौध अवशेष को भी नष्ट करना चाहिये।
- रोग रोधी किस्में का चयन करें-जैसे आदित्य, तुलसी, जया, बाला, पंकज, साबरमती, गरिमा, प्रगति इत्यादि।
- बीजोपचार करें-बीजोपचार ट्रायसायक्लाजोल या कोर्बेन्डाजीम अथवा बोनोमील - 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की मात्रा से घोल बना कर 6 से 12 घटे तक बीज को डुबोये, तत्पश्चात छाया में बीज को सुखा कर बोनी करें।
- खडी फसल के रोग के लक्षण दिखाई देने पर ट्रायसायक्लाजोल 75 WP 500 ग्राम हेक्टेयर या कार्बेन्डाजिम 500 ग्राम/ हेक्टेयर के हिसाब से छिड़काव करना चाहिये।

भूरा धब्बा या पर्णचित्ती रोग

लक्षण- मूख्य रूप से यह रोग पत्तियों, पर्णछन्द तथा दानों पर आक्रमण करता है पत्तियों पर गोल अंडाकर,आयताकार छोटे भूरे धब्बे बनते है जिससे पत्तियांझुलस जाती है, तथा पूरा का पूरा पौधा सूखकर मर जाता है।दाने पर भूरे रंग के धब्बे बनते है तथा दाने हल्के रह जाते है। इस रोग का आक्रमण भी पौध अवस्था से दाने बनने कर अवस्था तके होता है।

नियंत्रण

- खेत में पडे पुराने पौध अवशेष को नष्ट करना चाहिये।
- बुवाई के पूर्व बीज को कार्बेन्डाजिम नामक फंफूदी नाशक दवा 2 ग्राम प्रति किलों बीज दर से उपचारित करना चाहिये।
- खडी फसल के रोग के लक्षण दिखाई देने पर ट्रायसायक्लाजोल 75 2P 500 ग्राम/ हेक्टेयर या कार्बेन्डाजिम 500 ग्राम हेक्टेयर के हिसाब से छिड़काव करना चाहिये तथा निरोधक जातियाँ जैसे- आईआर-36 की बुवाई करें।

4. जीवाणु पत्ती झुलसा रोग

लक्षण-इसका अक्रमण बाढ़ की अवस्था में होता है। इस रोग में पौधे की नई अवस्था में नसों के बीच पारदर्शिता लिये हये लंबी - लंबी धरिया पड़ जाती है। जो बाद में कत्थई रंग ले लेती है।

नियंत्रण

- बुवाई के पूर्व बीज को स्ट्रेप्टोसायक्लीन 0.5 ग्राम / किलों बीज की दर से बीजोपचार करें। ■ स्ट्रेप्टोमाइसिन सल्फेट टेट्रासाइक्लिन 300 ग्राम + कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 1.25 किलो ग्राम / हे. की दर से छिड़काव करे । पोटाश का उपयोग बी लाभप्रद होता है।

5. दाने का कंडवा/ फॉल्स स्मट (लाई फूटना)

लक्षण- बाली के 3-4 दाने में कोयले जैसा काला पाउडर भरा होता है, जो या तो दाने के फट जाने से बाहर दिखाई देता है या बंद रहने पर सामान्यतः दाने जैसा ही रहता है, परंतु ऐसे दाने देर से पकते है तथा हरे रहते हैं। सूर्य की धूप निकलने से पहले देखने पर संक्रमित दानो का काला चूर्ण स्पष्ट दिखाई देता है। इसका आक्रमण दाने बनने की अवस्था में होता है।

नियंत्रण

- लक्षण दिखते ही प्रभावीत बाली को निकाल दें।
- बुवाई के पूर्व बीज को कार्बन्डाजिम नामक फंफूदी नाशक दवा 2 ग्राम प्रति किलों बीज दर से उपचारित करना चाहिये।
- कल्ले और फूलों की पूर्व अवस्था में, हेक्साकोनाजोल1 मिली/लीटर या क्लोरोथालोनिल 2 ग्राम /लीटर का छिड़काव करे।
- फफूंद संक्रमण से बचाव के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 2.5 ग्राम /लीटर या प्रोपिकोनाजोल 1.0मिली/लीटर या क्लोरोथानोमिल 2 ग्राम / लीटर की दर से छिड़काव करें।

6. शीथ झुलसा (अंगमारी) रोग

इस रोग के कारक राइजोक्टोनिया सोलेनाई नामक फफूंदी है, पानी की सतह से ठीक ऊपर पौधे केआवरण पर फफूद अण्डाकार जैसा हरापन लिए हुए स्लेट/उजला धब्बा पैदा करती है। पत्तियों के आधार तथा पत्तियों पर बड़े- बड़े धारीदार हरे- भूरे या पुआल के रंग के रोगी स्थान बनते है। बाद मे ये तनो को चारो ओर सेघेर लेते है, और आवरण से बालियाँ बाहर नहीं निकल पाती है। बालियों के दाने भी बदरंग हो जाते है। रोग केलक्षण कल्लें बनने की अंतिम अवस्था में प्रकट होते है। लीफ शीथ पर जल सतह के ऊपर से धब्बे बनने शुरू होते है। पौधों में इस रोग की वजह से उपज मे 50 प्रतिशत तक का नुकसान हो सकता है।

रोग नियंत्रण

- प्रारम्भ मे खेत मे रोग से सर्वमित एक भी पौधा नजर आते ही काट कर निकाल दें ।
- अधिक नत्रजन एवं पोटाश का उपरिनिवेशन न करें।
- रोगरोधी किस्में जैसे- पंकज, सवन्नधान और मानसरोवर आदि को उगावें ।
- धान के बीज को सुडोमोनास लोरेसेन्स की1 ग्राम अथवा ट्राइकोडर्मा 4 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर सेउपचारित करके बुआई करें ।
- खड़ी फसल मे रोग के लक्षण दिखाई देते ही कार्बन्डाजिम 2 ग्राम या प्रोपीकोनालोल 1 मि.ली. प्रति लीटरपानी में घोल बनाकर 10-15 दिन के अन्तराल पर 2-3 छिड़काव करें।

प्रमुख कीट

1. तना छेदक कीट : छेदक कीट कल्ले निकलने की अवस्था में पौध पर आक्रमण करता है एवं केन्द्रीय भाग को हानि पहुंचाता है और परिणाम स्वरूप पौधा सूख जाता है।

2. भूरा भुदका कीट: ब्राउन प्लांट हापर कीट पौधों के कल्लों के बीच में जमीन की उपरी सतह पर पाये जाते हैं।

3. गंधी बग कीट: इसका आक्रमण फसल की दूधिया अवस्था एवं दाने के भराव के समय होता है। इनके रसचुसने के कारण दाना सूख जाता है। गंधी बग कीट पौधों के विभिन्न भागों से रस चुसकर हानि पहंचाता है।

4. हरा फूदका कीट: पौधों के पर्णसमूह पर हरे रंग का पात फुदक पाया जाता है। हरे फुदके के अर्भक (निरम्फ)एवं वयस्क हरे रंग के होते है, पत्तियों से रस चूसते है और पौधे में कुछ जीवव विष भी भीतर डालते है। प्रभावित पत्तियां सिरे से नीचे की ओर भूरी हो जाती है। सीधी क्षति के अतिरिक्त, हर पात फुदक टुंग्रों विषाणु रोग भी संचरित करता है। इसलिए हरे पात फुदक के लिए आर्थिक प्रभाव सीमा स्तर दुंग्रो महामारी वाले क्षेत्रों में 2-फुदका/हिल है।

5. धान का टिड्डा: ये टिड़े पत्तियों का भक्षण करते हैं जिससे उनके किनारे क्षतिग्रस्त हो जाते हैं या पत्तियों का बड़ा भाग कट कर अलग हो जाता है। ये टहनियों को भी कुतरते हैं और प्राय को बेहद नुकसान पहुंचाते हैं। धान के बीजकोषों में अंडों की मौजदगी, पीले और भरे निम्फ और कयस्का द्वारा धान की पत्तियां खाया जाना इस कीट के अन्य लक्षण हैं।

धान की फसल में समन्वित कीट नियंत्रण

- खेत एवं मेढ़ों से खरपतवारों एवं अधिक नसरियों को निकालना चाहिये।
- अनावश्यक नाइट्रोजन के अधिक प्रयोग से बचना चाहिए।
- तना छेदक कीट कार्बोयूरान 3 जी या कारटॉपहाइड्रोक्लोराइड 4 जी 25 किग्रा है. के हिसाब से छिड़काव करना चाहिये।
- धान का टिड्डु कीट नियंत्रण के लिए क्लोरपायरीफॉस 20 ईसी. 1250 मिली/ हेक्टेयर के हिसाब से छिड़काव करना चाहिये ।
- हरा फूदका, भूरा फूदका, गंधी बग, तथा गंगई कीट नियंत्रण के लिऐ निम्नलिखित रसायनों मिथाइलडेमेटोन 25 ईसी 1000 मिली / हेक्टेयर या क्लोरपायरीफॉस 20 ईसी. 1250 मिली/ हेक्टेयर या ऐसिफेट 75% एस.पी. 666 1000 ग्राम / हेक्टेयर या फिप्रोनिल 5 प्रतिशत एससी 1000-1500 मिली / हेक्तटेयर या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस एल 100-125 मिली हिक्टेयर या फश्वस्फामिडॉन 875 मिली/ हेक्टेयर की दरसे किसी एक कीटनाशी का छिड़काव करें।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

फसल उत्पादन में नैनो यूरिया का उपयोग

डॉ. शिरीष पाटीदार सहायक प्रोफेसर
तथा अधिष्ठाता (प्रभारी), कृषि विज्ञान विद्यालय,
रिनायसांस विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)

परिचय

किसान भाइयों, हम एक नई तकनीक के बारे में बात करेंगे जो आपकी फसलों की पैदावार बढ़ाने में मदद कर सकती है। इस तकनीक का नाम है नैनो यूरिया नैनो यूरिया एक प्रकार का उर्वरक है, जिसे नैनो प्रौद्योगिकी की मदद से बनाया गया है। इसके उपयोग से आपकी फसलों की उपज बढ़ सकती है और मिट्टी की उर्वरता भी बनी रह सकती है।

नैनो यूरिया क्या है?

नैनो यूरिया एक विशेष प्रकार का यूरिया है, जिसमें नैनो कण होते हैं। नैनो कण बहुत ही छोटे होते हैं, जिनका आकार नैनोमीटर में होता है। यह पारंपरिक यूरिया की तुलना में अधिक प्रभावी होता है क्योंकि इसके छोटे कण पौधों द्वारा तेजी से अवशोषित होते हैं।

फसल उत्पादन में नैनो यूरिया का उपयोग कैसे करें?

नैनो यूरिया का उपयोग फसलों में कई तरीकों से किया जा सकता है:

बीज उपचार: बीजों को नैनो यूरिया के घोल में भिगोकर बोया जा सकता है। इससे बीजों की अंकुरण क्षमता और शुरुआती विकास में सुधार होता है।

पत्तियों पर छिड़काव: नैनो यूरिया को पानी में मिलाकर पत्तियों पर छिड़काव किया जा सकता है। इससे पौधों को आवश्यक पोषक तत्व सीधे मिलते हैं।

मिट्टी में मिलाना: नैनो यूरिया को सीधा मिट्टी में मिलाकर भी उपयोग किया जा सकता है। इससे जड़ों को पोषण मिलता है और पौधों की वृद्धि में सुधार होता है।

उपज पर नैनो यूरिया का प्रभाव

नैनो यूरिया के उपयोग से फसलों की उपज में कई फायदे होते हैं:

पोषक तत्वों का अधिक उपयोग: नैनो यूरिया के छोटे कण पौधों द्वारा आसानी से अवशोषित होते हैं, जिससे पोषक तत्वों का अधिकतम उपयोग होता है।

पौधों की वृद्धि में सुधार: नैनो यूरिया के उपयोग से पौधों की जड़ें मजबूत होती हैं और पौधों की संपूर्ण वृद्धि में सुधार होता है।

पर्यावरणीय लाभ: पारंपरिक यूरिया की तुलना में नैनो यूरिया का उपयोग कम मात्रा में किया जाता है, जिससे मिट्टी और पानी में प्रदूषण कम होता है।

नैनो यूरिया के लाभ

पोषक तत्वों का अधिकतम अवशोषण-नैनो यूरिया के छोटे कण पौधों द्वारा तेजी से अवशोषित होते हैं। इसका मतलब है कि पौधों को आवश्यक पोषक तत्व जल्दी और प्रभावी ढंग से प्राप्त होते हैं, जिससे उनकी वृद्धि और विकास में सुधार होता है।

उच्च पैदावार

नैनो यूरिया के उपयोग से फसलों की पैदावार बढ़ती है। इसकी प्रभावशीलता के कारण, किसान कम मात्रा में यूरिया का उपयोग करके भी बेहतर उपज प्राप्त कर सकते हैं।

पर्यावरण अनुकूल

पारंपरिक यूरिया की तुलना में, नैनो यूरिया का उपयोग कम मात्रा में किया जाता है, जिससे मिट्टी और जल स्रोतों में प्रदूषण कम होता है। यह पर्यावरण के लिए अधिक सुरक्षित होता है और मृदा की गुणवत्ता बनाए रखने में मदद करता है।

लागत में कमी

नैनो यूरिया की उच्च प्रभावशीलता के कारण, इसकी कम मात्रा की आवश्यकता होती है। इससे किसानों की खाद पर खर्च कम होता है, जिससे उनकी कुल लागत में कमी आती है।

पौधों की संपूर्ण वृद्धि में सुधार

नैनो यूरिया का उपयोग पौधों की जड़ प्रणाली को मजबूत बनाता है, जिससे पौधों की संपूर्ण वृद्धि में सुधार होता है। यह पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ाता है, जिससे वे विभिन्न रोगों और कीटों से बच सकते हैं।

आसान उपयोग

नैनो यूरिया का उपयोग करना बहुत आसान होता है। इसे बीज उपचार, पत्तियों पर छिड़काव, या मिट्टी में मिलाकर उपयोग किया जा सकता है। इससे किसानों के लिए इसका उपयोग अधिक सुविधाजनक होता है।

मृदा की गुणवत्ता में सुधार

नैनो यूरिया का उपयोग मृदा की उर्वरता बनाए रखने में

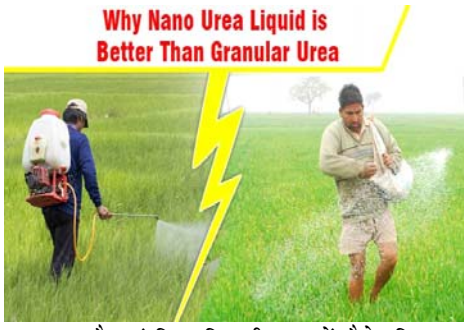

मदद करता है। पारंपरिक यूरिया की तुलना में, नैनो यूरिया मृदा के सूक्ष्मजीवों और जैविक गतिविधियों को नुकसान नहीं पहुंचाता, जिससे मृदा की गुणवत्ता में सुधार होता है।

पानी की बचत

नैनो यूरिया का उपयोग पानी की खपत को भी कम करता है, क्योंकि इसके छोटे कण पौधों द्वारा तेजी से अवशोषित हो जाते हैं और अधिक पानी की आवश्यकता नहीं होती।

फसल की गुणवत्ता में सुधार

नैनो यूरिया का उपयोग फसल की गुणवत्ता में भी सुधार करता है। इससे प्राप्त फसल अधिक पौष्टिक और बाजार में बेहतर कीमत पर बिक सकती है।

निष्कर्ष

किसान भाइयों, नैनो यूरिया आपके लिए एक नई और प्रभावी तकनीक है जो फसल उत्पादन में क्रांति ला सकती है। इसके उपयोग से आप न केवल अपनी फसलों की पैदावार बढ़ा सकते हैं, बल्कि पर्यावरण की भी रक्षा कर सकते हैं। इसलिए, नैनो यूरिया को अपनाकर अपनी कृषि में सुधार करें और बेहतर फसल प्राप्त करें।

01/2023-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

जन्म से लेकर दूध छुड़ाने तक पिगलेट की देखभाल और प्रबंधन

डॉ. सुष्मिता तिवारी (पीएचडी स्कॉलर)
डॉ. अंजनी कु. मिश्रा, डॉ. नम्रता
डॉ. सुम्मत कु. पशु चिकित्सा विज्ञान एवं
पशुपालक महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

जन्म के कुछ ही मिनटों के भीतर पिगलेट अपने वातावरण का पता लगाना शुरू कर देते हैं और जल्द ही निपल तक अपना रास्ता खोज लेते हैं और दूध पीना शुरू कर देते हैं। उनकी जिज्ञासा के कारण, यह आवश्यक है कि बीमारी और परजीवियों के संपर्क में आने की संभावना को कम करने के लिए बाड़े का वातावरण स्वच्छ होना चाहिए। आम तौर पर व्यक्तिगत पिगलेट जीवन के पहले कुछ दिनों के दौरान एक विशेष थन के साथ अपनी पहचान बनाते हैं और ईर्ष्यापूर्वक उस तक अपनी पहुंच की रक्षा करते हैं। टीट ऑर्डर 10 दिनों के भीतर सेट कर दिया जाएगा। लेकिन छोटे कूड़े में सुअर के बच्चे का एक से अधिक निपल पर दावा करना आम बात है। दूसरी ओर बड़े कूड़े में, सबसे कमज़ोर सुअर भूखा रह सकता है क्योंकि वह एक निपल के लिए प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता है। सामान्य नर्सिंग व्यवहार पैटर्न 24 घंटे की अवधि में प्रत्येक भोजन के बीच एक समान समय अंतराल के लिए होता है। औसत दूध पिलाने का अंतराल 1 घंटे से कम है, इसलिए दूध पीने वाले पिगलेट को प्रतिदिन 24 से अधिक बार भोजन मिलता है, प्रत्येक भोजन में केवल कुछ मिनट होते हैं और स्तनपान बढ़ने पर यह कम हो जाता है।

1. सभी सुअरों को साफ करें और उनके शरीर को सुखा लें। 2. सुअर के बच्चे को दिन में 8-10 बार मादा सुअर का दूध पीने दें। 3. 'नेवल इल' को रोकने के लिए नेवल कार्ड को खून की हानि से बचाने के लिए बांध दिया जाना चाहिए और इसे लेगेशन से 3-5 सेमी दूर काटा जाना चाहिए और इस हिस्से को 2% आयोडीन या 70% एथिल के घोल में डुबोया जाना चाहिए शराब। 4. 'सुई के दांत' काट दिए जाने चाहिए। सुअर के बच्चों के प्रत्येक जबड़े पर चार जोड़ी नुकीले दांत होते हैं जिन्हें सुई दांत या भेड़िया दांत कहा जाता है। सुअरों के लिए उनका कोई व्यावहारिक मूल्य नहीं है और वे दूध पिलाने के दौरान सुअर के थन में जलन पैदा कर सकते हैं और लड़ते या खेलते समय अन्य सुअर के बच्चों को चोट पहुँचा सकते हैं। इसलिए सलाह दी जाती है कि जन्म के तुरंत बाद इन सुई वाले दांतों को काट दिया जाए [10 दिनों के भीतर]। साइड कटिंग प्लायर इस उद्देश्य के लिए उपयुक्त हैं। दाँत के आधार को ढीला होने या दांतेदार किनारों को छोड़ने या मसूड़ों को चोट लगने से बचाना महत्वपूर्ण है। 5. जन्म के तुरंत बाद सुअर के बच्चों के कान पर टैटू बनवाना चाहिए और 6 सप्ताह की उम्र में उसी जानवर के कान पर छेद करना चाहिए/कान पर छेद करना चाहिए। 6. प्रजनन के लिए आवश्यक नहीं होने वाले नर सुअरों को आम तौर पर बधिया कर दिया जाता है क्योंकि यह ऑपरेशन आम तौर पर प्रबंधन को आसान बनाता है और अंधाधुंध प्रजनन को रोकता है। यह ऑपरेशन जन्म के 3-4 सप्ताह बाद करना चाहिए। यह सुअर के बच्चों को दूध छुड़ाने की जांच से पहले बधियाकरण जांच [विकास मंदता] से उबरने की अनुमति देता है। 7. जब भी सुअरों को पूर्ण कारावास में पाला जाना हो तो पूंछ काटने की सलाह दी जाती है। यह साइड कटिंग प्लायर्स का उपयोग करके सुई के दांतों को काटते समय किया जा सकता है। 8. पहले दो सप्ताह के दौरान सुअर के बच्चों को कुचलने से रोकना चाहिए। 9. रेंगने वाले क्षेत्र को पिगलेट को कुचलने से बचाने के लिए प्रदान किया जाता है, सुअर के ऊपर से हमला किया जाता है और अलग रेंगने वाला राशन प्रदान किया जाता है।

10. क्रीप फीडिंग - ध्यान केंद्रित फीडिंग 2-3 सप्ताह से शुरू होती है, यह मां से अलग होती है।

11. सुअर के बच्चों को खाना खिलाना

(Days)	Feeding
0-7	Mother milk= 1- 2 liter milk, 8-10 times a day
7-21	Pre starter ration protein 24 %, Mother milk
21- 35	Ration protein 18 % , 0.5 Kg, Mother milk
35- 56	ration protein 16 %, 1 kg , Mother milk

12. सुअरों को अत्यधिक मौसम की स्थिति से बचाएं-13. 56 दिन / 2 महीने की उम्र में दूध छुड़ाना 14. अनाथ सुअर- 'अनाथ सुअर' का परिणाम तब होता है जब सुअर की मृत्यु हो जाती है, स्तनदाह, स्तनपान की विफलता या सुअर की क्षमता से अधिक बड़ा कूड़ा हो जाता है। 'अनाथ सुअरों' को पालने की दो संभावनाएँ हैं [1] पालने वाली सुअर द्वारा अनुकूलन [2] गाय के दूध से पालन-पोषण या सुअर के दूध की जगह लेने वाले सुअर के बच्चों को 'आंत बंद होने' से पहले कोलोस्ट्रम प्राप्त करना चाहिए, गाय का कोलोस्ट्रम स्पष्ट रूप से कुछ प्रतिरक्षा प्रदान करता है। यदि इसी अवधि के दौरान कुछ अन्य सुअरों को बोया जाता है तो उनके कोलोस्ट्रम का भी उपयोग किया जा सकता है।

पालक सुअर द्वारा अनुकूलन: यदि कोई अन्य सुअर अनाथ कूड़े के जन्म से पहले या बाद में थोड़े समय के भीतर ही मर गया हो, तो सुअर के बच्चों को उसके पास स्थानांतरित किया जा सकता है। यह स्थानांतरण प्रजनन के कुछ दिनों के भीतर किया जाना चाहिए क्योंकि जिन स्तन ग्रंथियों का उपयोग नहीं किया जाता है उनका दूध उत्पादन जल्द ही बंद हो जाता है। नए सुअरों की स्वीकृति सुनिश्चित करने के लिए, नए सुअरों को मिलाते समय सुअर को उसके अपने कूड़े से अलग कर देना चाहिए, और गंध को छिपाने के लिए सभी सुअरों पर कीटाणुनाशक या अन्य गंधयुक्त पदार्थ छिड़कना चाहिए।

गाय के दूध से या गाय के दूध के विकल्प से पालन-पोषण: गाय के दूध या गाय के दूध की जगह पर पाले गए सुअरों में दूध पीने की तीव्र प्रवृत्ति होती है और जब उन्हें एक साथ रखा जाता है तो वे अन्य सुअरों के कान और नाभि को चूस लेते हैं, जिससे अशांति पैदा होती है जिससे उनकी ताकत खत्म हो जाती है। पहले दो सप्ताह तक उन्हें अलग-अलग आवास देकर इससे बचा जा सकता है।

• सामान्य नर्सिंग पैटर्न को प्रोत्साहित करने के लिए जितना संभव हो उतनी बार दूध पिलाना चाहिए कुछ मिनटों के लिए हर घंटे में एक बार दूध पिलाना • यदि संभव हो तो पहला भोजन पहले 12 घंटों के दौरान दिया जाना चाहिए • सुअर के बच्चों को उथले कटोरे से पानी पीने के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। यह उनके थूथन को दूध में धकेल कर किया जा सकता है। एक या दो बार दूध पिलाने के बाद वे तुरंत कटोरे से दूध पीना सीख जाते हैं। आसानी से उपलब्ध बोई दूध का विकल्प एक अंडा है जिसे 1 लीटर गाय के दूध में 1/8 चम्मच फेरस सल्फेट के साथ अच्छी तरह मिलाया जाता है।

पिगलेट मृत्यु दर: सुअर पालन में प्रमुख कार्य सुअरों की मृत्यु दर को रोकना और दूध छुड़ाने तक सुअरों का सफलतापूर्वक पालन-पोषण करना है। दूध छुड़ाने के बाद मृत जन्म की तुलना में मृत्यु दर कम होती है

मृत जन्म के कारण हो सकता है - 1. प्रसव शुरू होने से पहले मृत्यु (प्रसव पूर्व मृत्यु) 2. प्रसव के दौरान मृत्यु (अंतर-प्रसव मृत्यु)

प्रसव पूर्व मृत्यु आयरन की कमी के कारण हो सकती है, जिसे आयरन के इंजेक्शन से रोका जा सकता है। अंतर्गर्भाशयी मृत्यु गर्भाशय संकुचन या नाभि कार्ड के समय से पहले टूटने से जुड़े अपरा रक्त प्रवाह की कमी से प्रेरित एनोक्सिया के कारण होती है। यह अंतर्गर्भाशयी मृत्यु अधिकतर वृद्ध सुअरों में होती है। दूध छुड़ाने से पहले मृत्यु दर- दूध छुड़ाने से पहले की मृत्यु दर 12-30% के बीच होती है। 11वें की न्यूनतम मृत्यु दर 100 सुअरों के झुंड में एक वर्ष में लगभग 250 पिगलेट के नुकसान के बराबर है। जीवित सुअरों की 50वें से अधिक हानि जीवन के पहले 2-3 दिनों में होती है।

पिगलेट एनीमिया: यह दूध पिलाने वाले सुअरों की अत्यधिक घातक बीमारी है जो हीमोग्लोबिन में उल्लेखनीय कमी और यकृत के वसायुक्त अधःपतन के कारण होती है। नवजात पिगलेट के लीवर में हीमोग्लोबिन संश्लेषण के लिए आयरन का केवल सीमित भंडार होता है। यह भ्रूण में आयरन के अपर्याप्त प्लेसेंटल स्थानांतरण के कारण होता है। नवजात पिगलेट्स में केवल 50 मिलीग्राम आयरन होता है जो मुख्य रूप से यकृत में संग्रहीत होता है और उनकी दैनिक आवश्यकता लगभग 5 से 10 मिलीग्राम होती है। सुअर के दूध में आयरन की मात्रा बहुत कम होती है और सुअर के बच्चे को एनीमिया से बचाने के लिए पहले कुछ दिनों के दौरान दूध पिलाने वाले सुअर को आयरन की खुराक देनी चाहिए। ताजी साफ मिट्टी लोहे के स्रोतों में से एक है, लेकिन कंक्रीट के फर्श के नीचे घर के अंदर पालन-पोषण पिगलेट को ताजी मिट्टी तक पहुंचने से रोकता है।

कारण - सुअर के दूध में लौह और तांबे के लवण की कमी, सांद्र तल पर और सुअर के दूध का सीमित आहार

पिगलेट एनीमिया के लक्षण- • कान और पेट के क्षेत्र में पीलापन • असावधानता • तेजी से सांस लेना • अक्सर दस्त प्रदर्शित होते हैं

पिगलेट एनीमिया को नियंत्रित किया जा सकता है - • सुअरों के बाड़े में प्रतिदिन ताजी, साफ मिट्टी डालें • 500 ग्राम फेरस सल्फेट, 75 ग्राम कॉपर सल्फेट और 3 लीटर पानी से बने घोल से भीगी हुई मिट्टी का उपयोग करना • 1.8% फेरस सल्फेट घोल के 4 मिलीलीटर का दैनिक प्रशासन • मां के थन की रोजाना फेरस सल्फेट घोल और चीनी से पेंटिंग [10 लीटर पानी में 0.5 किलोग्राम फेरस सल्फेट] 5. ये सभी विधियां श्रम गहन हैं और पिगलेट एनीमिया से निपटने का सबसे सुरक्षित और आसान तरीका जन्म के 3 दिन बाद पिगलेट को आयरन डेक्सट्रॉन के रूप में 100-150 मिलीग्राम आयरन का इंजेक्शन लगाना है। यदि आवश्यक हो तो लगभग 3 सप्ताह बाद दूसरा और थोड़ा छोटा इंजेक्शन लगाया जा सकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

दुधारू पशुओं में थनैला रोग

डॉ. रूपेश वैज्ञानिक पशुपालन,
आर.व्ही.एस.के.व्ही.व्ही, कृषि विज्ञान केन्द्र ,
दतिया (म.प्र.)

दुधारू पशुओं के थन एवं अयन में संक्रमण (जीवाणु, विषाणु, फफूँद एवं यीस्ट आदि) के कारण होने वाली बीमारी को थनैला या मैस्टाईटिस के नाम से जाना जाता है। अधिकांशतः बैक्टीरिया (स्ट्रेपटोकोकस एवं स्टेफायलोकोकस) ही इस रोग को फैलाते हैं। थनों में तथा अयन में लगने वाली चोट या मौसमी प्रतिकूलताओं जैसे अत्यधिक गर्म एवं उमस वाला मौसम इस रोग को बढ़ावा देता है। प्रायः संकर नस्ल की गायों एवं अधिक दूध देने वाली गाय या भैसों में इस रोग के होने की अत्यधिक सम्भावना होती है। थनैला रोग से ग्रसित पशु का दूध संक्रमित होने के कारण पीने योग्य नहीं होता। यह संक्रमण एक थन से दूसरे थन में लग सकता है और अगर सही समय से थनैला का उपचार/इलाज ठीक से ना किया, तो संक्रमित थन हमेशा के लिए बंद भी हो सकता है तथा संपूर्ण अयन हमेशा के लिये खराब हो सकता है फिर वह पशु किसी काम का नहीं रहता और उसे बेचने के अलावा कोई चारा नहीं रहता इससे पशुपालक और किसानों को भारी आर्थिक नुकसान होता है। अतः इस रोग के लक्षणों की पहचान, इसके इलाज और इससे बचाव की उचित जानकारी, पशुपालकों को इस रोग द्वारा होने वाली संभावित क्षति से बचा सकती है।

थनैला रोग कैसे होता है?: बच्चा देने के बाद पूरे दुग्ध काल में गाय एवं भैंस के अयन में चौबीस घंटे दूध बनता रहता है। दूध थनों से एक सूक्ष्म नलिका से होते हुए छिद्र द्वारा बाहर आता है। पशु आवास के फर्श में अक्सर बहुत गन्दगी, कीचड़ आदि हो जाता है जिसमें करोडों सूक्ष्म जीव रहते हैं। पशुओं के अयन और थनों में कीचड़, गोबर, मिट्टी आदि आसानी से चिपक जाते हैं। दूध दोहने के बाद दुधारू पशु के थन के छिद्र कुछ समय तक खुले रहते हैं और गंदगी के संपर्क में आने पर लाखों-करोडों सूक्ष्म जीवाणु इस छिद्र से थन के अंदर स्थित नलिका के रास्ते अयन में प्रवेश कर जाते हैं। थन के अन्दर जाकर रोगाणुओं की संख्या में तीव्रता से वृद्धि होती हैं क्योंकि दूध उनके पनपने के लिए उपयुक्त माध्यम होता है, यहीं रोगाणु थनैला रोग के लक्षण प्रकट करते हैं। अतः दूध दोहन के बाद दुधारू पशु को कुछ देर नीचे नहीं बैठने देना है तथा भूमि एक दम साफ-सुथरी रखना चाहिये। इसके अलावा एक बार दूध दोहन के पहले और एक बार दूध दोहन के बाद दुधारू पशु के थन तथा अयन को साफ पानी में थोडी कीटाणुनाशक दवा डालकर उस घोल से अच्छी तरह से धोकर साफ करना चाहिये। इसके अलावा दूध दोहन के बाद दुधारू पशु के थन कीटाणुनाशक दवा जैसे आयोडोफोर के घोल में डुबोकर पोछना चाहिये। इससे रोग के संक्रमण का खतरा एकदम कम हो जायेगा। पशु के थन में दूध शेष रहे तो दुधारू पशु को थनैला रोग का संक्रमण हो सकता है।

थनैला रोग (मैस्टाटिस) के प्रकार

थनैला रोग (मैस्टाटिस) निम्न प्रकार का हो सकता है-

1. **लाक्षणिक (क्लीनिकल) थनैला रोगः** यह थनैला रोग की गंभीर अवस्था होती है। इसमें एक या अधिक थनों में सूजन आ जाती है एवं फटा हुआ दूध निकलता है। धीरे-धीरे थन लकड़ी की तरह कड़ा हो जाता है। थनों को छूने पर पशु को तेज दर्द होता है। पशु के शरीर का तापमान असामान्य हो जाता है। कभी-कभी थनों से खून या मवाद भी आने लगता है।

2. **अलाक्षणिक या उप-लाक्षणिक (सब-क्लीनिकल) थनैला रोग** यह थनैला रोग की प्रारंभिक अवस्था होती है। इसके नाम के अनुसार इसमें थनों पर कोई लक्षण दिखाई नहीं देते हैं। परन्तु दूध की संरचना में कुछ परिवर्तन (जैसे दैहीय कोशिकाओं की संख्या का बढ़ना) एवं दूध की क्षारीयता या पी.एचमान का बढ़ना जैसे बदलाव होते हैं। जिनका कुछ आसान परीक्षणों द्वारा पता लगाया जा सकता है। इसका उपचार समय पर नहीं होने पर यह कुछ समय में गंभीर रूप ले लेता है।

थनैला रोग का निर्धारण निम्न परीक्षणों द्वारा किया जा सकता है

1. कैलिफोर्निया मैसटाईटिस जांच द्वारा
2. पी.एच. पेपर द्वारा दूध की क्षारीयता की समय-समय पर जांच
3. स्ट्रिप कप जांच द्वारा
4. दैहिक कोशिकाओं की संख्या निर्धारण द्वारा

ग्रामीण स्तर पर किसान भाई निम्नलिखित लक्षणों के आधार पर थनैला रोग का निर्धारण कर सकते हैं:

- अयन एवं थनों में सूजन एवं कड़ापन आ जाना
- अयन एवं थनों में दर्द होने के कारण छूने ना देना एवं लात मारना
- दूध उत्पादन का अचानक कम हो जाना
- दूध पतला हो जाना, रंग पीला या गहरा हो जाना एवं दूध में चीथड़े या छीछडे आना
- गंभीर रोग होने पर दूध में खून या मवाद भी आने लगता है
- गर्म करने पर अचानक दूध का फटना
- एक गिलास पर काले रंग का कपड़ा बांधकर उस पर हर थन से दूध निकालकर देखें। अगर कपड़े पर दूध में चीथड़े या छीछड़े नजर आये तो समझ लीजिये कि अयन और थनों में संक्रमण है।

थनैला रोग का उपचार

सबसे पहले रोग से संक्रमित मादा के सारे थनों से धीरे-धीरे पूरा दूध निकाल दे। उसके बाद अपने हाथ अच्छी तरह धोकर पोंछ लीजिये। फिर प्रति जैविक (एंटीबायोटिक) मरहम को प्रभावित थन में धीरे-धीरे भर दें। फिर थन को ऊपर कि ओर धीरे-धीरे मालिश करें ताकि मरहम थन से अयन में पहुंचकर वहाँ का संक्रमण मिटाये। दिन में दो बार इस प्रकार थनों में प्रति जैविक दवा का मरहम लगायें। दूसरे दिन सबेरे एक गिलास पर काले रंग का कपड़ा बांधकर उस पर हर थन से दूध निकालकर देखें, अगर कपड़े पर दूध में चीथड़े या छीछड़े नजर आये तो समझ लीजिये कि अयन और थनों में संक्रमण है और जब तक कपड़े पर नजर आये तब तक यह प्रति जैविक मरहम थनों में डालते रहे। थनैला के उपचार के लिए बाजार में प्रति जैविक दवा के ट्यूब उपलब्ध हैं, जिन्हें सीधे थनों में लगाया जा सकता हैं। जैसे की Pendistrine-SH, Mammitel, Mastiwok इत्यादि, पशुचिकित्सक की सलाह से ही दवा का चयन करना चाहिए। रोग की गंभीरता को देखते हुए इसके अतिरिक्त दर्द निवारक दवा और प्रति जैविक दवा का इंजेक्शन मांसपेशियों में भी दिया जा सकता है। रोग की अवस्था के अनुसार उपचार 3 से 5 दिन तक किया जाता है। संक्रमित पशु का दूध उपयोग में नहीं लेना चाहिए। यह भी ध्यान रखें की संक्रमित पशु का दूध स्वस्थ्य पशुओं का दूध निकालने के बाद सबसे आखिर में निकालना चाहिए।

थनैला से बचाव के उपाय

1. दूध निकालने से पहले हाथों और थनों को साफ पानी में पोटेशियम परमैगनेट के कुछ दाने डालकर अच्छे से धोये एवं साफ कपड़े से पोंछ लें।
2. दुग्धशाला की साफ. सफाई अच्छे से करें ।
3. फुल हैण्ड विधि या चुटकी (स्ट्रिपिंग) विधि से ही दूध निकालें क्योंकि अंगूठा मोड़कर दूध निकालने से थनों में चोट आती है और थनैला होने की सम्भावना बढ़ जाती है।
4. शुरूआत में दूध की कछु मात्रा को अलग से निकाल कर दूध की गुणवत्ता की जाचं करें।
5. पूरी तरह दूध निकालें ताकि पशु के थन में दूध शेष ना रहे।
6. दूध निकालने के लगभग 10-15 मिनट तक पशु को बैठने ना दें।
7. संक्रमित पशु के दूध को सामान्य दूध में नहीं मिलाना चाहिए अन्यथा पूरा दूध फट सकता है। जाता है। संक्रमित पशु का दूध उपयोग में नहीं लेना चाहिए। यह भी ध्यान रखें की संक्रमित पशु का दूध स्वस्थ्य पशुओं का दूध निकालने के बाद सबसे आखिर में निकालना चाहिए।

शीतला कृषि सेवा केन्द्र
बंटी सिंह गुर्जर (बामौर वाले)
99267-31867, 83055-69923
खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेरिज विक्रेता

हमारे यहां धान, गेहूँ, सोयाबीन, सरसों, तिली एवं सब्जियों के बीज, खाद एवं उच्चकोटि की कीटनाशक दवाईयां उचित मूल्य पर मिलती है।
पता: पशु अस्पताल के सामने, भितरवार रोड, डबरा ग्वालियर (म.प्र.)
01/203-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

सोयाबीन की फसल में तना मक्खी के प्रकोप से कैसे बचें

डॉ. द्वारका पीएच.डी., कीटशास्त्र विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

निशा चढ़ार एम.एससी.(बॉटनी), महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, शासकीय स्नातकोत्तर उत्कृष्ट महाविद्यालय, टीकमगढ़

सोयाबीन की फसल में तना मक्खी एक प्रमुख कीट समस्या है, जो फसल को गंभीर नुकसान पहुंचा सकती है। तना मक्खी *(ओफियोमाईया फेसियोलाई)* सोयाबीन के पौधों के तनों पर आक्रमण करती है, जिससे पौधों की वृद्धि रुक जाती है और अंततः फसल की पैदावार में भारी कमी हो सकती है।

जीवन चक्र

स्टेम फ्लाई उभरने के 2-6 दिन बाद संभोग करती हैं। मादा अपने लम्बे अंडनिधानकर्ता की मदद से पौषक पत्ती के ऊतकों पर समूहों में औसतन 100-200 लम्बे, अंडाकार और सफेद अंडे देती है। अंडों का ऊष्मायन काल 2-4 दिन का होता है, अंडे सेने के बाद युवा कैटरपिलर पत्तियों के हरे ऊतकों पर भोजन करते हैं, बाद में वे पत्तियों को एक साथ जोड़ते हैं और तहों के भीतर भोजन करते हैं और तने में चले जाते हैं और मिट्टी के स्तर तक, मूल जड़ में चले जाते हैं। फ्लाई तीन इंस्टार से गुजरते हैं और लार्वा विकास अवधि 12-15 दिनों में पूरी होती है। लार्वा अपनी गैलरी के भीतर प्यूपा बनता है और प्यूपा अवधि 5-7 दिनों तक रहती है वयस्क मक्खियाँ 8-22 दिनों तक जीवित रहती हैं जबकि वयस्क नर 11 दिनों तक जीवित रहता है। कीट जुलाई से अप्रैल तक 8-9 पीढ़ियों को पूरा करता है और विभिन्न मौसमों में एक पौषक पौधे से दूसरे में स्थानांतरित होता है।

प्रकोप के लक्षण

स्टेम-फ्लाई क्षति सोयाबीन को प्रभावित कर सकती है, क्योंकि यह अनाज को भरने से रोकती है। बीज सामान्य से छोटे हो सकते हैं और अनाज असमान हो सकता है। संक्रमित तने अक्सर अंदर से लाल होते हैं (कभी-कभी पीले) जिसमें लार्वा या प्यूपा युक्त एक अलग जिग-जैग सुरंग होती है। सोयाबीन के पौधे शुरू में स्वस्थ दिखाई देंगे, लेकिन प्रति पौधे तीन या उससे अधिक लार्वा के संक्रमण से मुरझा सकते हैं। छोटे पौधे मर सकते हैं, खासकर अगर पौधे का बेसल स्टेम सेक्शन (बीजपत्र के नीचे) क्षतिग्रस्त हो। जल्दी लगाए गए फसलों में क्षति के लक्षण चार से सात दिनों में दिखाई देते है। अंतर्राष्ट्रीय अध्ययनों से पता चलता है कि जब फसलें शुरुआती वनस्पति अवस्था में संक्रमित होती हैं, तो उपज में 20 प्रतिशत से 30 प्रतिशत की कमी आती है, क्योंकि नुकसान के कारण फली और बीज कम बनते हैं। यदि पत्तियाँ फली भरने के दौरान मुरझा जाती हैं या मर जाती हैं।

प्रबंधन के उपाय

बीजोपचार

सोयाबीन के बीजों को कीटनाशक (इमिडाक्लोप्रिड 5 ग्राम प्रति किग्रा. बीज) से उपचारित करना चाहिए। यह प्रारंभिक संक्रमण को रोकने में सहायक हो सकता है।

खेत की निगरानी

खेत की नियमित रूप से निगरानी करना आवश्यक है ताकि प्रारंभिक प्रकोप को पहचाना जा सके और समय पर उपचार किया जा सके।

प्राकृतिक शत्रु

तना मक्खी के प्राकृतिक शत्रु जैसे परजीवी ततैया का संरक्षण और प्रोत्साहन करना चाहिए।

कीटनाशक छिड़काव

यदि संक्रमण गंभीर हो तो, फसल पर अनुमोदित कीटनाशकों का छिड़काव किया जा सकता है लेकिन इसे फसल के प्रारंभिक अवस्था में ही करना बेहतर होता है। तना मक्खी के नियंत्रण हेतु किसानों को सलाह दी जाती है कि थायमेथॉक्साम 12.60% लैम्ब्डा-सायहैलोथ्रिन 09.50% जेडसी (125 मिली/ हे.) का पूर्व-मिश्रित फार्मूला का छिड़काव करें।

स्टेम-फ्लाई के क्षति के लक्षण

फसल चक्र

फसल चक्र अपनाकर तना मक्खी के प्रकोप को कम किया जा सकता है। सोयाबीन के स्थान पर वैकल्पिक फसलें उगाने से कीट की संख्या में कमी आती है।

वानस्पतिक कीटनाशक

नस्के 5 प्रतिशत का स्प्रे करें। नीम तेल 1 मिली. प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।

निष्कर्ष

तना मक्खी का प्रकोप सोयाबीन की फसल के लिए एक गंभीर चुनौती हो सकती है, लेकिन उचित प्रबंधन और रोकथाम के उपाय अपनाकर इसे नियंत्रित किया जा सकता है। किसानों को चाहिए कि वे तना मक्खी के जीवन चक्र और प्रकोप के लक्षणों को समझकर समय पर सही कदम उठाएं ताकि उनकी फसल सुरक्षित और उपजाऊ रहे।

शिवहरे किसान सेवा केन्द्र डबरा
खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाईयों के खेरिज विक्रेता
हमारे यहां सभी प्रकार के खाद बीज एवं कीटनाशक दवाईयां उचित रेट पर मिलती है

प्रो. ओमप्रकाश शिवहरे
82248-44542
78282-60543
पंजाब नेशनल बैंक के सामने, भितरवार रोड, डबरा
10/2022-23

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

एथनोवेटरिनरी मेडिसिनः आधुनिक पशु स्वास्थ्य में पारंपरिक औषधीय प्रथाओं का एकीकरण

आदित्य प्रताप, अमिता तिवारी
वर्षा मिश्रा, प्रिया पचौरी और चारु शर्मा
पीएचडी शोधार्थी, पशु औषधि विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय
नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

पशुपालन सदियों से ग्रामीण समुदायों की एक नींव रहा है, जहां किसान खराब फसलों के दौरान जीवित रहने के लिए अपने मवेशियों पर निर्भर रहते थे। इसके परिणामस्वरूप, प्राचीन मानवों ने अपने पशुओं के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए स्थानीय रूप से उपलब्ध जड़ी-बूटियों का उपयोग करके विधियाँ विकसित कीं। ये पारंपरिक प्रथाएँ या तो दर्ज की गई या पीढ़ियों के माध्यम से मौखिक रूप से संचारित की गई। इन पारंपरिक औषधीय प्रथाओं का अध्ययन "एथनोवेटरिनरी मेडिसिन" (EVM) के रूप में जाना जाता है।

EVM क्या है? एथनोवेटरिनरी मेडिसिन (EVM) उन पारंपरिक प्रथाओं और ज्ञान का अध्ययन है जो स्थानीय संसाधनों और स्थानीय ज्ञान के आधार पर पशुओं की चिकित्सा और देखभाल के लिए उपयोग की जाती हैं। एथनोवेटरिनरी मेडिसिन (EVM) को स्थानीय ज्ञान और उसके संबंधित कौशल, प्रथाएँ, विश्वास, प्रैक्टिशनर और सामाजिक संरचनाएँ जो खाद्य, कामकाजी और अन्य आय-उत्पादक जानवरों के स्वास्थ्य देखभाल और स्वस्थ पालन-पोषण से संबंधित हैं, हमेशा पशुपालन और आजीविका प्रणालियों में व्यावहारिक विकास अनुप्रयोगों की दृष्टि से परिभाषित किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य स्टॉक-रेजिंग से प्राप्त लाभों को बढ़ाकर मानव कल्याण को बढ़ाना है।

ऐतिहासिक संदर्भ: मनुष्यों और औषधीय पौधों के बीच संबंध पशुओं के घरेलूकरण के समय से ही है। आधुनिक चिकित्सा के आगमन से पहले, मवेशी रखने वाले EVM प्रथाओं पर निर्भर थे। ऐतिहासिक ग्रंथ जैसे अश्ववेद सिद्धांत (घोड़ों के लिए आयुर्वेद), अश्ववैदिका (घोड़ों के लिए चिकित्सा) और हस्तायुर्वेद (हाथियों के लिए आयुर्वेद) इन प्रारंभिक प्रथाओं के प्रमाण प्रदान करते हैं। दुनिया भर की आदिवासी समुदायों, जिसमें मध्य भारत की जनजातियाँ और पहाड़ी क्षेत्रों में चरवाहे समूह शामिल हैं, ने इस ज्ञान को पीढ़ियों से संजोया है।

EVM का महत्व-कम विकसित पशु चिकित्सा ढांचे या खराब संचार वाले क्षेत्रों में पारंपरिक औषधियाँ अक्सर उपचार का मुख्य साधन होती हैं। EVM प्रथाएँ पुरानी औषधियाँ, शल्य और हेरफेर की तकनीकें, पालन-पोषण की रणनीतियाँ और संबंधित जादू-धार्मिक प्रथाओं को शामिल करती हैं। ये आमतौर पर सस्ती होती हैं, चूंकि ये लंबे समय से प्रयोग की जाती हैं और स्थानीय संसाधनों पर आधारित होती हैं।

आदिवासी समुदाय आमतौर पर वन पारिस्थितिकी तंत्र के आस-पास आधारित होते हैं। वे आमतौर पर भूमिहीन होते हैं और आर्थिक रूप से सबसे निचले स्तर पर होते हैं। परिणामस्वरूप, वे अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जंगल पर निर्भर होते हैं। हालांकि, यह पर्याप्त नहीं है, इसलिए वे दूध, कृषि और वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए घरेलू जानवरों को पालते हैं। चूंकि आधुनिक दवाएँ महंगी होती हैं, अक्सर अप्राप्य होती हैं और इसमें गणना की गई साइड-इफेक्ट्स होते हैं, स्थानीय लोग सामान्य पशु रोगों के उपचार और रोकथाम के लिए पारंपरिक प्रथाओं का उपयोग कर रहे हैं। जब तक आधुनिक दवाओं की कमियों को हल नहीं किया जाता, तब तक ये पारंपरिक दवाएँ ही एकमात्र विकल्प हैं जिन पर स्थानीय लोग निर्भर कर सकते हैं।

EVM के फायदे और नुकसान

फायदे:

■ लागत-कुशल ■ आसानी से उपलब्ध ■ तैयार करने में सरल ■ टीकाकरण की प्रभावशीलता को बढ़ाता है ■ न्यूनतम साइड इफेक्ट्स ■ कोई दवा प्रतिरोध नहीं

नुकसान:

■ स्थानीयकृत प्रथाओं का सीमित प्रसार ■ प्रभावशीलता और परिणामों में भिन्नता ■ तीव्र विषाणु रोगों के खिलाफ प्रभावहीनता ■ कुछ उपचारों की प्रभावहीनता ■ कोई नियमन नहीं ■ तकनीकी कर्मियों की हिचकिचाहट अपर्याप्त अनुसंधान के कारण

सामान्य EVM उपचार-पौधे EVM की तैयारी के लिए सबसे अधिक उपयोग किए जाने वाले तत्व होते हैं। पौधों के सभी भागों का उपयोग उनके वांछनीय गुणों के अनुसार किया जाता है। साहित्य में, कई पौधों को इम्यूनोमोडुलेटर्स के रूप में सूचीबद्ध किया गया है जो आधुनिक तकनीकों से प्रमाणित हैं।

नीचे कुछ सामान्य रोगों और उनके एथनोवेटरिनरी उपचारों की सूची दी गई है:

मास्टिटिस: हल्दी, एलो वेरा और नींबू का शीर्षक पेस्ट; तीन दिनों के लिए नींबू का सेवन।

दूध में रक्त: हल्दी, एलो वेरा, नींबू, करी पत्ते और गुड़ का मौखिक पेस्ट।

टाइम्पनी: फ्लैक्सीड ऑयल, अदरक, हल्दी से ड्रेंचिंग; मुँह को एक लकड़ी के टुकड़े से खुला रखा जाता है; मिर्च, जीरा, प्याज, लहसुन, मिर्च, हल्दी, गुड़ और पान के पत्ते का पेस्ट।

अवशेष: बांस की पत्तियों या अश्वगंधा की जड़ पाउडर, बांस की पत्तियों का पाउडर, गुड़, अदरक पाउडर और दूध का मिश्रण खिलाना।

निपल रुकावट: नीम की पत्तियों के डंठल को हल्दी और घी से लेपित कर लगाना।

पुनरावृत्ति प्रजनन: मूली, एलो वेरा, मोरिंगा की पत्तियाँ और करी पत्ते के साथ हल्दी की एक विधि।

बुखार: लहसुन, धनिया के बीज, जीरा, तुलसी की पत्तियाँ, तेज पत्ता, काली मिर्च, पान की पत्तियाँ, शलोट, हल्दी, चिरायता की पत्तियाँ, नीम की पत्तियाँ और गुड़ का जटिल पेस्ट।

दस्त: भारतीय बाला और आम की गुठली का फल पल्प से ड्रेंचिंग; जीरा, हल्दी, लहसुन, प्याज, करी पत्ते, मिर्च, मेथी, गुड़ और हींग का मौखिक पेस्ट।

कीड़े: सरसों, नीम, करेला, हल्दी, मिर्च, केला का तना और गुड़; या लहसुन की कलियाँ और कद्दू के बीज।

कृमि/माइट्स: लहसुन, नीम की पत्तियाँ, लंताना की पत्तियाँ, तुलसी की पत्तियाँ, हल्दी पाउडर और अकोरस राइजोम से बना स्प्रे।

FMD मुँह के घाव: हल्दी, गुड़, कद्दू, जीरा और लहसुन का पेस्ट।

FMD पैर के घाव: नीम, हल्दी, मेहंदी, तुलसी, लहसुन, शरीफा और एकलिफा की पत्तियाँ, नारियल तेल में।

घाव: बकरा घास का रस; अकोरस, एकलिफा, शरीफा की पत्तियाँ, नीम, हल्दी, काला नमक और अजवाइन बीज पाउडर का पेस्ट।

मच्छर: प्याज और सरसों के तेल का पेस्ट; या प्याज, मिमोसा की पत्तियाँ और सरसों का तेल; लार्वा को निकालने के लिए टरपेंटाइन तेल।

जलन: फ्लैक्ससीड ऑयल और गेहूं के आटे का पेस्ट।

विषाक्तता: धनिया, तिल और काली मिर्च के बीज पाउडर; या प्याज की बल्ब और अदरक की जड़ के साथ काला नमक।

प्रजनन स्वास्थ्य: भारतीय ग्लोब थिस्टल या फिकस की जड़ का पेस्ट; दूध के प्रवाह के लिए सौंफ के फल और शतावरी; अस्थमा पौधे का पत्ते या लेटेक्स; पेरिनेटल यूटेरस के लिए प्लांटेन का फल पेस्ट या पत्तियाँ और जड़ें; गर्भपात के बाद प्रजनन स्वास्थ्य के लिए भारतीय बेला।

इम्यूनोमोडुलेटर्स: नीम, गिलोय, आंवला, तुलसी, अदरक, लहसुन और जिनसेंग।

वर्तमान स्थिति और विकास: "एथनोवेटरिनरी" शब्द 1980 के दशक में प्रमुख हुआ जब पारंपरिक पशु स्वास्थ्य देखभाल की आवश्यकता स्पष्ट हो गई। आधुनिक पशु चिकित्सा देखभाल की उच्च लागत और अक्षमता ने पारंपरिक प्रथाओं की महत्वपूर्णता को उजागर किया। भारत में, आधुनिक उपचार की सीमाओं के कारण पारंपरिक दवाओं का व्यापक उपयोग जारी है। भारतीय एग्रो इंडस्ट्रीज फाउंडेशन (BAIF) ने 1997 में EVM पर पहला अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया। ICAR द्वारा अनुसंधान पहलों और AYUSH विभाग द्वारा स्वदेशी दवाओं को प्रोत्साहित करने से EVM की संभावनाओं को बढ़ावा मिला है। "वन हेल्थ" अवधारणा पशु, पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य के बीच संबंध को रेखांकित करती है, जो श्वङ्करूकी भूमिका को और अधिक मान्यता देती है।

पुनरुद्धार और एकीकरण की आवश्यकता: हालांकि पारंपरिक प्रथाएँ स्थापित हैं, आधुनिक चिकित्सा के बढ़ते प्रभाव ने युवा पीढ़ियों में इनका रुचि कम कर दी है। स्थानीय समुदायों में अक्सर महिलाएँ इन प्रथाओं का ज्ञान रखती हैं। यह महत्वपूर्ण है कि इस स्वदेशी ज्ञान को बढ़ावा दिया जाए और इसका दस्तावेजीकरण किया जाए ताकि इसकी रक्षा की जा सके और आधुनिक चिकित्सा के साथ एकीकृत किया जा सके। वैज्ञानिक रूप से EVM प्रथाओं को मान्यता देने के लिए अनुसंधान और विकास की आवश्यकता है, जिससे अधिक प्रभावी और सुरक्षित उपचार मिल सकते हैं। EVM को मजबूत करना प्राकृतिक संसाधनों और स्वास्थ्य प्रबंधन के बीच की खाई को पाट सकता है, सांस्कृतिक परंपराओं का समर्थन कर सकता है, और जैव विविधता संरक्षण में योगदान कर सकता है।

निष्कर्ष: भारत की समृद्ध जैव विविधता के साथ एक विस्तृत पारंपरिक औषधीय ज्ञान भी है। आधुनिक चिकित्सा के प्रभुत्व के बावजूद, EVM एक महत्वपूर्ण संसाधन बना हुआ है, विशेषकर आपात स्थितियों और लागत-कुशल देखभाल के लिए। इन प्रथाओं को पुनर्जीवित और मान्यता देने से प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल में आत्मनिर्भरता को समर्थन मिलेगा, सांस्कृतिक विरासत की रक्षा होगी, और भविष्य की पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन में सुधार होगा।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

ब्रूसेलोसिस: एक गंभीर जूनोटिक रोग और इसकी रोकथाम

डॉ. गयाप्रसाद जाटव, डॉ. अनिल वित्तल
डॉ. सुप्रिया शुक्ला, डॉ. रश्मि चौधरी
(पशु विकृति विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशुपालन विज्ञान विश्वविद्यालय, महू (म.प्र.)
डॉ. ए.के. जयराव, डॉ. विवेक अग्रवाल
डॉ. मुकेश शाक्य
(पशु परजीवी विज्ञान विभाग, पशुचिकित्सा एवं पशुपालन विज्ञान विश्वविद्यालय, महू (म.प्र.)

ब्रूसेलोसिस एक गंभीर जूनोटिक संक्रामक रोग है, जो ब्रूसेला बैक्टीरिया के कारण होता है। यह रोग मुख्य रूप से पशुओं को प्रभावित करता है, लेकिन मनुष्यों में भी फैल सकता है। यह लेख ब्रूसेलोसिस के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालेगा, जिसमें इसका इतिहास, कारण, लक्षण, निदान, उपचार, और सबसे महत्वपूर्ण, इसकी रोकथाम शामिल है।

इतिहास और महत्व

ब्रूसेलोसिस का पता सबसे पहले 1850 के दशक में ब्रिटिश सेना के चिकित्सा अधिकारी डेविड ब्रूस ने लगाया था। उन्होंने माल्टा में तैनात सैनिकों में एक अज्ञात बुखार का अध्ययन किया, जिसे बाद में "माल्टा बुखार" या "मेडिटेरेनियन बुखार" के नाम से जाना गया। यह रोग दुनिया भर में पाया जाता है, लेकिन मध्य पूर्व, मध्य एशिया, मध्य और दक्षिण अमेरिका में अधिक प्रचलित है।

कारण

ब्रूसेलोसिस ब्रूसेला जीनस के बैक्टीरिया के कारण होता है। मनुष्यों में संक्रमण के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार प्रजातियां हैं:

1. ब्रूसेला मेलिटेंसिस (बकरियों और भेड़ों में पाया जाता है)
2. ब्रूसेला एबॉर्टस (मवेशियों में पाया जाता है)
3. ब्रूसेला सुइस (सूअरों में पाया जाता है)
4. ब्रूसेला कैनिस (कुत्तों में पाया जाता है)

संचरण

मनुष्यों में ब्रूसेलोसिस का संचरण मुख्यत: निम्नलिखित तरीकों से होता है:

- संक्रमित पशुओं या उनके उत्पादों के सीधे संपर्क में आने से
- अपास्चरीकृत दूध या डेयरी उत्पादों के सेवन से
- संक्रमित पशु ऊतकों या तरल पदार्थों के साथ त्वचा के कटने या छिलने से
- संक्रमित पशुओं के श्वसन स्राव को सांस के माध्यम से अंदर लेने से

लक्षण और चिह्न: ब्रूसेलोसिस के लक्षण अक्सर अस्पष्ट और फ्लू जैसे होते हैं। सामान्य लक्षणों में शामिल हैं:

- बुखार (अक्सर रात में बढ़ जाता है)
- थकान • जोड़ों में दर्द और सूजन • पसीना आना
- भूख न लगना • वजन कम होना • सिरदर्द • कमजोरी

गंभीर मामलों में, यह रोग केंद्रीय तंत्रिका तंत्र, हृदय, या अन्य अंगों को प्रभावित कर सकता है।

निदान:

ब्रूसेलोसिस का निदान निम्नलिखित परीक्षणों के माध्यम से किया जाता है:

1. रक्त परीक्षण: एंटीबॉडी की उपस्थिति के लिए सीरोलॉजिकल परीक्षण

2. बैक्टीरियल कल्चर: रक्त, अस्थि मज्जा, या ऊतक नमूनों से

3. पॉलीमरेज चेन रिएक्शन (पीसीआर): बैक्टीरियल डीएनए का पता लगाने के लिए

उपचार: ब्रूसेलोसिस का इलाज लंबी अवधि के एंटीबायोटिक उपचार पर निर्भर करता है। सामान्यतः निम्नलिखित दवाओं का संयोजन दिया जाता है:

- डॉक्सीसाइक्लिन • रिफैम्पिसिन
- स्ट्रेप्टोमाइसिन (गंभीर मामलों में)

उपचार आमतौर पर 6 से 8 सप्ताह तक चलता है। कुछ मामलों में, जटिलताओं के आधार पर, उपचार अवधि लंबी हो सकती है।

रोकथाम: ब्रूसेलोसिस की रोकथाम इस रोग के नियंत्रण में सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। रोकथाम के उपाय दो प्रमुख क्षेत्रों पर केंद्रित हैं: पशु स्वास्थ्य प्रबंधन और मानव व्यवहार में परिवर्तन।

1. पशु स्वास्थ्य प्रबंधन

टीकाकरण: पशुओं का नियमित टीकाकरण ब्रूसेलोसिस के प्रसार को रोकने का सबसे प्रभावी तरीका है। विशेष रूप से युवा पशुओं का टीकाकरण महत्वपूर्ण है।

परीक्षण और पृथक्करण: संक्रमित पशुओं की पहचान के लिए नियमित परीक्षण और उन्हें स्वस्थ पशुओं से अलग रखना आवश्यक है।

स्वच्छता: पशुशालाओं और दुग्ध उत्पादन सुविधाओं में उच्च स्तर की स्वच्छता बनाए रखना चाहिए।

जन्म प्रबंधन: संक्रमित पशुओं के गर्भपात के बाद उचित निपटान और क्षेत्र की सफाई महत्वपूर्ण है।

2. मानव व्यवहार में परिवर्तन

पाश्चरीकरण: दूध और डेयरी उत्पादों का पाश्चरीकरण अनिवार्य है। अपास्चरीकृत दूध या ताजा पनीर का सेवन न करें।

व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरण: पशुओं के साथ काम करने वाले लोगों को दस्ताने, मास्क, और सुरक्षात्मक कपड़े पहनने चाहिए।

स्वच्छता: पशुओं के संपर्क में आने के बाद हाथों और शरीर को अच्छी तरह से धोना चाहिए।

मांस का उचित प्रसंस्करण: मांस को अच्छी तरह से पकाना चाहिए। कच्चे या अधपके मांस का सेवन न करें।

प्रयोगशाला सुरक्षा: प्रयोगशाला कर्मियों को उचित बायोसेफ्टी प्रोटोकॉल का पालन करना चाहिए।

3. जागरूकता और शिक्षा:

समुदाय जागरूकता: ब्रूसेलोसिस के जोखिम और रोकथाम के उपायों के बारे में समुदाय को शिक्षित करना महत्वपूर्ण है।

पशुपालकों का प्रशिक्षण: पशुपालकों को रोग के लक्षणों और रोकथाम के उपायों के बारे में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

६) स्वास्थ्य कर्मियों का प्रशिक्षण: चिकित्सकों और स्वास्थ्य कर्मियों को ब्रूसेलोसिस के निदान और प्रबंधन में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

नियामक उपाय

पशु आयात नियंत्रण: संक्रमित पशुओं के आयात को रोकने के लिए सख्त नियम लागू करना चाहिए।

खाद्य सुरक्षा नियम: डेयरी उत्पादों के पाश्चरीकरण और मांस प्रसंस्करण के लिए कड़े नियम लागू करने चाहिए।

रिपोर्टिंग प्रणाली: ब्रूसेलोसिस के मामलों की अनिवार्य रिपोर्टिंग सुनिश्चित करनी चाहिए।

अनुसंधान और विकास

नए टीके: अधिक प्रभावी और लंबे समय तक चलने वाले टीकों का विकास करना चाहिए।

बेहतर निदान: तेज और अधिक सटीक निदान विधियों का विकास करना चाहिए।

उपचार अनुसंधान: नए एंटीबायोटिक संयोजनों और उपचार रणनीतियों पर शोध करना चाहिए।

निष्कर्ष: ब्रूसेलोसिस एक गंभीर जूनोटिक रोग है जो पशुओं और मनुष्यों दोनों को प्रभावित करता है। हालांकि यह रोग चिकित्सकीय रूप से इलाज योग्य है, रोकथाम इसके नियंत्रण में सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। पशु स्वास्थ्य प्रबंधन, मानव व्यवहार में परिवर्तन, जागरूकता और शिक्षा, नियामक उपाय, और निरंतर अनुसंधान के माध्यम से, हम ब्रूसेलोसिस के प्रसार को रोक सकते हैं और इसके प्रभाव को कम कर सकते हैं। यह एक एकीकृत दृष्टिकोण की मांग करता है जिसमें पशु चिकित्सा, जन स्वास्थ्य, और नीति निर्माताओं के बीच सहयोग की आवश्यकता होती है। केवल सामूहिक प्रयासों से ही हम इस महत्वपूर्ण जन स्वास्थ्य चुनौती का सामना कर सकते हैं और एक स्वस्थ समाज की ओर बढ़ सकते हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

केन्द्रीय बजट और किसान

प्रो. (डॉ.) भागचन्द्र जैन
उपाध्यक्ष, राष्ट्रीय कृषि पत्रकार संघ (नाज)
20 महावीर नगर, पोस्ट-रविग्राम, रायपुर (छ.ग.)

'कृषिरेव महालक्ष्मी' अर्थात कृषि ही सबसे बड़ी लक्ष्मी है। भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ कृषि कहलाती है। भारत विकासशील देश है, जिसे विकसित बनाने के लिए केन्द्रीय बजट को नींव कहा गया है। भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्व में पांचवा क्रम है, जिसे तीसरे क्रम पर लाने का जिक्र बजट में किया गया है। वर्ष 2023-24 में भारत की विकास दर 7.1 प्रतिशत होने का अनुमान लगाया गया है। वर्ष 2024-25 के बजट में कृषि हेतु 7637 करोड़ रुपये की वृध्दि की गई है, जिससे वर्ष 2024-25 में कृषि का बजट 151851 करोड़ रुपये हो गया है। कृषि को लाभकारी व्यवसाय बनाने के लिए वर्ष 2024-25 के बजट में विभिन्न प्रवधान किए गए हैं, जैसे- प्राकृतिक खेती, सब्जियों के लिए क्लस्टर, 32 फसलों को जलवायु अनुकूल अधिक देने वाली 109 किस्में, डिजिटल पब्लिक इंफ्रास्ट्रक्चर, दलहन-तिलहन की कार्यनीति, पाँच राज्यों में किसान क्रेडिट कार्ड, राष्ट्रीय सहकारी नीति, फसल बीमा योजना तथा भण्डारण आदि।

प्राकृतिक खेती

वर्ष 2023-24 के बजट में प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने हेतु तीन वर्षों में एक करोड़ किसानों को प्राकृतिक खेती के दायरे में लाया जायेगा, जिसके लिए दस हजार जैव आदान संसाधन केन्द्र (ठपव पदचनज त्मेवनतबम ब्मदजतम) स्थापित किए जाएंगे। इस व्यवसाय के सुचारू रूप से संचालन के लिए ग्राम पंचायतों तथा अन्य संस्थाओं कि मदद ली जायेगी। इसमें ब्रांडिग व्यवस्था शामिल होगी। तथा प्रमाण-पत्र दिये जायेंगे।

तालिका - केन्द्रीय बजट और किसान

क्र.	विवरण	2022-23	2023-24
1.	केन्द्रीय बजट (लाख करोड़ रु.)	1.25	1.25
2.	सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि (प्रतिशत)	6.7	7.1
3.	सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान (प्रतिशत)	16.6	16.0
4.	कृषि निर्यात (लाख करोड़ रूपए)	4.45	4.08
5.	खाद्यान्न उत्पादन (करोड़ टन)	32.96	32.88
6.	कृषि विकास दर (प्रतिशत)	3.50	4.18

स्त्रोतः राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय, प्रतिवेदन

सब्जियों के लिए क्लस्टर

प्रमुख उपभोक्ता केन्द्रों के नजदीक बड़े पैमाने पर सब्जी उत्पादन क्लस्टर विकसित किए जायेंगें, उपज का संग्रहण कर भंडारण केन्द्रों से सीधे बाजार भेजा जायेगा, जिससे मंहगाई पर अंकुश लगाने में मदद मिलेगी। कृषक उत्पादक संगठनों और सहकारी समितियों को इसकी जिम्मेदारी दी जायेगी। इस क्षत्र में स्टार्टअप को भी बढ़ावा दिया जायेगा।

32 फसलों की 109 किस्में

केन्द्रीय बजट में कृषि और उद्यानिकी की 32 फसलों की जलवायु अनुकुल और अधिक उत्पादन देने वाली 109 किस्मों की खेती का प्रवधान किया गया है।

डिजिटल तकनीक

कृषि के लिए डिजिटल अवसंरचना विकसित की जायेगी, जिसके लिए डिजिटल पब्लिक इन्फ्रास्ट्रकचर फॉर एग्रीकल्चर का बजट में प्रावधान किया गया है। शासन द्वारा फसलों और किसानों से जुड़ी जानकारी का डिजिटलीकरण किया जायेगा, जिससे आंकड़ो का बेहतर उपयोग कृषि विकास और किसानों के हित में किया जा सकेगा। इस योजना के अंतर्गत चालू खरीफ ऋतु में 400 जिलों में खरीफ फसलों का डजिटल सर्वेक्षण किया जायेगा। इसके तहत 6 करोड़ किसानों और उनकी जमीन के विवरण को रजिस्ट्री में दर्ज किया जायेगा। इस योजना को आगामी तीन वर्षों में पूरे देश में लागू किया जायेगा। इस योजना का पायलट प्रोजेक्ट उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र में सफल रहा है, जिसका क्षेत्र बढ़ाया जायेगा। डिजिटल विवरण आकड़ों से केवल किसानों के लिए फसलों कि बेहतर योंजनाये बनाई जायेगी, बल्कि फसलों के बीमा, उत्पाद के अच्छे दाम दिलाने, स्टार्टअप को बढ़ावा देने में मदद मिलेगी। डिजिटल तकनीक से किसानों को शासकीय योजनाओं का लाभ मिलेगा, जिसमें न्यूनतम समर्थन मुल्य के तहत खरीद, फसल बीमा, कृषि ऋण शामिल है। इसके अलावा किसानों को फसल संबंधी बेहतर सलाह भी उपल्बध करायी जायेगी। इस योजना में एग्रीस्टेक, कृषि डी.एस.एस. मिट्टी का प्रोफाइल नक्शा शामिल किया जायेगा। एग्रीस्टेक के तहत किसानों की रजिस्ट्री कि जायेगी। जिसमें उनकी आधार जैसी एक यूनिक आई.डी. होगी, जिसमें उनकी जमीन और फसलों का विवरण होगा।

दलहन-तिलहन के लिए कार्य नीति

दलहन-तिलहन में आत्मनिर्भर बनाने के लिए इनके उत्पादन, भण्डारण और विपणन की व्यवस्था मजबूत की जायेगी। सरसों, मूंगफली, तिल, सोयाबीन और सूरजमुखी जैसे तिलहनी फसलों के लिए कार्यनीति बनेगी। भारत में अपनी जरूरत की 50% तिलहन आयात की जाती है।

किसान क्रेडिट कार्ड

केन्द्रीय बजट में पांच राज्यों में किसान क्रेडिट कार्ड लांच करने का प्रावधान किया गया है, जिसके अंतर्गत किसान खेती संबंधी जरूरतों के लिए तीन लाख रुपए का बैंक ऋण प्राप्त कर सकते हैं। किसान क्रेडिट कार्ड से उर्वरक, बीज, मशीनरी, पशुपालन, मत्स्य पालन आदि के लिए ऋण ले सकते हैं तथा कृषि उत्पादन बढ़ा सकते हैं।

राष्ट्रीय सरकारी नीति

सहकारी क्षेत्र में प्रमाणित, व्यवस्थित और चहुँमुखी विकास के लिए राष्ट्रीय सरकारी नीति बनायी जायेगी। इसका लक्ष्य ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास में तेजी लाना और बड़ी संख्या में रोजगार के अवसर सृजित करना है। भारत में दो लाख पंचायतें ऐसी है जहां कोई सहकारी संस्था नहीं है। अगले पांच वर्षों में इन पंचायतों में बहु उद्देशीय सहकारी समिति बनाई जायेगी। राष्ट्रीय सरकारी नीति के अंतर्गत भारत में 1100 कृषक उत्पादक संगठन बनाए जाएंगे।

फसल बीमा

कृषि जोखिम भरा व्यवसाय है। फसलों को प्राकृतिक आपदा, कीट-बीमारी आदि से क्षति पहुंचती है, जिसकी भरपाई के लिए भारत सरकार द्वारा विभिन्न फसलों का बीमा किया जाता है। केन्द्रीय बजट में फसल बीमा के लिए 14600 करोड़ रूपये का प्रावधान किया गया है।

विकसित भारत मिशन में खेत-खलिहान और किसान को प्राथमिकता

विकसित भारत मिशन के लिए खेत-खलिहान से संजीवनी निकलेगी। विकसित भारत का लक्ष्य पाने के लिए 9 सेतु बनाये गये है, जिनमें खेत-खलिहान और किसान को प्राथमिकता दी गई है। विभिन्न फसलों का उत्पादन बढ़ाकर किसानों को मजबूत किया जायेगा और बेहतर बाजार सुविधा की दृष्टि से भण्डारण क्षमता में वृद्धि की जाएगी। केन्द्रीय बजट में कृषि को प्राथमिकता दी गई है। यह बजट गरीब, युवा, किसान और नारी पर आधारित हैं। किसानों, ग्रामीणों के लिए कृषि योजनाओं, कार्यक्रमों को उपयोगी बनाया गया है, जिसका लाभ लेकर किसान, ग्रामीण, पशुपालक, सब्जी-फल उत्पादक नये आयाम स्थापित कर सकते है।

12/2022-23

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

जुकिनी की खेती में कौन-कौन से महत्वपूर्ण बातों का ध्यान रखें

सुनील कुमार गुप्ता (अतिथि शिक्षक)
विभाग-पुष्प विज्ञान एवम भू दृश्य वास्तुकला पं. किशोरी लाल शुक्ला, उद्यानिकी महाविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र, राजनांदगांव (छ.ग.)

रोहित कुमार मिश्रा (वरिष्ठ अनुसंधान अप्देता) कृषि विज्ञान केन्द्र, छतरपुर जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय जबलपुर, (म.प्र.)

परिचय

जुकिनी कद्दू वर्गीय फसल है यह लोगो के बीच चप्पन कद्दू के नाम से भी जाना जाता है. जुकिनी मुख्यत विदेशो में उगाई जाने वाली फसल है, लेकिन अब वर्तमान समय में भारत के किसान भी बड़े पैमाने पर जुकिनी की खेती कर अच्छा मुनाफा कमा रहे हैं.

वर्तमान समय में लोग स्वास्थ के प्रति जागरूक हो रहे हैं, स्वास्थ के दृष्टिकोण से जुकिनी बहुत ही महत्वपूर्ण फसल है,इसमें पोटेशियम और विटामिन ए, सी जैसे पोषक तत्व पाए जाते है,इसके चलते बजार में इसकी हमेशा माँग बनी रहती है जुकिनी का उपयोग मुख्यत सब्जी और सलाद के रूप में खाने के लिए करते है. ऐसे में किसानों के लिए इसकी खेती फायदे का सौदा साबित हो सकती है. जुगनी का पौधा लतावर्गीय होता है,जिनकी लम्बाई करीब 80 से 90 सेमी तक होती है इसके एक पौधें पर केवल 5 से 8 फल आते है.

उपयोग

- जुकिनी का उपयोग सब्जी एवम सलाद के रूप में मुख्य रूप से किया जाता है।
- इसके अलावा इसे स्टॉज, सैंडविच के साथ बेक करके खाया जाता है।
- जुकिनी का उपयोग पंचसितारा होटलों में व्यंजनों को सजाने के लिए भी किया जाता है।

उन्नत किस्में

आस्ट्रेलियन ग्रीन

इस क़िस्म का पौधा झाड़ीनुमा होता है, जिसमे पीले रंग के फूल निकलते है, तथा फल लम्बे आकार और गहरे हरे रंग के होते है. इसके फल बीज रोपाई के 60 से 65 दिन पश्चात् तुड़ाई हेतु तैयार हो जाते है, जिसका प्रति हेक्टेयर उत्पादन 200 क्विंटल तक होता है.

पूसा अलंकार

यह एक संकर क़िस्म है, जिसमे सामान्य ऊंचाई

चित्रः हाइड्रोपोनिक्स

वाले पौधे निकलते है. इस क़िस्म के पौधों पर आने वाले फल चमकीली धारिया लिए हुए हल्के हरे रंग के होते है यह क़िस्म प्रति हेक्टेयर के हिसाब से 200 से 250 क्विंटल का उत्पादन दे देती है, तथा फल आकार में भी लम्बा होता है.

मिट्टी

जुकिनी की फसल में उचित जल निकासी वाली बलुई दोमट मिट्टी की जरूरत होती है. इसके अलावा भूमि में कार्बनिक पदार्थो की उचित मात्रा होनी चाहिए. अम्लीय या क्षारीय भूमि में जुकिनी की खेती बिल्कुल न करें.

लगाने का समय

- खुले खेतों में जुकिनी की बुवाई का सर्वोतम समय नवंबर से दिसंबर तक का होता है वहीं पॉलीहाउस में यह साल में तीन बार उगाया जा सकता है
- पहली फसल जनवरी से अप्रैल माह तक इसकी लगा देनी चाहिए.
- दूसरी फसल अप्रैल से अगस्त का महीना के लिए उपयुक्त माना जाता है
- तीसरी फसल सितंबर से दिसंबर के महीने तक इसकी खेती लगा सकते है.

पौधो की संख्या और दुरी

अगर पौधो को नर्सरी में लगाते है तो 10 से 12 दिन का पौधा रोपण के लिए उपयुक्त होता है , पौधो को 90 सेमी की दुरी पर लगाना चाहिय प्रति एकड़ पौधो की संख्या 3200 रहता है , पौधा लगाने समय ध्यान रखना चाहिय की हरी एवम पीले किस्म वाली पौधो को मिलाकर लगाना चाहिय।

खर्च कितना आता है

खेत की तैयारी, फसल लगाने, फसल की देखभाल करने और फसल को बाज़ार में बेचने तक प्रति एकड़ 70 से 75 रूपए आता है।

उत्पादन एवम बाज़ार भाव

फसल लगाने के 25 दिन बाद से उत्पादन देना शुरू कर देता है प्रति एकड़ 10 से 12 टन औसत उत्पादन प्राप्त होता है जो औसत 30 से 45 रूपए बाज़ार मूल्य मिलता है ।

12/2022-23

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

श्वानों में एर्लिचियोसिस– जानलेवा संक्रमण की पहचान

डॉ. सविता बिसेन
डॉ. काशीराम बघेल, डॉ. सोनाली पृष्टि
(सहायक प्राध्यापक) पशु चिकित्सा एवं पशुपालन
महाविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)

एर्लिचियोसिस श्वानों की किलनी जनित बीमारी है जो *एर्लिचिया कैनिस* नामक जीवाणु के संक्रमण के कारण होती है। संक्रमित *रिफीसिफैलस सैंगवाइनियस* किलनी द्वारा काटे जाने के बाद, श्वान इस रोग से संक्रमित हो जाते हैं। एर्लिचियोसिस, प्रमुख रूप से प्रतिरक्षा प्रणाली की कोशिकाओं को संक्रमित करता है। संक्रमित श्वानों में बुखार, सुस्ती, भूख न लगना एवं रक्तस्राव सहित कई प्रकार के नैदानिक लक्षण दिखाई देते हैं या कुछ मामलों में कोई लक्षण प्रदर्षित नहीं होते हैं।

एर्लिचिया कैनिस, दुनिया के उन हिस्सों में पाया जाता है जहां *रिफीसिफैल्स सैंगवाइनियस* किलनी पाई जाती है। यह संक्रमण कुत्तों और लोमड़ियों के अलावा कैनिडी फैमिली के पालतू या जंगली जानवरों में पाया जाता है जो कि *एर्लिचिया कैनिस* जीवाणु के वाहक होते हैं।

नैदानिक लक्षण– श्वानों में एर्लिचियोसिस रोग के नैदानिक लक्षणों की गंभीरता काफी भिन्न हो सकती है। **इस रोग के तीन चरण हो सकते हैं:–**

ए. तीव्र, बी. उपनैदानिक, सी. दीर्घकालिक
डी. तीव्र चरण

इस चरण के संक्रमण में लक्षण 1–3 सप्ताह में प्रदर्षित होते हैं जो कि निम्नानुसार हैं:–

- बुखार
- सुस्ती
- लसिका-ग्रंथी में सूजन
- भूख न लगना
- वजन कम होना
- नाक एवं आँखों से स्त्राव होना
- नाक से खून आना
- त्वचा के नीचे रक्तस्त्राव जो कि छोटे धब्बे या चोट जैसा दिखता है
- रक्त-परीक्षण में प्लेटलेट्स की कमी एवं एनीमिया परिलक्षित होता है।
- यह चरण आमतौर पर 2-4 सप्ताह तक रहता है।
- एर्लिचियोसिस के स्थानिक क्षेत्रों में इस चरण से संक्रमित श्वानों में मृत्यु दुर्लभ है।
- अधिकांश श्वान, उपचार के बगैर 1-2 सप्ताह बाद स्वस्थ हो जाते हैं हालांकि वे कुछ महीनों या वर्षों तक लगातार इस जीवाणु के वाहक बने रहते हैं।

उपनैदानिक चरण

कुछ श्वान, तीव्र चरण के गुजरने के पश्चात् महीनों या वर्षों तक *एर्लिचिया कैनिस* जीवाणु के उपनैदानिक वाहक बने रह सकते हैं। चूंकि ऐसे श्वानों में कोई नैदानिक लक्षण दिखाई नहीं देते हैं इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें चिकित्सा की आवश्यकता नहीं है। **ऐसे श्वानों में निम्नलिखित अवस्थाएं हो सकती हैं–**

- संक्रमित श्वानों में जीवाणु पूर्ण रूप से खत्म हो सकते हैं।
- श्वान लक्षण रहित रूप से संक्रमित रहते हैं।
- रोग, जीर्ण रूप में तब्दील हो सकता है।

जीर्ण चरण

इस चरण के संक्रमण में नैदानिक लक्षण, तीव्र चरण के समान होते हैं लेकिन अधिक गंभीर होते हैं। इस चरण में पाए जाने वाले विभिन्न लक्षण निम्न प्रकार हैं:–

- बुखार
- कमजोरी
- वजन कम होना
- रक्त-स्त्राव विकार
- श्लेश्मा-झिल्ली में पीलापन
- आंखों में समस्या
- तंत्रिका संबंधी समस्या
- ऐसे संक्रमित श्वान, द्वितीयक संक्रमण के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं।
- रक्त-परीक्षण में प्लेटलेट्स की गंभीर कमी, रक्त-कोषिकाओं में कमी एवं एनीमिया दिखता है।
- बीमारी का यह रूप आमतौर पर घातक होता है एवं उपचार के प्रयास निरर्थक होने की संभावना रहती है।

रोग का प्रसार

श्वानों के बीच संक्रमण का संचरण *रिफीसिफैलस सैंगवाइनियस* किलनी द्वारा होता है। संक्रमित श्वान से स्वस्थ श्वान में *एर्लिचिया कैनिस* का प्रसार, किलनी लगाव के कुछ घंटों के भीतर हो सकता है। *एर्लिचिया कैनिस*, श्वानों के बीच स्वभाविक रूप से संचारित नहीं होता है, **अतः ये निम्नलिखित प्रकार से प्रसारित हो सकता है।**

- स्थानों में संक्रमित किलनी, असंक्रमित श्वानों को संक्रमित कर सकती है।
- संक्रमित श्वान, नए क्षेत्रों में असंक्रमित किलनी की आबादी को संक्रमित करते हैं।

रोग का निदान

एर्लिचियोसिस रोग का निदान, नैदानिक लक्षण एवं रक्त-परीक्षण के संयोजन से किया जाता है।

यदि श्वान-पालक को एर्लिचियोसिस के अनुरूप, नैदानिक लक्षण दिखाई देते हैं तो उन्हें पशु चिकित्सक से आवश्यक परामर्श लेना चाहिए और रोग का जल्द से जल्द मूल्यांकन कराना चाहिए। शीघ्र निदान एवं उचित उपचार से ठीक होने की संभावना बढ़ जाती है।

रोग का नियंत्रण

चूंकि एर्लिचियोसिस रोग के लिए कोई टीका उपलब्ध नहीं है। अतः अपने श्वान को संक्रमण से बचाने हेतु एक प्रभावी किलनी रोकथाम एवं नियंत्रण कार्यक्रम बनाए रखें।

टिक कॉलर अथवा स्पॉट ऑन विधि द्वारा किलनियों को नष्ट करने हेतु कीटनाशकों का उपयोग करें।

पुनः संक्रमण को रोकने हेतु, श्वानों के बिस्तर, केनेल (श्वानों के रहने की जगह) इत्यादि को कीटनाशकों द्वारा उपचारित करें।

जहां तक संभव हो, पालतू श्वानों को किलनी संक्रमित क्षेत्रों (जैसे भारी वनस्पति वाले क्षेत्र) में ले जाने से बचें।

अपने पालतू श्वानों को नियमित रूप से किलनी संक्रमण हेतु निरीक्षण करें खासकर सिर और गर्दन पर, कानों के पीछे, कानों के अंदर, छाती पर, पैरों की उंगलियों के बीच एवं उनके मुंह के आसपास।

लम्बे अथवा रोएंदार बाल वाले श्वानों की नस्लों के बालों को छोटा करके रखने से किलनी नियंत्रण आसान हो जाता है।

घर में नया श्वान पालने से पहले, उसका इतिहास, स्वास्थ्य की स्थिति, किलनी रोकथाम के लिए अपनाए गए उपायों के बारे में पूर्ण जानकारी लेनी चाहिए।

रोग का उपचार

एंटीबायोटिक दवाओं द्वारा एर्लिचियोसिस का उपचार किया जाता है।

उपयुक्त समय पर उपचार से, स्वास्थ्य में जल्द सुधार होने की संभावना अधिक रहती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

कृषि में ड्रोन का महत्व

डॉ. नरेद्र हरिदास तायडे वैज्ञानिक; कृषि अभियांत्रिकी, कृषि विज्ञान केन्द्र कांकेर (छ.ग.)

कृषि में ड्रोन का महत्व

समय व जलवायु परिवर्तन के साथ.साथ खेती में जहां समस्याओं का आकार व स्वरूप बदला हैए वहीं किसानों पर लागत में कमी लाते हुए अधिक उत्पादन का दबाव भी बढ़ा है। किसानों की आय को दोगुनी करने के ध्येय को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिक खेती के नए तौर.तरीके अपनाए जा रहे हैं। इनमें अत्याधुनिक कृषि मशीनों तथा अन्य उपकरणों का विशेष तौर पर जिक्र किया जा सकता है।

क्रमिक विकास के फलस्वरूप अन्य मशीनों और यंत्रों की भांति ड्रोन भी विकास के उस मुकाम पर पहुंच चुका हैए जहां उसे खेती के प्रयोग में भी लाया जा सकता है। ड्रोन एक मानव रहित विमान है। ड्रोन अधिक औपचारिक रूप से मानव रहित हवाई वाहन (यूएवी) या मानव रहित विमान प्रणाली के रूप में जाने जाते हैं। ड्रोन का अविष्कार सन् 1935 पहला आधुनिक ड्रोन विकसित किया गया। भारत सरकार किसानों को ड्रोन का उपयोग करने के लिए सक्रिय रूप से प्रोत्साहित कर रही है। खेती का उत्पादन बढ़ाने में ड्रोन किसानों की काफी मदद करते हैं।

ड्रोन का उपयोग किसी भी वनस्पति या फसल के स्वास्थ्य का आकलन करने के लिए किया जाता है, खरपतवारों, संक्रमणों और कीटों से प्रभावित क्षेत्र और इस आकलन के आधार पर, इन संक्रमणों से लडने के लिए आवश्यक रसायनों की सही मात्रा का उपयोग किया जाता है जिससे किसान के लिए समग्र लागत का अनुकूलन किया जा सकता है। उन्नत रिमोट सेंसिंग क्षमताओं वाले ड्रोन का उपयोग फसलों की निगरानी करने, कीटनाशकों और उर्वरकों का छिडक़ाव करने, सिंचाई प्रणाली का प्रबंधन करने, उपज की भविष्यवाणी करने आदि के लिए किया जाता है। कुशल क्षेत्र योजना के लिए कृषि ड्रोन का उपयोग मिट्टी और क्षेत्र विश्लेषण के लिए किया जाता है। मिट्टी में नमी की मात्रा, इलाके की स्थितिए मिट्टी की स्थिति, मिट्टी के कटाव, पोषक तत्वों की मात्रा और मिट्टी की उर्वरता का मूल्यांकन करने के लिए

उनका उपयोग सेंसर को माउंट करने के लिए किया जाता है। फसल निगरानी, बीज बोने से लेकर कटाई के समय तक फसल की प्रगति का पर्यवेक्षण है। इसमें सही समय पर खाद देना, कीटों के हमले की जांच करना और मौसम की स्थिति के प्रभाव की निगरानी करना शामिल है। फसल की निगरानी ही एकमात्र तरीका है जिससे एक किसान समय पर फसल सुनिश्चित कर सकता है, खासकर जब मौसमी फसलों की बात होती है। किसी भी त्रुटि के परिणाम स्वरूप फसल खराब हो सकती है। फसल निगरानी अगले खेती के मौसम को समझने और योजना बनाने में मदद करती है। इन्फ्रारेड कैमरों से खेत का निरीक्षण करके ड्रोन प्रभावी फसल निगरानी में मदद करते हैं और अपनी वास्तविक समय की जानकारी के आधार पर किसान खेत में पौधों की स्थिति में सुधार के लिए सक्रिय उपाय कर सकते हैं।

ड्रोन पेड़ और फसल लगाने में मदद करते हैं। इस तकनीक से न केवल श्रम की बचत होती हैए बल्कि ईंधन की बचत में भी मदद मिलती है। कृषि-ड्रोन का उपयोग जैव-कीटनाशकों रसायनों के छिडक़ाव के लिए करते हैं पारंपरिक तरीकों की तुलना में बहुत कम समय में फसलों पर उर्वरकों और कीटनाशकों का छिडक़ाव संभव हो जाता है। मिट्टी और लगाई गई फसल के स्वास्थ्य की निगरानी के लिए लगातार सर्वेक्षण आवश्यक है। मैन्युअल सर्वेक्षण में कई दिन लग जाते हैं और त्रुटि की संभावना भी होती है। ड्रोन उसी काम को कुछ ही घंटों में कर सकता है। इन्फ्रारेड मैपिंग के साथ ड्रोन मिट्टी और फसल दोनों के स्वास्थ्य के बारे में जानकारी एकत्र कर करना आसान बनाते हैं। कीटनाशकों और अन्य रसायनों के अति प्रयोग को कम करने में ड्रोन विशेष रूप से प्रभावी साबित हुए हैं। रसायन वैसे तो फसल को बचाने में मदद करते हैं। लेकिन, रसायनों का ज्यादा इस्तेमाल नुकसानदेह साबित हो सकता है। ड्रोन कीटों के हमलों के सूक्ष्म संकेतों का पता लगा कर और हमले की डिग्री और सीमा के बारे में सटीक डेटा प्रदान करते हैं। इससे किसानों को उपयोग किए जाने वाले रसायनों की आवश्यक मात्रा की गणना करने में मदद मिलती है जो फसलों को नुकसान पहुंचाने से बचातें है। मौसम की सटीक भविष्यवाणी नहीं की जा सकती हैए पैटर्न में किसी भी बदलाव के लिए तैयार करना बेहद मुश्किल हो जाता है। आगामी मौसम की स्थिति का पता लगाने के लिए ड्रोन का उपयोग किया जाता है। बेहतर भविष्यवाणियां करने के लिए स्टॉर्म ड्रोन का पहले से ही इस्तेमाल किया जा रहा है। और इस जानकारी का उपयोग किसान बेहतर तैयारी के लिए कर सकते हैं। तूफान या बारिश की कमी की अग्रिम सूचना का उपयोग उस फसल की योजना बनाने के लिए किया जाता है जो मौसम के लिए सबसे उपयुक्त होगीए और बाद की अवस्था में रोपित फसलों की देखभाल कैसे करें। ड्रोन का उपयोग विशाल पशुधन की निगरानी और प्रबंधन के लिए भी किया जाता है क्योंकि उनके सेंसर में उच्च-रिज़ॉल्यूशन वाले इन्फ्रारेड कैमरे होते हैंए जो एक बीमार जानवर का पता लगा सकते हैं और उसके अनुसार तेजी से उपचार कर सकते हैं।

ड्रोन के माध्यम से किसान भाई दवाई ;नैनो यूरियाद्ध एवं समय की बचत कर सटीकता से छिड़काव कर फसल उत्पादन में बढोत्तरी कर सकते है जिससे जिले के कृषि अर्थवस्था में बढोत्तरी प्राप्त हो सकती है तथा ड्रोन द्वारा किसान भाई फसल संरक्षण के समय होने वाले त्वचा रोग, जीवन हानी आदि को रोका जा सकता है तथा पौध संरक्षण में होने वाले अत्यधिक श्रम को भी कम किया जा सकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

महिलाओं में एनीमिया: एक व्यापक दृष्टिकोण

सीमा कनौजिया, फौज़िया बानो (शोध छात्रा)
खाद्य एवं पोषण विभाग, एरा विश्वविद्यालय, लखनऊ

एनीमिया क्या है?: एनीमिया, जिसे "रक्ताल्पता" भी कहा जाता है, एक ऐसी स्थिति है जिसमें शरीर में स्वस्थ लाल रक्त कोशिकाओं (RBC) की कमी होती है। यह स्थिति तब उत्पन्न होती है जब शरीर में पर्याप्त मात्रा में हीमोग्लोबिन नहीं होता, जो कि लाल रक्त कोशिकाओं में पाया जाने वाला प्रोटीन है और ऑक्सीजन को शरीर के विभिन्न हिस्सों तक पहुंचाने का काम करता है।

महिलाओं में एनीमिया के कारण

महिलाओं में एनीमिया के कई प्रमुख कारण हो सकते हैं। यहाँ कुछ सामान्य कारण दिए गए हैं-

1. आयरन की कमी (Iron Deficiency)-आयरन की कमी महिलाओं में एनीमिया का सबसे आम कारण है। यह निम्नलिखित कारणों से हो सकती है-

मासिक धर्म: नियमित मासिक धर्म के दौरान खून की कमी से शरीर में आयरन की कमी हो सकती है।

गर्भावस्था: गर्भावस्था के दौरान बढ़ती हुई आयरन की जरूरतों के कारण महिलाओं में आयरन की कमी हो सकती है।

पोषण की कमी: आयरन युक्त खाद्य पदार्थों का कम सेवन करने से भी आयरन की कमी हो सकती है।

फोलेट और विटामिन बी12 की कमी (Folate and Vitamin Bvw Deficiency)

फोलेट की कमी: फोलेट एक प्रकार का विटामिन बी है जो नई रक्त कोशिकाओं के निर्माण के लिए आवश्यक होता है। फोलेट की कमी एनीमिया का कारण बन सकती है।

विटामिन बी12 की कमी: विटामिन बी12 की कमी से भी एनीमिया हो सकता है, क्योंकि यह विटामिन लाल रक्त कोशिकाओं के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

आंतरिक रक्तस्राव (Internal Bleeding)

पाचन तंत्र के अल्सर: पेट में अल्सर या आंतों में अल्सर से रक्तस्राव हो सकता है जिससे एनीमिया हो सकता है।

बवासीर (Hemorrhoids): बवासीर से भी खून की कमी हो सकती है।

आंतरिक रक्तस्राव: पाचन तंत्र, गुर्दे, या प्रजनन अंगों में किसी अन्य कारण से होने वाला आंतरिक रक्तस्राव भी एनीमिया का कारण हो सकता है।

अन्य चिकित्सीय स्थितियां (Other Medical Conditions)

किडनी की बीमारी: किडनी की बीमारी से एरिथ्रोपोइटिन नामक हार्मोन की कमी हो सकती है, जो लाल रक्त कोशिकाओं के उत्पादन में मदद करता है।

क्रॉनिक बीमारियाँ: जैसे कि कैंसर, रुमेटॉयड अर्थराइटिस, और अन्य क्रॉनिक बीमारियाँ भी एनीमिया का कारण बन सकती हैं।

खराब आहार (Poor Diet)

पोषण की कमी: अगर आहार में आवश्यक पोषक तत्वों की कमी होती है, तो इससे एनीमिया हो सकता है।

शाकाहारी आहार: अगर शाकाहारी आहार में पर्याप्त मात्रा में आयरन और विटामिन बी12 नहीं होता, तो इससे भी एनीमिया हो सकता है।

6. संक्रमण (Infections): कुछ संक्रमण, जैसे कि मलेरिया, शरीर में लाल रक्त कोशिकाओं को नष्ट कर सकते हैं, जिससे एनीमिया हो सकता है।

7. दवाइयाँ (Medications): कुछ दवाइयाँ, जैसे कि कीमोथेरपी दवाइयाँ और कुछ एंटीबायोटिक्स, लाल रक्त कोशिकाओं की संख्या को कम कर सकती हैं।

एनीमिया के लक्षण

महिलाओं में एनीमिया के आम लक्षण निम्नलिखित हो सकते हैं: ● थकान और कमजोरी ● पीलापन या त्वचा का पीला होना ● सांस लेने में कठिनाई ● सिर दर्द और चक्कर आना ● हृदय की धड़कन का तेज़ होना ● ठंडे हाथ और पैर ● ध्यान केंद्रित करने में कठिनाई

उपचार

आयरन सप्लीमेंट्स: डॉक्टर आयरन की कमी को पूरा करने के लिए आयरन सप्लीमेंट्स लिख सकते हैं। इन्हें खाने के साथ या खाने के बाद लिया जाना चाहिए।

आयरन युक्त खाद्य पदार्थ: आहार में आयरन युक्त खाद्य पदार्थों को शामिल करना चाहिए, जैसे कि लाल मांस, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, दालें, और सूखे मेवे।

विटामिन सी का सेवन: विटामिन सी आयरन के अवशोषण में मदद करता है, इसलिए विटामिन सी युक्त फलों का सेवन बढ़ाना चाहिए।

फोलेट सप्लीमेंट्स: डॉक्टर फोलेट की कमी को पूरा करने के लिए फोलिक एसिड सप्लीमेंट्स लिख सकते हैं।

विटामिन बी12 इंजेक्शन: अगर विटामिन बी12 की कमी होती है, तो डॉक्टर विटामिन बी12 इंजेक्शन लिख सकते हैं।

फोलेट और विटामिन बी12 युक्त खाद्य पदार्थ: आहार में फोलेट और विटामिन बी12 युक्त खाद्य पदार्थों को शामिल करना चाहिए, जैसे कि मांस, मछली, अंडे, और हरी पत्तेदार सब्जियाँ।

चिकित्सीय स्थितियों का उपचार: यदि एनीमिया का कारण कोई अन्य बीमारी है, तो उस बीमारी का उचित उपचार करना चाहिए जैसे कि किडनी की बीमारी, क्रॉनिक बीमारी, आदि।

दवाइयाँ: यदि एनीमिया किसी दवाई के कारण हो रही है, तो डॉक्टर दवाई को बदल सकते हैं या उसकी खुराक को समायोजित कर सकते हैं।

सामान्य सुझाव

● **हाइड्रेशन:** पर्याप्त मात्रा में पानी पीना।
● **तनाव प्रबंधन:** योग, ध्यान, और अन्य तनाव प्रबंधन तकनीकों का अभ्यास करना।
● **स्वस्थ नींद:** पर्याप्त नींद लेना।
● **धूम्रपान और शराब का सेवन न करना:** धूम्रपान और अत्यधिक शराब के सेवन से बचना।
● आयरन, फोलेट और विटामिन बी12 से भरपूर आहार लेना।
● मासिक धर्म के दौरान अतिरिक्त आयरन की खुराक लेना।
● नियमित स्वास्थ्य जांच कराना।
● पोषण विशेषज्ञ या चिकित्सक से परामर्श लेना।

निष्कर्ष: महिलाओं में एनीमिया एक गंभीर स्वास्थ्य समस्या हो सकती है यदि इसका समय पर निदान और उपचार न किया जाए। सही जानकारी और नियमित स्वास्थ्य देखभाल से इसे आसानी से प्रबंधित किया जा सकता है। यदि आपको एनीमिया के लक्षण महसूस हों, तो तुरंत अपने डॉक्टर से परामर्श लें और उचित उपचार करें।

02/2023-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

एजोला : फसल के लिए एक जैविक वरदान

शची तिवारी, स्वर्णिमा तिवारी
(शोध छात्रा) वनस्पति विज्ञान विभाग, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय मेरठ (उ.प्र.)

चंद्र कान्त एवं प्रदीप कुमार वर्मा
सहायक प्राध्यापक कृषि विज्ञान विभाग, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय मेरठ (उ. प्र.)

परिचय: एजोला को वैज्ञानिक भाषा में फर्न कहते है, जो पानी में तैरते रहते हैं। एजोला की जाति सूक्ष्मजीव होती है, इसकी पंखुडियो में एनाबिना (Anabaena) नामक नील हरित काई होती है। एजोला को जैविक उर्वरक के रूप मे प्रयोग करते है, जो धान के उत्पादन को बढ़ाता है। इसे मछली तथा पशुओं के चारे में तथा कई लोग ड्राइंग रूम को सजाने में तथा विभिन्न देशों मे पकौड़ा व चटनी भी बनाते हैं। सूर्य के प्रकाश में वायुमण्डलीय नत्रजन का एजोला यौगिकीकरण करता है, इसमें विशेष गुण यह है कि यह अनुकूल वातावरण में 5 दिनों में ही दोगुना हो जाता है। ये 300 टन जो भी अधिक सक्रिय पदार्थ प्रति हे. पूरे साल में पैदा हो सकता है। धान के खेतो में इसे प्रयोग करके उत्पादन की वृद्धि 5 से 15% सम्भावित् हो सकता है। एजोला को रोपाई से पहले 2 से 4 इंच पानी से भरे खेत में डाल दिया जाता है, साथ ही 30 से 40 किलोग्राम सुपर फास्फेट भी डाल दिया जाता है। भारत में 7-8 किस्मे एजोला की पाई जाती है जिनमें पिन्नाटा, कैरोलिना, निलोटिका, जूनवेर 21, जूनवेर 29 एवं मेक्सिकाना सर्वोत्तम किस्म है। जिसमे जूनवेर 29 तेजी वृद्धि तथा उच्च पोषक मूल्य के कारण सोने की खान कहा जाता है। इसमे प्रोटीन अमीनो एसिड, विटामिन, खनिज लवण कैल्शियम, फास्फोरस, आयरन, कापर, मैगनेशियम प्रचुर मात्रा में होते है।

वाक्यांश-जैविक खाद, प्रोटीन, एंटीबायोटिक (प्रतिजैविक), एजोला, कैल्शियम, फास्फोरस

एजोला का उपयोग जैविक खाद के रूप में-एजोला का उपयोग मुख्यतः धान की फसल में किया जाता है, छोटे- छोटे पोखर या तालाब में जहाँ पानी इक्ट्ठा होता वहाँ पानी की सतह में दिखाई देते हैं। सभी किस्मों में एजोला का प्रयोग कर सकते हैं, लेकिन आधकांश लाभ जूनवेर 21 का प्रयोग करके मिलता है 20 से 25 दिन में धान का रोपाई के बाद इसे खेतो में डाल सकते हैं। पानी की उपलब्धता मे यह पूरे खेत में आसानी से फैल जाता है।

एजोला का उपयोग पशुआहार के रूप में-दुग्ध की बढ़ती हुई मांग और पशुपालन व्यवसाय मे तथा फसल उत्पादन में निरंतर कमी परिलक्षित हो रही है। ऐसे में एजोला को वरदान के रूप प्रयोग कर सकते हैं। एजोला में भरपूर पौष्टिक आहार व सुपाच्य और सस्ता भी है। शुष्क मात्रा के आधार पर 40-60% प्रोटीन, 10-15% खनिज, 7-10% एमीनो अम्ल जैव सक्रिय पदार्थ और पोलिमर्स होते हैं। पशुओं को खिलाने से उनमें सामान्य पशुओ की तुलना मे अधिक वसा पाई जाती है, तथा फास्फोरस की कमी से पशुओं के पेशाब में खून आने जैसे समस्याओं से निवारण मिलता है। इसको खिलाने से पशुओं मे बांझपन की समस्या को ठीक किया जा सकता है। एजोला खिलाने से पशुओं में भरपूर मात्रा में फास्फोस तथा लोहे की आपूर्ति होती है। इसकी संरचना इसे अधिक पौष्टिक यह असरकारक आदर्श पशुआहार बनाती है। सामान्य पशुओ की तुलना में दुधारू पशुओं पर किए गए प्रयोगो में जब एजोला की 1.5 से 2 kg मात्रा दैनिक आहार के साथ प्रतिदिन दिया जाता है तो पशुओं में दूध उत्पादन की दर में 15-20% की बढ़ोतरी होती है। इस तरह अद्वितीय पास्परिक सहजैविक संबन्ध एजोला को अद्भुत पौधे के रूप में विकसित करता है।

एजोला के गुण-एजोला हरित गुच्छ छोटे-छोटे समूह में पानी में तैरता रहता है "एजोला पिन्नाटा" नामक प्रजाति भारत में अधिकांश पाई जाती है जो अत्यधिक गर्मी सहन करने वाली प्रजाति है। जल में तीव्र गति से एजोला की वृद्धि होती है।

• एजोला में विटामिन प्रोटीन, अमीनो अम्ल, कैल्शियम, फास्फोरस, लोहा पोटैशियम, कैल्शियम, कॉपर, भरपूर मात्रा मे होते है। इनमें बायोएक्टिव पदार्थ और बायो पालीमर भी पाए जाते हैं। • पशु इसे आसानी से पचा लेते हैं क्योंकि इसमे उचत्तम मात्रा मे प्रोटीन एवं तत्व पाए जाते हैं। • उत्पादन लागत एजोला की कम होती है। • प्रति सप्ताह की दर से औसतन 15 किग्रा. प्रति वर्ग मीटर उपज देती है। एजोला (फ़र्न) तीन दिन में दोगुनी सामान्य अवस्था मे हो जाती है। एजोला पशुओ के लिए एंटीबायोटिक (प्रतिजैविक) है। • भूमि उर्वरा शकित बढ़ाने हेतु हरी खाद के रूप मे उपयुक्त है एवं पशुओं हेतु आदर्श आहार है।

एजोला उत्पादन की विधि-

• 2 मीटर लम्बा 2 मीटर चौड़ा मीटर गहरा गड्ढा छायादार जगह मे खोदना है। • सीमेंट की टंकी में इसे उगाया जा सकता है प्लास्टिक की शीट बिछाना जरूरी नही है पराबैगनी किरणे रोधी प्लास्टिक शीट का उपयोग करें। • गड्ढे में लगभग 10-15 kg मिट्टी फौलाना है। • गड्ढे मे पानी के साथ 2kg गोबर और 30 ग्राम सुपर फास्फेट डालना है। • पानी का स्तर 10 सेमी तक होना चाहिए। • गड्ढे में 500 ग्राम से किलोग्राम एजोला कल्चर डालना है। • 10-15 दिन में एजोला तेजी से विकसित होने के कारण पूरे गड्ढे में फैल जाता है इसीलिए प्रतिठिन 800-1200 ग्राम एजोला निकाला जा सकता है। • एजोला तेजी से बढ़ता रहे इसके लिए प्रत्येक पाँच दिन के अंतराल पर 20 ग्राम सुपर फॉस्फेट और लगभग 1 किलोग्राम गोबर गड्ढे में डालना है। • प्रतिदिन पशु को 1.5-2.0 किलोग्राम एजोला दैनिक आहार के साथ खिलाया जा सकता है।

एजोला उत्पादन में ध्यान देने योग्य बातें

• तेज बढ़त और दोगुना होने का न्यूनत?म् समय बनाये रखने हेतु एजोला को प्रतिदिन उपयोग के लिए (200 ग्राम प्रति वर्गमीटर के मान से) निकाला जाए। • फर्न की तीव्र गति विकसित होती रहे इसके लिए गाय का गोबर और सुफर फास्फेट समय- समय पर डालना चाहिए। • समय- समय पर एजोला की टंकी का पी. एच. परीक्षण करना चाहिए तथा उचित पी. एच. 5.5-7.0 के बीच होना चाहिए। • नाइट्रोजन और खनिजों की कमी से बचाने के लिए 30 दिन के भीतर टंकी से 5 किलो मिट्टी बदल देना चाहिए तथा 10 दिनों के भीतर 25-30त्न ताजे पानी से पानी बदलना चाहिए। • एजोला तैयार करने की टंकी को 6 महीने के भीतर पूरी तरीके से साफ करके ताजा पानी और गोबर डालना चाहिए। • एजोला का उपयोग करने से पहले ताजे पानी से धोना चाहिए ताकि दुर्गन्ध खत्म हो जाए।

निष्कर्ष: एज़ोला के निरंतर कटाई से, नाइट्रोजन निषेचन की आवश्यकता के बिना, एज़ोला संस्कृतियो से उच्च प्रोटीन पैदावार प्राप्त की जा सकती है। फिनोल्स के उच्च स्तर से संभवतः पशु आहार मे एज़ोला के समावेश दर मे पाली सीमाओ मे योगदान करते है और आगे की जांच की आवश्यकता होती है।

संदर्भ: 1.Liu J, Xu H, Jiang Y, Zhang K, Hu Y and Zeng Z, (2017). Methane emissions and microbial communities as influenced by dual cropping of Azolla along with early rice. Sci Rep 7:40635.

2.Nicoletto C, Tosini F and Sambo P, (2013). Effect of grafting and ripening conditions on some qualitative traits of 'Cuore di bue' tomato fruits. J Sci Food Agric 93:1397–1403.

01/2023-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

बायोप्लास्टिक : हरित पर्यावरण के लिए सतत हरित प्लास्टिक

स्वप्निल श्रीवास्तव शोध छात्र, कृषि जैव प्रौद्योगिकी विभाग, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ, (उ.प्र.)

अमृत वर्षिणी शोध छात्रा, विस्तार शिक्षा विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, अयोध्या (उ.प्र.)

मनोज कुमार यादव प्राध्यापक, कृषि जैव प्रौद्योगिकी विभाग, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ, (उ.प्र.)

अनंत शर्मा शोध छात्र, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ, (उ.प्र.)

परिचय: प्लास्टिक का हम रोजाना इस्तेमाल करते हैं उसके अपने नुकसान हैं। सामान्य प्लास्टिक जिसे जीवाश्म-ईंधन प्लास्टिक/पेट्रो प्लास्टिक के रूप में जाना जाता है पेट्रोलियम से प्राप्त होते हैं और इसलिए दुर्लभ जीवाश्म ईंधन पर अधिक निर्भर होते हैं और ग्रीनर हाउस गैस का उत्पादन करते हैं। इसके अलावा, प्लास्टिक उत्पादन में बड़ी मात्रा में तेल और ऊर्जा का उपयोग होता है। इसलिए बायोप्लास्टिक या बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक को पेट्रोलियम आधारित प्लास्टिक की समस्या के समाधान के रूप में प्रस्तावित किया गया है। वनस्पति वसा और तेल, मकई स्टार्च, मटरया माइक्रोबायोटा जैसे प्राकृतिक और नवीकरणीय फीसस्टॉक से प्राप्त बायोप्लास्टिक पॉलिमर का एक वर्ग नहीं बल्कि एक पारिवारिक उत्पाद है। बायोप्लास्टिक निम्न में से किसी एक या दोनों श्रेणियों में आते हैं। जैव-आधारित प्लास्टिक जो स्टार्च, चीनी, वनस्पति तेल या लकड़ी के गूदे जैसे नवीकरणीय स्रोतों से प्राप्त होते हैं। ये बायोडिग्रेडेबल या नॉन-बायोडिग्रेडेबल हो सकते हैं। उदाहरण हेतु बायोएथेनॉल से प्राप्त पॉलीथीन (पीई) प्लास्टिक जैव-आधारित होंगे लेकिन जैव-निम्नीकरणीय नहीं होंगे।

बायोडिग्रेडेबल (कम्पोस्टेबल) प्लास्टिक बायोडिग्रेडेबिलिटी और कंपोस्टेबिलिटी के मानकों को पूरा करते हैं। बायोडिग्रेडेबल पॉलिमर अक्सर जैव-आधारित होते हैं लेकिन वे पेट्रोलियम-आधारित भी हो सकते हैं (जैसे पॉलीकैप्रोलैक्टोन)। कुछ बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक में पेट्रोलियम आधारित पॉलिमर और पॉलिमर का मिश्रण भी होता है। बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक को पर्यावरण में सूक्ष्म जीवों द्वारा पूरी तरह से गैर-विषाक्त यौगिकों (पानी, ब्व2 और बायोमास एरोबिक स्थितियों के तहत, साथ ही एनारोबिक स्थितियों के तहत मीथेन) में तोड़ा जा सकता है।

बायोप्लास्टिक्स के प्रकार: बायोप्लास्टिक्स को स्टार्च, स्टार्च-चीनी, किण्वन उत्पादों, सेलूलोज़, लिग्निन आदि से बनाया जाता है। विभिन्न प्रकार के बायोप्लास्टिक्स को उन्नत जलरोधी जैसे बेहतर गुणों वाली सामग्री बनाने के लिए जोड़ा जाता है। बायोप्लास्टिक्स के कुछ मुख्य समूह सेल्युलोज-आधारित प्लास्टिक, थर्मोप्लास्टिक्स, पॉलीलैक्टिक एसिड (पीएलए) पॉलीहाइड्रॉक्सीब्यूटाइरेट (पीएचबी) और पॉलियामाइड-11 हैं।

सेल्युलोज-आधारित प्लास्टिक आमतौर पर लकड़ी के गूदे से उत्पादित होते हैं और फिल्म-आधारित उत्पाद जैसे रैपर बनाने के लिए उपयोग किए जाते हैं।

स्टार्च-आधारित प्लास्टिक को थर्मोप्लास्टिक के रूप में जाना जाता है। ये जैव-प्लास्टिक बाजार का लगभग 50% हिस्सा हैं। शुद्ध स्टार्च की आर्द्रता को अवशोषित करने की क्षमता ने दवा क्षेत्र में दवा कैप्सूल के उत्पादन के लिए इसका व्यापक रूप से

जैव-आधारित बायोप्लास्टिक

उपयोग किया है। सोर्बिटोल और ग्लिसरीन जैसे प्लास्टाइज़र इसे और अधिक लचीला बनाने और कई विशेषताओं का उत्पादन करने के लिए जोड़े जाते हैं। पॉलीलैक्टिक एसिड (पीएलए) फसलों (आमतौर पर मकई स्टार्च या गन्ना) से स्टार्च के किण्वन से लैक्टिक एसिड में उत्पन्न होता है जिसे बाद में पोलीमराइज़ किया जाता है। इसके मिश्रणों का उपयोग कंप्यूटर और मोबाइल फोन केसिंग, पन्नी, बायोडिग्रेडेबल मेडिकल इम्प्लांट्स, मोल्ड्स, टिन्स, कप, बोतलें और अन्य पैकेजिंग सहित अनुप्रयोगों की एक विस्तृत श्रृंखला के लिए किया जाता है। पॉलीहाइड्रॉक्सीब्यूटाइरेट (पीएचबी) का उपयोग पैकेजिंग, रस्सियों, बैंक नोटों और कार के पुर्जों के लिए किया जाता है। यह एक पारदर्शी फिल्म है और बायोडिग्रेडेबल है। बैक्टीरिया और आनुवंशिक रूप से संशोधित पौधों में एंजाइमों द्वारा निर्मित होता है। पॉलियामाइड-11 (पीए-11) वनस्पति तेल से प्राप्त कार ईंधन लाइनों, वायवीय वायु ब्रेक ट्यूबिंग, विद्युत विरोधी दीमक केबल शीथिंग और तेल और गैस फ्लेकिबल पाइप और नियंत्रण द्रव गर्भनाल में उपयोग के लिए मूल्यवान है।

बायोप्लास्टिक्स के पर्यावरणीय प्रभाव: बायोप्लास्टिक्स को ऊर्जा दक्षता, पेट्रोलियम खपत और कार्बन उत्सर्जन के मामले में पेट्रोप्लास्टिक्स से बेहतर पाया गया है लेकिन लागत और प्रयोज्यता में पेट्रोप्लास्टिक्स से कम है। कार्बन स्रोत के रूप में जीवाश्म ईंधन की कम आवश्यकता कम ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन और खतरनाक अपशिष्ट उत्पादन में कमी के कारण बायोप्लास्टिक उत्पादन और उपयोग को पेट्रोप्लास्टिक की तुलना में अधिक टिकाऊ माना जाता है। बायोप्लास्टिक का एक मीट्रिक टन 0.8 और 3.2 के बीच कम मीट्रिक टन कार्बन डाइऑक्साइड उत्पन्न करता है। लेकिन बायोप्लास्टिक का निर्माण पेट्रोलियम पर निर्भर है। इटालियन बायोप्लास्टिक निर्माता नोवामोंथ ने बताया है कि एक किलोग्राम बायोप्लास्टिक उत्पाद के उत्पादन के लिए 500 ग्राम पेट्रोलियम और लगभग 80 प्रतिशत ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो आम प्लास्टिक का उत्पादन करने के लिए आवश्यक होती है। नेचर वर्क्स ने बताया है कि (पॉलिलैक्टिक एसिड) बायोप्लास्टिक उत्पादन पॉलीथीन की तुलना में 25 से 68 प्रतिशत के बीच जीवाश्म ईंधन की बचत करता है। फ्रेंकलिन एसोसिएट्स और एथेना इंस्टीट्यूट द्वारा किए गए एक विस्तृत अध्ययन में बताया गया है कि बायोप्लास्टिक दूसरों के लिए पर्यावरण की दृष्टि से कम हानिकारक हैं। यह अध्ययन उत्पादों के जीवन के अंत पर विचार नहीं करता है इस प्रकार संभावित मीथेन उत्सर्जन की उपेक्षा करता है। अन्य अध्ययनों से पता चला है कि बायोप्लास्टिक कार्बन फुटप्रिंट में 42 प्रतिशत की कमी का प्रतिनिधित्व करता है।

बायोप्लास्टिक्स का लाभ: बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक नवीकरणीय होते हैं और टूटने में कम समय लेते हैं। बायोडिग्रेडेबल उत्पाद पर्यावरण के लिए अच्छे होते हैं क्योंकि बहुत कम ग्रीनहाउस गैस और हानिकारक कार्बन उत्सर्जन होते हैं और उनके गैर-बायोडिग्रेडेबल समकक्षों की तुलना में उत्पादन के लिए आधे से भी कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इसलिए समान मात्रा में ऊर्जा का उपयोग करके बायोडिग्रेडेबल पैकेजिंग और बायोडिग्रेडेबल बैग की दोगुनी मात्रा बनाना संभव है। बायोडिग्रेडेबल उत्पादों को रीसायकल करना आसान होता है और गैर विषैले होते हैं। सामान्य प्लास्टिक हानिकारक उप-उत्पादों और रसायनों से भरे होते हैं जो उनके क्षरण की प्रक्रिया के दौरान निकलते हैं। बायोडिग्रेडेबल उत्पाद पूरी तरह से सुरक्षित हैं और इनमें कोई रसायन या विष नहीं है और विदेशी तेल पर निर्भरता कम करते हैं।

बायोप्लास्टिक्स का अनुप्रयोग: बायोप्लास्टिक्स का उपयोग पैकेजिंग और खानपान की वस्तुओं (क्रॉकरी, बर्तन, कटलरी, स्ट्रॉ और कटोरे) जैसी डिस्पोजेबल वस्तुओं के लिए किया जाता है और अक्सर बैग, ट्रे, फलों, सब्जियों, अंडे और मांस के कंटेनर, शीतल पेय और डेयरी उत्पादों के लिए बोतलों के लिए भी उपयोग किया जाता है। फलों और सब्जियों के लिए ब्लिस्टर फॉयल। गैर-डिस्पोजेबल अनुप्रयोगों में मोबाइल फोन केसिंग, कालीन फाइबर, और कार अंदरूनी, ईंधन लाइन और प्लास्टिक पाइप अनुप्रयोग शामिल हैं और नए इलेक्ट्रोएक्टिव बायोप्लास्टिक्स विकसित किए जा रहे हैं जिनका उपयोग विद्युत प्रवाह में किया जा सकता है। पीएलए से बने चिकित्सा प्रत्यारोपण जो शरीर में घुल जाते हैं रोगियों को एक दूसरे ऑपरेशन से बचाते हैं। कृषि के लिए कम्पोस्टेबल मल्च फिल्म जो पहले से ही अक्सर स्टार्च पॉलिमर से निर्मित होती है को उपयोग के बाद एकत्र नहीं करना पड़ता है और इसे खेतों में छोड़ा जा सकता है।

भारत में बायोप्लास्टिक्स: जागरूकता का स्तर बहुत कम होने के साथ भारत में बायोप्लास्टिक्स बाजार अभी भी एक बहुत ही प्रारंभिक अवस्था में है। 2008 में बायोप्लास्टिक्स की कुल बाजार मात्रा 5 मिलियन टन पारंपरिक पेट्रोलियम आधारित प्लास्टिक की वास्तविक मांग की तुलना में 30 टन थी। बायोप्लास्टिक्स का बाजार 2009 और 2015 के बीच 44.8% की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (सीएजीआर) से बढ़ेगा। भविष्य में इस तरह की विकास दर के साथ-साथ बायोप्लास्टिक्स की मांग में धीरे-धीरे वृद्धि के साथ-साथ भारतीय उपभोक्ताओं की जागरूकता स्तर बढ़ने की उम्मीद है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

हाई टेक नर्सरी प्रबंधन : बागवानी फसलों में आय बढ़ाने का एक तरीका

शशि भूषण सिंह, सुधांशु सिंह
संदीप कुमार यादव (परास्नातक छात्र) कृषि विभाग, इन्टीग्रल विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
डॉ. अभिनीत सहायक प्राध्यापक, कृषि विभाग, इन्टीग्रल विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
धीर प्रताप शोध छात्र, कृषि विभाग, इन्टीग्रल विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

बागवानी में उच्च तकनीक नर्सरी प्रबंधन ने फसलों की उत्पादकता और गुणवत्ता को बढ़ाने में क्रांति ला दी है। इस आधुनिक दृष्टिकोण ने किसानों को पारंपरिक तरीकों से अधिक लाभ कमाने में मदद की है। इस लेख में, हम उच्च तकनीक नर्सरी प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं और इसके लाभों पर चर्चा करेंगे, जिससे किसानों की आय बढ़ाने में मदद मिलती है।

उच्च तकनीक नर्सरी का परिचय: उच्च तकनीक नर्सरी प्रबंधन में नवीनतम तकनीकी उपकरणों और तकनीकों का उपयोग किया जाता है। इसमें स्वचालित सिंचाई प्रणाली, तापमान नियंत्रण, नमी मॉनिटरिंग, और उन्नत बीज संवर्धन तकनीकें शामिल होती हैं। इन तकनीकों के माध्यम से नर्सरी में पौधों की वृद्धि और विकास को नियंत्रित और अनुकूलित किया जा सकता है।

स्वचालित सिंचाई प्रणाली: स्वचालित सिंचाई प्रणाली उच्च तकनीक नर्सरी प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण घटक है। यह प्रणाली मिट्टी की नमी और पर्यावरणीय स्थितियों के अनुसार पौधों को सटीक मात्रा में पानी प्रदान करती है। इससे जल संसाधनों का प्रभावी उपयोग होता है और पौधों को उचित समय पर पानी मिलता है, जिससे उनकी वृद्धि में सुधार होता है।

तापमान नियंत्रण: उच्च तकनीक नर्सरी में तापमान नियंत्रण हेतु उन्नत तकनीकें उपयोग की जाती हैं। तापमान नियंत्रित ग्रीनहाउस और पॉलीहाउस में पौधों के लिए आदर्श तापमान बनाए रखा जाता है। इससे पौधों की वृद्धि और विकास में तेजी आती है और रोगों का खतरा कम हो जाता है।

नमी मॉनिटरिंग: नमी मॉनिटरिंग के लिए उच्च तकनीक नर्सरी में सेंसर और मॉनिटरिंग उपकरणों का उपयोग किया जाता है। ये उपकरण मिट्टी और वायु की नमी का निरंतर परीक्षण करते हैं और आवश्यकतानुसार नमी की आपूर्ति करते हैं। इससे पौधों की जड़ें स्वस्थ रहती हैं और उनकी वृद्धि में सुधार होता है।

उन्नत बीज संवर्धन तकनीकें: उच्च तकनीक नर्सरी में उन्नत बीज संवर्धन तकनीकों का उपयोग किया जाता है, जैसे कि ऊतक संवर्धन, माइक्रोप्रोपेगेशन, और हाइड्रोपोनिक्स। इन तकनीकों के माध्यम से उच्च गुणवत्ता वाले बीज और पौधे उत्पन्न किए जाते हैं, जो अधिक उत्पादक और रोग प्रतिरोधी होते हैं।

उच्च तकनीक नर्सरी प्रबंधन के लाभ

उत्पादकता में वृद्धि: उच्च तकनीक नर्सरी प्रबंधन से बागवानी फसलों की उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। स्वचालित सिंचाई, तापमान नियंत्रण, और नमी मॉनिटरिंग जैसी तकनीकों के उपयोग से पौधों की वृद्धि और विकास को अनुकूलित किया जाता है। इससे फसल की पैदावार बढ़ती है और गुणवत्ता में सुधार होता है।

बेहतर गुणवत्ता वाली फसलें: उच्च तकनीक नर्सरी प्रबंधन के माध्यम से उत्पन्न फसलें उच्च गुणवत्ता वाली होती हैं। उन्नत बीज संवर्धन तकनीकों के उपयोग से उत्पादित पौधे अधिक रोग प्रतिरोधी और पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं। इससे बाजार में उनकी मांग बढ़ती है और किसानों को उच्च मूल्य प्राप्त होता है।

जल संसाधनों का प्रभावी उपयोग: स्वचालित सिंचाई प्रणाली और नमी मॉनिटरिंग के उपयोग से जल संसाधनों का प्रभावी और स्थायी उपयोग संभव होता है। इससे जल की बर्बादी कम होती है और पर्यावरण संरक्षण में मदद मिलती है। साथ ही, पौधों को सही समय पर सही मात्रा में पानी मिलने से उनकी वृद्धि में सुधार होता है।

लागत में कमी: उच्च तकनीक नर्सरी प्रबंधन से उत्पादन लागत में कमी आती है। स्वचालित उपकरणों और तकनीकों के उपयोग से श्रम की आवश्यकता कम होती है और संसाधनों का प्रभावी उपयोग होता है। इससे किसानों की उत्पादन लागत में कमी आती है और लाभ बढ़ता है।

उच्च तकनीक नर्सरी प्रबंधन की चुनौतियाँ

उच्च प्रारंभिक निवेश: उच्च तकनीक नर्सरी प्रबंधन में प्रारंभिक निवेश अधिक होता है। स्वचालित उपकरणों, तापमान नियंत्रित ग्रीनहाउस, और उन्नत बीज संवर्धन तकनीकों की स्थापना में उच्च लागत आती है। हालांकि, लंबे समय में इन तकनीकों से मिलने वाले लाभ प्रारंभिक निवेश को सही ठहराते हैं।

तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता: उच्च तकनीक नर्सरी प्रबंधन हेतु तकनीकी ज्ञान और कौशल की आवश्यकता होती है। किसानों को इन तकनीकों का उपयोग करने और उनके रखरखाव हेतु प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। इसके लिए सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों द्वारा प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जा सकते हैं।

निरंतर निगरानी और रख-रखाव: उच्च तकनीक नर्सरी प्रबंधन में निरंतर निगरानी और रखरखाव की आवश्यकता होती है। स्वचालित उपकरणों और सेंसरों का सही तरीके से काम करना सुनिश्चित करने के लिए नियमित रूप से परीक्षण और मरम्मत की आवश्यकता होती है। इससे समय और संसाधनों की अतिरिक्त मांग होती है।

उच्च तकनीक नर्सरी प्रबंधन का भविष्य

नवाचार और अनुसंधान: उच्च तकनीक नर्सरी प्रबंधन के क्षेत्र में निरंतर नवाचार और अनुसंधान की आवश्यकता है। नई तकनीकों और उपकरणों के विकास से इस क्षेत्र में और भी सुधार संभव है। अनुसंधान के माध्यम से उन्नत बीज संवर्धन तकनीकों और स्वचालित प्रणालियों को और अधिक प्रभावी और किफायती बनाया जा सकता है।

सरकारी सहयोग: उच्च तकनीक नर्सरी प्रबंधन को बढ़ावा देने हेतु सरकार का सहयोग आवश्यक है। सरकारी सब्सिडी, अनुदान, और प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से किसानों को इन तकनीकों को अपनाने में सहायता प्रदान की जा सकती है। इसके अलावा, अनुसंधान और विकास हेतु सरकारी फंडिंग भी महत्वपूर्ण है।

किसानों की भागीदारी: उच्च तकनीक नर्सरी प्रबंधन के सफल कार्यान्वयन के लिए किसानों की भागीदारी महत्वपूर्ण है। किसानों को इन तकनीकों के लाभों के बारे में जागरूक किया जाना चाहिए और उन्हें प्रशिक्षण और संसाधन उपलब्ध कराए जाने चाहिए। सामूहिक प्रयासों के माध्यम से उच्च तकनीक नर्सरी प्रबंधन को व्यापक रूप से अपनाया जा सकता है।

निष्कर्ष: उच्च तकनीक नर्सरी प्रबंधन ने बागवानी फसलों की उत्पादकता और गुणवत्ता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्वचालित सिंचाई प्रणाली, तापमान नियंत्रण, नमी मॉनिटरिंग, और उन्नत बीज संवर्धन तकनीकों के उपयोग से किसानों की आय में वृद्धि हुई है। हालांकि, उच्च प्रारंभिक निवेश और तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता जैसी चुनौतियाँ भी हैं, लेकिन इन पर काबू पाकर उच्च तकनीक नर्सरी प्रबंधन को सफलतापूर्वक लागू किया जा सकता है। सरकारी सहयोग, नवाचार, और अनुसंधान के माध्यम से इस क्षेत्र में और भी सुधार संभव है। उच्च तकनीक नर्सरी प्रबंधन का भविष्य उज्ज्वल है और यह किसानों की आय बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण तरीका बन सकता है।

02/203-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

औषधीय गुणों का भंडार है आंवला

आरती गौतम शोध छात्रा, खाद्य विभाग एवं पोषण, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कानपुर

तृप्ति आनंद काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एनाटॉमी विभाग, वाराणसी (उ.प्र.)

आयुर्वेद में आंवला को पोषक तत्वों का पावर हाउस कहा जाता है। वर्षों से अचार, मुरब्बा, कैंडी, जूस और च्यवनप्राश जैसे कई रूप में आंवला का सेवन किया जाता रहा है। रोजाना आंवला खाने वाले लोगों को कई तरह के रोगों का खतरा कम होता है, विशेषकर आंवले का सेवन सुबह खाली पेट करना सबसे लाभदायक माना जाता है। सर्दियों का मौसम अपने साथ कई बीमारियां लेकर आता है। मौसमी फल खाने से हर तरह की बीमारियों से बचा जा सकता है। ऐसा ही एक मौसमी फल है आंवला। सर्दियों में आंवला खाना शरीर के लिए बहुत फायदेमंद होता है।

आंवला खाने के फायदे

1.विटामिन C से भरपूर- आंवला खाने की सबसे पहली वजह यही है कि इसमें खूब सारा विटामिन C होता है. 100 ग्राम आंवले में संतरे की तुलना में 10 से 30 गुना अधिक विटामिन C होता है. हर दिन आंवला खाने से दिल की बीमारियों से बचा जा सकता है। आंवले में पाया जाने वाला विटामिन C एथेरोस्कलेरोसिस जैसी बीमारी से बचाता है।

इम्यून सिस्टम के लिए फायदेमंद

सर्दियों का मौसम इम्यून सिस्टम के लिए काफी कठिन होता है। आंवला में पाए जाने वाले विटामिन्स कोल्ड और वायरस से लड़ने के लिए इम्यून सिस्टम को मजबूत बनाते हैं जिससे शरीर इन बीमारियों से बचा रहता है।

मुंह के छालों को करे दूर

अगर आपके मुंह में अक्सर छाले हो जाते हैं तो आंवले से बेहतर इलाज और कुछ नहीं हो सकता। गर्म पानी में आंवले का जूस मिलाकर इसे हर दिन पिएं। हर दिन कच्चा आंवला खाने या इसका जूस पीने से दांत और मसूड़े मजबूत होते हैं इसके अलावा ये सांसों की दुर्गंध भी दूर करता है।

ब्लड शुगर को करे कंट्रोल

आंवला में क्रोमियम नाम का तत्व पाया जाता है जो ब्लड शुगर को कंट्रोल करने में काफी उपयोगी होता है। डायबिटीज़ के मरीजों के लिए आंवला एक बेहतरीन फल है, हालांकि, आंवले में बहुत सारा फाइबर होता है इसलिए इसे बहुत ज्यादा मात्रा में नहीं खाना चाहिए।

मुंहासों की समस्या दूर करता है

आंवले में खून को साफ करने के गुण होते हैं,इसकी वजह से मुहांसों की समस्या दूर होती है और त्वचा बेदाग और चमकदार बनती है। आंवले में पाया जाने वाला विटामिन ष्ट स्किन को हाइड्रेटेड रखता है और त्वचा की सूजन कम करता है। ये त्वचा की खराब हो चुकी कोशिकाओं में नई जान डालता है।

रूसी और सफेद बालों की समस्या करे दूर

हर दिन आंवला हेयर क्लींजर से मसाज करने से रूसी की समस्या दूर होती है और बालों में चमक आती है। अगर आपके बाल रूखे हों या समय से पहले सफेद हो रहे हों तो आंवले का तेल बालों में लगाएं। इसके अलावा, आंवला में मौजूद पॉलीफेनोल्स शरीर को ऑक्सीडेटिव स्ट्रेस और क्रोनिक स्वास्थ्य समस्याओं से बचाने में सहायक है। सर्दियों में आंवला आसानी से मिल जाता है इसका कच्चा सेवन तो करे ही साथ ही आचार, मुरब्बा, सुपारी, कैंडी , जूस आदि बनाकर अन्य ऋतुओं में भी इसका सेवन कर स्वाद के साथ स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

।। श्री गणेशाय नम ।।

फक्कड़ बाबा
खाद बीज भण्डार

खाद बीज एवं कृषि कीटनाशक दवाईयों के विक्रेता

सदर बाजार गंज मुरार, ग्वालियर, मोबा. 9926988124, 9340964335

01/2023-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

डिजिटल डिटॉक्स क्रांति: हाइपर कनेक्टेड दुनिया से आंतरिक शांति की ओर

सोमदत्त त्रिपाठी (शोध छात्र)
भानु प्रकाश मिश्रा प्रोफेसर एवं विभाग प्रमुख
बृजेश कुमार गुप्ता (सहायक प्राध्यापक)
कृषि प्रसार विभाग, बांदा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वद्यालय बांदा (उ.प्र.)
अंजलि पांडेय कृषि प्रसार विभाग, शोध छात्रा, सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय मोदीपुरम मेरठ (उ.प्र.)

परिचय

आज के युग में, तकनीक हमारे जीवन का एक अभिन्न हिस्सा बन चुकी है। स्मार्टफोन, लैपटॉप, टैबलेट और अन्य डिजिटल उपकरण हमारे दैनिक कार्यों का हिस्सा हैं। हम हर समय ऑनलाइन रहते हैं, सोशल मीडिया पर सक्रिय होते हैं, और सूचनाओं के प्रवाह में बह जाते हैं। इस अत्यधिक कनेक्टेड जीवनशैली ने हमें हाइपर कनेक्टेड दुनिया का हिस्सा बना दिया है, लेकिन इसके परिणाम स्वरूप हम आंतरिक शांति और मानसिक संतुलन से दूर होते जा रहे हैं। इसी समस्या के समाधान के रूप में डिजिटल डिटॉक्स क्रांति की शुरुआत हुई है, जो हमें हाइपर कनेक्टेड दुनिया से दूर कर आंतरिक शांति की ओर ले जाती है।

हाइपर कनेक्टेड जीवनशैली का प्रभाव

जब हम दिन-रात डिजिटल उपकरणों से जुड़े रहते हैं, तो हमारा मस्तिष्क लगातार सक्रिय रहता है। सूचनाओं का असीमित प्रवाह, सोशल मीडिया की लत, और हर समय ऑनलाइन रहने की आवश्यकता हमें मानसिक रूप से थका देती है। इस हाइपर कनेक्टेड जीवनशैली के कारण तनाव, चिंता, अवसाद, और नींद की समस्याएँ आम हो गई हैं। इसके अलावा, डिजिटल उपकरणों के अत्यधिक उपयोग से हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक रिश्ते भी प्रभावित हो रहे हैं। हम परिवार और दोस्तों के साथ समय बिताने के बजाय, अपने फोन और अन्य उपकरणों में खोए रहते हैं।

डिजिटल डिटॉक्स क्रांतिः क्या और क्यों?

डिजिटल डिटॉक्स का मतलब है, कुछ समय के लिए सभी डिजिटल उपकरणों से दूर रहना और अपने आप को फिर से केंद्रित करना। यह एक प्रकार की क्रांति है, जो हमें हाइपर कनेक्टेड दुनिया से मुक्त कर, आंतरिक शांति और मानसिक स्वास्थ्य की दिशा में ले जाती है। इस क्रांति का उद्देश्य है, हमारी मानसिक और शारीरिक सेहत को बेहतर बनाना और हमें अपने जीवन में संतुलन बनाए रखने में मदद करना।

डिजिटल डिटॉक्स के दौरान, हम अपने स्मार्टफोन, सोशल मीडिया, और अन्य डिजिटल उपकरणों से ब्रेक लेते हैं। यह समय हमें खुद को, अपने परिवार को, और अपने शौकों को समर्पित करने का अवसर देता है। इसके अलावा, यह हमें अपने विचारों को स्पष्ट करने, अपने लक्ष्यों पर ध्यान केंद्रित करने, और अपने जीवन में सकारात्मक बदलाव लाने में मदद करता है।

डिजिटल डिटॉक्स के लाभ

मानसिक शांतिः डिजिटल डिटॉक्स से हमारा मस्तिष्क आराम पाता है और मानसिक शांति की अनुभूति होती है। जब हम लगातार डिजिटल उपकरणों का उपयोग करते हैं, तो हमारा मस्तिष्क थक जाता है और तनाव बढ़ जाता है। डिजिटल डिटॉक्स से इस तनाव को कम किया जा सकता है।

बेहतर नींदः रात में डिजिटल उपकरणों का उपयोग हमारी नींद को प्रभावित करता है। डिजिटल डिटॉक्स से नींद की गुणवत्ता में सुधार होता है, जिससे हम ताजगी और ऊर्जा से भरपूर महसूस करते हैं।

संबंधों में सुधारः डिजिटल उपकरणों से दूरी बनाकर हम अपने परिवार और दोस्तों के साथ अधिक समय बिता सकते हैं। इससे हमारे संबंध मजबूत होते हैं और हम अपने प्रियजनों के साथ गहरे संबंध बना सकते हैं।

खुद से जुड़ावः डिजिटल डिटॉक्स हमें अपने आप से जुड़ने का अवसर देता है। हम अपने शौकों, रुचियों, और सपनों को पुनः खोज सकते हैं, जो हमारे जीवन को अधिक अर्थपूर्ण बनाते हैं।

डिजिटल डिटॉक्स के लिए सुझाव

डिजिटल उपकरणों का सीमित उपयोगः हर दिन कुछ घंटे डिजिटल उपकरणों से दूर रहने का प्रयास करें। इस समय का उपयोग ध्यान, योग, या पढ़ाई जैसे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने वाली गतिविधियों में करें।

सप्ताहांत में डिजिटल ब्रेकः सप्ताहांत पर डिजिटल डिटॉक्स का अभ्यास करें। अपने फोन को बंद करें, सोशल मीडिया से लॉगआउट करें, और अपने परिवार और दोस्तों के साथ गुणवत्तापूर्ण समय बिताएं।

रात में डिजिटल डिवाइस बंद करें: सोने से एक घंटे पहले सभी डिजिटल उपकरणों को बंद कर दें। इससे आपकी नींद की गुणवत्ता में सुधार होगा और आप सुबह ताजगी महसूस करेंगे।

निष्कर्ष

डिजिटल डिटॉक्स क्रांति न केवल हमारे मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि यह हमें हाइपर कनेक्टेड दुनिया से दूर कर आंतरिक शांति की ओर ले जाती है। इस क्रांति के माध्यम से, हम अपने जीवन में संतुलन बना सकते हैं, अपने रिश्तों को सुधार सकते हैं, और खुद से जुड़ने का अवसर प्राप्त कर सकते हैं। इस डिजिटल युग में, जहां हर चीज़ तेजी से बदल रही है, डिजिटल डिटॉक्स हमें एक स्थिर और शांतिपूर्ण जीवन की ओर ले जाने का रास्ता दिखाता है।

नन्दिनी इन्टरप्राइजेज खाद बीज एवं कीटनाशक

प्रो. रामदीन कुशवाह
84610-11860
हमारे यहां सभी प्रकार के खाद बीज एवं कीटनाशक दवाईयां उचित रेट पर मिलती हैं

पता: चीनोर रोड, छीमक, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
04/2023-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

आंवला की किस्में, मौसम और उत्पादन

राधा (शोध छात्रा) फल विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्रदेव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, (उ.प्र.)

डॉ.विजय चंद्र सह-प्राध्यापक (कृषि विज्ञान केन्द्र) पशु विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्रदेव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या

डॉ. अतुल यादव सहायक प्राध्यापक फल विज्ञान विभाग,आचार्य नरेंद्रदेव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

आंवला की किस्में

आंवले की तीन मुख्य किस्में हैं । तीन उप-किस्में हैं बनारसी आंवला, फ्रांसिस आंवला और चैकया आंवला। आंवले की इन किस्मों में से प्रत्येक की अपनी खूबियाँ और खामियाँ हैं। इसकी सीमाओं को ध्यान में रखते हुए, नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय ने व्यावसायिक खेती के लिए भारत में आंवले की कई किस्में पेश की है, जैसे कृष्णा, कंचन, नरेंद्र आंवला-6, नरेंद्र आंवला-7 और नरेंद्र आंवला-10, नरेंद्र आंवला20, नरेंद्र आंवला25, नरेंद्र आंवला26.

बनारसी आंवला

बनारसी आंवला अन्य किस्मों की तुलना में जल्दी पकता है। यह पहले खिलता है और परिदृश्य में जल्दी फल देता है। बनारसी आंवला किस्म की कमी यह है कि इसमें फल गिरने की संभावना होती है, जिसके परिणामस्वरूप यह खाली छतरी बन जाती है। इसके अलावा, आंवला की अन्य किस्मों की तुलना में बनारसी आंवला की शेल्फ लाइफ कम होती है। यह किस्म पाक अनुप्रयोगों के लिए पसंद नहीं की जाती है और इसे ज़्यादातर कैंडी बनाने के लिए पसंद किया जाता है।

फ्रांसिस आंवला

फ्रांसिस सबसे पसंदीदा आंवला किस्म है । फ्रांसिस एक उच्च उपज देने वाली किस्म है जो बार-बार फल देती है। इसमें अधिक लचीले गुण हैं। आंवले की इस किस्म का उपयोग गूदे और आंवला अर्क के निर्माण में किया जाता है। इस किस्म का उपयोग आंवला कैंडी, पाउडर और जूस के निर्माण में भी किया जाता है।

च्यकाय आंवला

वैकल्पिक वर्षों के दौरान, आंवले की चाइकाया किस्म भारी फसल देने के लिए प्रवण होती है। फल अक्सर रेशेदार होते हैं और अन्य आंवला फलों की तुलना में आकार में छोटे होते हैं। दूसरी ओर, कुछ चाइकाया किस्में अलग-अलग विशेषताएं हैं। उदाहरण के लिए, कंचन एनए-4 किस्म चाइकाया किस्म की तुलना में बड़े फल देती है। एनए-4 किस्में अधिक रेशेदार होती हैं और इनका उपयोग पाक अनुप्रयोगों के बजाय विनिर्माण अनुप्रयोगों में किया जाता है। एनए-6 किस्में कम रेशे वाले फल देती हैं और पेड़ पर भारी फल लगते हैं।

आंवले की ये किस्में कैंडी और प्रिजर्व बनाने के लिए सबसे उपयुक्त हैं।

आंवला की अन्य विकसित किस्में

आंवला की किस्में एवं विशेषताएं

कृष्णा (एनए-4): यह आंवला किस्म चकैया सीडलिंग चयन है। फल मध्यम आकार के होते हैं और इनमें फाइबर की मात्रा अच्छी होती है। यह लुगदी निर्माण उद्योग के लिए उपयुक्त है। यह मौसम के मध्य (नवंबर के मध्य से दिसंबर के मध्य तक) में पकता है।

कृष्णा (एनए-5): यह बनारसी सीडलिंग चयन है। फल बड़े, त्रिकोणीय और शंक्राकार होते हैं, जिनकी चिकनी त्वचा पीले-हरे से लेकर खूबानी पीले रंग की होती है, जिसके खुले हिस्से पर लाल निशान होता है। गुलाबी हरे रंग का गूदा कम रेशेदार और कसैला होता है।यह एक ऐसी किस्म है जो शीघ्र परिपक्व हो जाती है।

नरेन्द्र आंवला-6: यह चकैया किस्म का चयन है। फल चमकीले और चमकदार, मध्यम से बड़े, चपटे और कम फाइबर वाले होते हैं। यह मौसम के मध्य (नवंबर के मध्य से दिसंबर के मध्य तक) में पकता है।

नरेन्द्र आंवला-7: यह फ्रांसिस सीडलिंग चयन है। फलों का आकार मध्यम से लेकर बड़े तक होता है, जिसका शीर्ष शंक्राकार होता है। फाइबर की मात्रा ह्न-6 से अधिक होती है। यह एक ऐसी किस्म है जो मौसम के मध्य में खिलती है।

नरेन्द्र आंवला-10: यह बनारसी किस्म से एक यादृच्छिक अंकुर चयन है। फल आकर्षक होते हैं, जिनका आकार मध्यम से लेकर बड़ा होता है और चपटा गोलाकार आकार होता है। छिलका खुरदरा और गुलाबी रंग के साथ पीले-हरे रंग का होता है। मांस हल्के हरे रंग का होता है, और रेशे की मात्रा अधिक होती है। यह एक छोटी परिपक्वता अवधि वाली किस्म है।

नरेंद्र आंवला 20: जिनकी चिकनी त्वचा पीले-हरे से लेकर खूबानी पीले रंग की होती है, जिसके खुले हिस्से पर लाल निशान होता है। गुलाबी हरे रंग का गूदा कम रेशेदार और कसैला होता है।

नरेंद्र आंवला 25, नरेंद्र आंवला 26: हाल के दिनों में नरेंद्र आंवला 25 ,नरेंद्र आंवला 26 को विकसित किया गया है. इस प्रजाति का आंवला का साइज बड़ा होता है जिसका वजन 50 ग्राम से ज्यादा होता है. यह आंवला कैंडी बनाने में सबसे ज्यादा प्रयोग किया जाता है.

आंवला का मौसम: आंवला एक उपोष्णकटिबंधीय फसल है और शुष्क जलवायु को तरजीह देती है। आंवले के लिए रोपण का मौसम आमतौर पर जुलाई-अगस्त के बीच होता है। आंवले की कटाई का मौसम सितंबर के मध्य से दिसंबर के अंत तक होता है। सर्दियों और बरसात के मौसम में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। गर्मी के मौसम के 15-20 दिनों में सिंचाई की जाती है। आंवला का मौसम भारत के सभी राज्यों में एक ही महीने में होता है।

आंवला उत्पादन

आंवला का सबसे बड़ा उत्पादक उत्तर प्रदेश है, जिसकी उत्पादन में 40न हिस्सेदारी है। उत्तर प्रदेश ने 380 हज़ार मीट्रिक टन आंवला का उत्पादन किया। तमिलनाडु 30% हिस्सेदारी के साथ दूसरा सबसे बड़ा आंवला उत्पादक राज्य है , जिसके बाद क्रमशः 18% हिस्सेदारी के साथ मध्य प्रदेश दूसरे स्थान पर है। 95 हज़ार हेक्टेयर क्षेत्र में, भारत हर साल लगभग 1080 हज़ार मीट्रिक टन आंवला का उत्पादन करता है। भारत जापान, नेपाल, बांग्लादेश, मलेशिया, संयुक्त राज्य अमेरिका और जर्मनी जैसे देशों को आंवला और आंवला प्यूरी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा निर्यात करता है। आंवला अर्क के निर्यात की बहुत संभावना है क्योंकि इसका उपयोग सौंदर्य प्रसाधन और दवा उद्योग में किया जाता है।

राजस्थान आंवला के सबसे बड़े उत्पादकों में से एक है। अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा कृषि पर निर्भर है। राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड के अनुसार, राजस्थान ने दुनिया में कुल 13750 मीट्रिक टन आंवला उत्पादन में से 999 मीट्रिक टन आंवला का उत्पादन किया । आंवला की कटाई का चरम मौसम सितंबर के मध्य में शुरू होता है और दिसंबर में समाप्त होता है। चूँकि आंवला की खेती बंजर और शुष्क भूमि में की जा सकती है, इसलिए आंवला उत्पादन राजस्थान के किसानों के लिए आय का एक प्रमुख स्रोत बन गया है।

पोषक तत्वों से भरपूर है आंवला

आंवला पोषक तत्वों से भरपूर माना गया है। आंवला में विटामिन की भरपूर मात्रा पाई जाती है। इसके अलावा फाइबर, फोलेट, एंटीऑक्सीडेंट, फास्फोरस ,आयरन ,ओमेगा 3,मैग्नीशियम और कैल्सियम भी पाया जाता है। आंवला के सेवन से त्वचा संबंधी समस्याएं जैसे झुरिया कील मुंहासे में लाभ होता है। इसके अलावा आंवला के नियमित प्रयोग से आंखों की रोशनी भी बढ़ जाती है। आंवला के उपयोग से बालों का टूटना काम हो जाता है। इसके साथ ही यूरिन इन्फेक्शन में आंवला का सेवन काफी लाभकारी है। खाली पेट आंवला के सेवन से शरीर डिटॉक्स होता है। इसके साथ ही रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

धान की रोपाई के बाद एकीकृत कीट प्रबंधन

सुधांशु सिंह, शशि भूषण सिंह
संदीप कुमार यादव (परास्नातक छात्र) कृषि विभाग, इन्टीग्रल विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
शशांक सिंह शोध छात्र, कृषि विभाग, सैम हिगिनबॉटम कृषि प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ. अभिनीत (सहायक प्राध्यापक) कृषि विभाग, इन्टीग्रल विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
धीर प्रताप (शोध छात्र) कृषि विभाग, इन्टीग्रल विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) कीट नियंत्रण के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण है जो पर्यावरण पर न्यूनतम प्रभाव के साथ स्वस्थ फसलें उगाने के लिए विभिन्न प्रबंधन रणनीतियों और प्रथाओं को जोड़ता है। धान की खेती के लिए, विशेष रूप से रोपाई के बाद, आईपीएम टिकाऊ उत्पादन सुनिश्चित करने और रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह लेख रोपाई के बाद धान के लिए आईपीएम के सिद्धांतों, रणनीतियों और लाभों पर प्रकाश डालता है।

एकीकृत कीट प्रबंधन का परिचय: एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) कीट नियंत्रण के लिए एक पारिस्थितिक दृष्टिकोण है जो आर्थिक और पर्यावरणीय रूप से टिकाऊ तरीके से कीट आबादी का प्रबंधन करने के लिए कई रणनीतियों को एकीकृत करता है। यह मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण की रक्षा करते हुए कीट क्षति को कम करने के लिए जैविक, सांस्कृतिक, भौतिक और रासायनिक उपकरणों के उपयोग पर जोर देता है। धान की खेती में, आईपीएम का लक्ष्य कीटों के दबाव को कम करना और फसल के लचीलेपन को बढ़ाना है, खासकर रोपाई के बाद की संवेदनशील अवधि के दौरान।

धान की खेती में आईपीएम का महत्व: धान के खेत कीटों, बीमारियों और खरपतवार सहित विभिन्न प्रकार के कीटों के प्रति संवेदनशील होते हैं, जो उपज और गुणवत्ता पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकते हैं। रोपाई के बाद की अवधि विशेष रूप से महत्वपूर्ण होती है क्योंकि धान के युवा पौधे कीटों के हमले के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। धान की खेती में आईपीएम लागू करने से कई लाभ मिलते हैं:

1. **पर्यावरण संरक्षण:** आईपीएम रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता को कम करता है, जिससे पर्यावरण प्रदूषण कम होता है और जैव विविधता का संरक्षण होता है।

2. **आर्थिक दक्षता:** कई कीट नियंत्रण रणनीतियों को एकीकृत करके, आईपीएम कीट प्रबंधन की लागत को कम करता है और लाभप्रदता बढ़ाता है।

3. **मानव स्वास्थ्य:** रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग कम करने से कृषि श्रमिकों और उपभोक्ताओं को संभावित स्वास्थ्य जोखिमों से बचाया जा सकता है।

धान की रोपाई के बाद आईपीएम के प्रमुख घटक

1.**निगरानी और पहचान:** प्रभावी आईपीएम की शुरुआत नियमित निगरानी और कीट प्रजातियों की सटीक पहचान से होती है। किसानों को कीटों की उपस्थिति के शुरुआती लक्षणों का पता लगाने और जनसंख्या स्तर का आकलन करने के लिए लगातार क्षेत्र निरीक्षण करना चाहिए। फेरोमोन जाल, प्रकाश जाल और चिपचिपा जाल जैसे उपकरण कीड़ों की आबादी की निगरानी में सहायता कर सकते हैं। उचित नियंत्रण उपायों के चयन के लिए मौजूद विशिष्ट कीटों की पहचान करना महत्वपूर्ण है।

सांस्कृतिक प्रथाएं: सांस्कृतिक प्रथाओं में कीटों की घटनाओं को कम करने के लिए कृषि तकनीकों को संशोधित करना शामिल है। धान के लिए कुछ प्रमुख सांस्कृतिक प्रथाओं में शामिल हैं:

फसल चक्र: धान को गैर-मेजबान फसलों के साथ चक्रित करने से कीट जीवन चक्र टूट सकता है और कीट का दबाव कम हो सकता है।

खेत की स्वच्छता: खेत से पौधों के अवशेष और खरपतवार हटाने से कीटों का निवास स्थान कम हो जाता है और कीटों के प्रकोप का खतरा कम हो जाता है।

जल प्रबंधन: उचित जल स्तर और जल निकासी को बनाए रखने सहित उचित जल प्रबंधन, चावल के पानी के घुन और घोंघे जैसे कीटों की घटनाओं को कम कर सकता है।

जैविक नियंत्रण: जैविक नियंत्रण में कीटों की आबादी को प्रबंधित करने के लिए प्राकृतिक शत्रुओं का उपयोग शामिल है। शिकारी, परजीवी और रोगजनक जैसे लाभकारी जीव पर्यावरण को नुकसान पहुंचाए बिना कीटों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित कर सकते हैं। **धान के कीटों के लिए जैविक नियंत्रण एजेंटों के कुछ उदाहरणों में शामिल हैं:**

शिकारी कीड़े: लेडीबग, मकड़ियाँ और ड्रैगनफ्लाइज़ हानिकारक कीड़ों को खाते हैं।

परजीवी **ततैया:** कुछ ततैया कीटों के लार्वा में या उन पर अपने अंडे देती हैं, अंततः उन्हें मार देती हैं।

माइक्रोबियल एजेंट: बैक्टीरिया और फंगल रोगजनकों का उपयोग कीटों की आबादी को संक्रमित करने और मारने के लिए किया जा सकता है।

यांत्रिक और भौतिक नियंत्रण: यांत्रिक और भौतिक नियंत्रण विधियों में कीटों के प्रबंधन के लिए भौतिक बाधाओं, जालों और मैन्युअल निष्कासन का उपयोग शामिल है। उदाहरणों में शामिल:

हाथ से चुनना: छोटे संक्रमणों के लिए पौधों से कीटों को मैन्युअल रूप से हटाना प्रभावी हो सकता है।

चिपचिपा जाल: चिपचिपा जाल प्लैन्थोपर और लीफहॉपर जैसे उड़ने वाले कीड़ों को पकड़ सकता है।

रासायनिक नियंत्रण: जबकि रासायनिक नियंत्रण आईपीएम का एक घटक है, इसका उपयोग अंतिम उपाय के रूप में किया जाता है जब अन्य तरीके अपर्याप्त होते हैं। कीटनाशकों का चयन और अनुप्रयोग कीट निगरानी डेटा पर आधारित होना चाहिए, और व्यापक स्पेक्ट्रम कीटनाशकों का उपयोग कम से कम किया जाना चाहिए। जब रासायनिक नियंत्रण आवश्यक हो, तो निम्नलिखित सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए:

चयनात्मक कीटनाशक: ऐसे कीटनाशकों का उपयोग करें जो लाभकारी जीवों को नुकसान पहुंचाए बिना विशिष्ट कीटों को लक्षित करते हैं।

उचित समय: अधिकतम प्रभावशीलता के लिए कीट के जीवन चक्र के सबसे कमजोर चरण में कीटनाशकों का प्रयोग करें।

सुरक्षित अनुप्रयोग: पर्यावरणीय और मानव स्वास्थ्य जोखिमों को कम करने हेतु अनुशंसित खुराक और सुरक्षा दिशानिर्देशों का पालन करें।

विशिष्ट धान कीटों के लिए आईपीएम का कार्यान्वयन

1.**धान का तना छेदक:** धान के खेतों में धान के तना छेदक सबसे विनाशकारी कीटों में से एक हैं। तना बेधक के लिए प्रभावी आईपीएम रणनीतियों में शामिल हैं:

निगरानी: वयस्क कीट आबादी की निगरानी करने और हस्तक्षेप हेतु इष्टतम समय निर्धारित करने हेतु फेरोमोन जाल का उपयोग करें।

सांस्कृतिक प्रथाएँ: बेधक जीवन चक्र को बाधित करने के लिए क्षेत्र की स्वच्छता और फसल चक्र को अपनाएँ।

जैविक नियंत्रण: ट्राइकोग्रामा ततैया जैसे प्राकृतिक शत्रुओं का परिचय दें, जो छेदक अंडों को परजीवी बनाते हैं।

रासायनिक नियंत्रण: निगरानी डेटा और कीट सीमा के आधार पर कीटनाशकों को चुनिंदा रूप से लागू करें।

2. **भूरा ताना छेदक**-भूरा ताना छेदक सीधे भोजन और वायरल रोगों के संचरण के माध्यम से महत्वपूर्ण नुकसान पहुंचा सकते हैं। बीपीएच के लिए आईपीएम रणनीतियों में शामिल हैं:

निगरानी: बीपीएच आबादी की निगरानी के लिए प्रकाश जाल और फील्ड स्काउटिंग का उपयोग करें।

सांस्कृतिक प्रथाएँ: उचित जल प्रबंधन लागू करें और अति-निषेचन से बचें, जो बीपीएच संक्रमण को बढ़ा सकता है।

जैविक नियंत्रण: मकड़ियों और मिरिड बग जैसे प्राकृतिक शिकारियों की उपस्थिति को प्रोत्साहित करें।

रासायनिक नियंत्रण: प्रतिरोध विकास को रोकने हेतु चयनात्मक कीटनाशकों का उपयोग करें और बार-बार उपयोग से बचें।

2.**धान ब्लास्ट रोग:** मैग्नापोर्थे ओराइजी कवक के कारण होने वाला राइस ब्लास्ट, धान के खेतों में एक प्रमुख बीमारी है। धान ब्लास्ट के लिए आईपीएम रणनीतियों में शामिल हैं:

प्रतिरोधी किस्में: ब्लास्ट-प्रतिरोधी चावल किस्मों का रोपण एक प्रभावी निवारक उपाय है।

सांस्कृतिक प्रथाएँ: बीमारी के प्रसार को कम करने के लिए उचित क्षेत्र की स्वच्छता बनाए रखें और जल स्तर का प्रबंधन करें।

जैविक नियंत्रण: ट्राइकोडर्मा एसपीपी जैसे जैव नियंत्रण एजेंटों का उपयोग करें। फंगल विकास को दबाने के लिए।

रासायनिक नियंत्रण: कवकनाशी को विवेकपूर्ण ढंग से लागू करें और प्रतिरोध को रोकने के लिए कार्रवाई के विभिन्न तरीकों के बीच घुमाएँ।

चुनौतियाँ और भविष्य की दिशाएं: धान की खेती में आईपीएम को लागू करने में कई चुनौतियाँ शामिल हैं:

धान की खेती में आईपीएम के लिए भविष्य की दिशाओं में शामिल हैं:

अनुसंधान और विकास: आईपीएम को आगे बढ़ाने के लिए कीट जीव विज्ञान, प्राकृतिक दुश्मनों और टिकाऊ नियंत्रण विधियों पर निरंतर शोध महत्वपूर्ण है।

तकनीकी नवाचार: रिमोट सेंसिंग, ड्रोन और सटीक कृषि जैसी उन्नत तकनीकों को एकीकृत करने से कीट निगरानी और नियंत्रण को बढ़ाया जा सकता है।

निष्कर्ष: एकीकृत कीट प्रबंधन एक समग्र दृष्टिकोण है जो रोपाई के बाद धान के खेतों में कीटों के प्रबंधन के लिए स्थायी समाधान प्रदान करता है। निगरानी, ??सांस्कृतिक प्रथाओं, जैविक नियंत्रण, यांत्रिक तरीकों और चयनात्मक रासायनिक उपयोग के संयोजन से, आईपीएम पर्यावरण की रक्षा, फसल स्वास्थ्य में सुधार और आर्थिक व्यवहार्यता सुनिश्चित करने में मदद करता है। दीर्घकालिक कृषि स्थिरता और खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने के लिए धान की खेती में आईपीएम को अपनाना आवश्यक है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

कार्बन खेती : कृषि और पर्यावरण में एक क्रांतिकारी परिवर्तन

योगेश कुमार (शोध छात्र), प्रसार शिक्षा विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

स्मिता सिंह (शोध छात्रा), प्रसार शिक्षा विभाग

डॉ. एन.आर. मीना (सहायक प्राध्यापक) प्रसार शिक्षा विभाग

डॉ. आर. के. दोहरे (प्राध्यापक) प्रसार शिक्षा विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज अयोध्या (उ.प्र.)

आज की तेजी से बदलती दुनिया में, जहां पर्यावरणीय चुनौतियाँ बढ़ रही हैं, हमें ऐसी नीतियों और प्रथाओं की आवश्यकता है जो न केवल हमारी कृषि को उन्नत करें बल्कि हमारे पर्यावरण को भी संरक्षित करें। इसी संदर्भ में 'कार्बन खेती' एक महत्वपूर्ण समाधान के रूप में उभर रही है।

कार्बन खेती क्या है?

परिचय: कार्बन खेती (Carbon Farming) एक उभरती हुई कृषि पद्धति है जो जलवायु परिवर्तन के खिलाफ लड़ाई में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इसका मुख्य उद्देश्य वातावरण से कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) को हटाकर उसे मिट्टी में स्थायी रूप से संग्रहित करना है। यह पद्धति न केवल ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करती है बल्कि मिट्टी की उर्वरता और जल धारण क्षमता को भी बढ़ाती है।

आइए, कार्बन खेती के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से चर्चा करें।

कार्बन खेती का उद्देश्य: कार्बन खेती का उद्देश्य पारिस्थितिकी तंत्र के विभिन्न भागों, जैसे मिट्टी, फसल की जड़ें, लकड़ी और पत्तियों में कार्बन को पकड़ना और संग्रहीत करना है। कार्बन पृथक्करण की एक विधि के रूप में, यह मिट्टी को एक शक्तिशाली कार्बन सिंक में बदलने हेतु कृषि प्रथाओं को समायोजित करने पर ध्यान केंद्रित करता है, जिससे कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन को कम करने में मदद मिलती है।

कृषि पृथक्करण प्रथाओं के लाभ

मिट्टी की गुणवत्ता: बेहतर प्रथाओं से मिट्टी का स्वास्थ्य और उर्वरता बढ़ती है।

वायु गुणवत्ता: कार्बन को अलग करके, ये प्रथाएँ स्वच्छ हवा में योगदान करती हैं।

जल गुणवत्ता: बेहतर मिट्टी की संरचना जल प्रतिधारण में सुधार कर सकती है और अपवाह को कम कर सकती है, जिससे पानी की गुणवत्ता बेहतर होती है।

वन्यजीव लाभ: स्वस्थ पारिस्थितिकी तंत्र विविध वन्यजीव आबादी का समर्थन करते हैं।

खाद्य उत्पादन: मिट्टी में कार्बन की वृद्धि से फसल की पैदावार बढ़ सकती है।

क्षरित फसल भूमि पर फसल की पैदावार पर प्रभाव

गेहूँ: मिट्टी में कार्बन की एक टन वृद्धि से पैदावार में 20-40 किलोग्राम/हेक्टेयर की वृद्धि हो सकती है।

मक्का: पैदावार में 10-20 किग्रा./हे. की वृद्धि हो सकती है।

लोबिया: पैदावार में 0.5-1 किग्रा./हे. की वृद्धि हो सकती है।

इन प्रथाओं के माध्यम से, कार्बन खेती न केवल जलवायु परिवर्तन को संबोधित करती है, बल्कि कृषि उत्पादकता और पर्यावरणीय स्वास्थ्य का भी समर्थन करती है।

कार्बन खेती के सिद्धांत: कार्बन खेती में कई तकनीकों और पद्धतियों का उपयोग किया जाता है, जिनमें प्रमुख हैं:

कवर क्रॉपिंग: कवर क्रॉपिंग में मुख्य फसल के बीच में दूसरी फसल लगाई जाती है, जो मिट्टी को संरक्षित करती है और उसमें कार्बन की मात्रा को बढ़ाती है। उदाहरण के लिए, सरसों, मटर, और तिपतिया घास जैसी फसलें कवर क्रॉपिंग में उपयोग की जाती हैं। ये फसलें मिट्टी की संरचना में सुधार करती हैं और नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाती हैं।

नो-टिल खेती: नो-टिल खेती में मिट्टी को कम से कम खुरचा जाता है, जिससे मिट्टी की संरचना और उसमें निहित कार्बन को वायुमंडल में जाने से रोका जा सके। इस पद्धति से मिट्टी की नमी को बनाए रखने में भी मदद मिलती है।

जैविक खाद और कम्पोस्टिंग: जैविक खाद और कम्पोस्ट का उपयोग करके मिट्टी की उर्वरता बढ़ाई जाती है और उसमें कार्बन की मात्रा को स्थिर रखा जाता है। यह पद्धति मिट्टी के सूक्ष्मजीवों के लिए खाद्य स्रोत के रूप में कार्य करती है और मिट्टी की संरचना में सुधार करती है।

एग्रोफोरेस्ट्री: एग्रोफोरेस्ट्री में खेती के साथ-साथ पेड़-पौधों का रोपण किया जाता है। यह पद्धति न केवल कार्बन को संग्रहित करती है बल्कि जैव विविधता को भी बढ़ावा देती है।

कार्बन पृथक्करण के लिए कृषि विधियाँ: फसलें विकास के दौरान CO_2 को अवशोषित करती हैं और कटाई के बाद इसे छोड़ती हैं। कृषि कार्बन निष्कासन का लक्ष्य कार्बन चक्र में फसल की भूमिका का उपयोग करके मिट्टी में कार्बन को स्थायी रूप से एकत्रित करना है। यह खेती के तरीकों के माध्यम से प्राप्त किया जाता है जो बायोमास को मिट्टी में वापस लौटाते हैं और ऐसी स्थितियाँ बनाते हैं जो पौधों के भीतर कार्बन को स्थिर करती हैं। **मुख्य विधियों में शामिल हैं:**

आवरण फसलें: रोपण के मौसमों के बीच घास और खरपतवार जैसी आवरण फसलें लगाने से मिट्टी की रक्षा और उसे समृद्ध बनाने में मदद मिलती है।

प्रबंधित पशुधन चराई: छोटी अवधि के लिए छोटे-छोटे खेतों में पशुधन को केंद्रित करने से समान चराई, गहरी जड़ें विकसित होना और खुरों द्वारा प्राकृतिक मिट्टी की जुताई को बढ़ावा मिलता है जो पुरानी घास और खाद को मिट्टी में एकीकृत करता है।

मिट्टी को ढंकना: घास या मृत वनस्पतियों से नंगे खेतों को ढंकना मिट्टी को सूरज से बचाता है, पानी को बनाए रखने में सुधार करता है और कार्बन को पकड़ने वाले सूक्ष्मजीवों को आकर्षित करता है।

क्षरित भूमि को पुनःस्थापित करना: क्षरित, सीमांत और परित्यक्त भूमि को पुनःस्थापित करने से कार्बन उत्सर्जन धीमा हो जाता है और कृषि या अन्य उपयोगों के लिए भूमि को पुनर्जीवित किया जाता है। कम मिट्टी कार्बन पूल वाली क्षरित भूमि में कार्बन भंडारण की उच्च क्षमता होती है, जिसे वनस्पति के उचित चयन से और बढ़ाया जा सकता है।

ये विधियाँ सामूहिक रूप से मिट्टी के स्वास्थ्य को बढ़ाती हैं, जल प्रतिधारण में सुधार करती हैं, और कृषि सेटिंग्स में दीर्घकालिक कार्बन भंडारण की क्षमता को बढ़ाती हैं।

लाभ

जलवायु परिवर्तन का मुकाबला: कार्बन खेती वातावरण से CO_2 को हटाकर जलवायु परिवर्तन को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने का एक प्रभावी तरीका है।

मिट्टी की उर्वरता: कार्बन खेती से मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है, जिससे फसल उत्पादन में सुधार होता है। मिट्टी में कार्बन की मात्रा बढ़ने से उसकी संरचना और जल धारण क्षमता में भी सुधार होता है।

जल संरक्षण: कवर क्रॉपिंग और नो-टिल खेती से जल संरक्षण होता है, जिससे सूखे के समय में भी फसलों की पैदावार बनी रहती है। यह पद्धति मिट्टी की नमी को बनाए रखने में मदद करती है।

जैव विविधता: कार्बन खेती से मिट्टी में जैव विविधता बढ़ती है जिससे संपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र का स्वास्थ्य सुधरता है। विभिन्न प्रकार के पौधे और सूक्ष्मजीव मिट्टी की संरचना में सुधार करते हैं और उसकी उर्वरता को बढ़ाते हैं।

चुनौतियां

प्रारंभिक निवेश: कार्बन खेती की तकनीकों को अपनाने के लिए प्रारंभिक निवेश की आवश्यकता होती है, जो कुछ किसानों के लिए चुनौतीपूर्ण हो सकता है।

जागरूकता की कमी: किसानों के बीच इस पद्धति के लाभों के प्रति जागरूकता की कमी है। इसे बढ़ावा देने के लिए शिक्षा और प्रशिक्षण कार्यक्रमों की आवश्यकता है।

नीति समर्थन की आवश्यकता: कार्बन खेती को प्रोत्साहित करने के लिए सरकारी नीतियों और सब्सिडी की आवश्यकता है। नीति निर्माताओं को इस पद्धति के लाभों को समझकर उचित नीतियों का निर्माण करना चाहिए।

भविष्य की संभावनाएं: कार्बन खेती के क्षेत्र में कई संभावनाएँ हैं जो इसे और अधिक प्रभावी और व्यापक रूप से स्वीकार्य बना सकती हैं:

तकनीकी उन्नति: ड्रोन, सैटेलाइट इमेजिंग, और IoT (Internet of Things) जैसी तकनीकों का उपयोग करके कार्बन खेती को और अधिक सटीक और प्रभावी बनाया जा सकता है।

शोध और विकास: कार्बन खेती के क्षेत्र में और अधिक शोध और विकास की आवश्यकता है ताकि नई और उन्नत तकनीकों का विकास हो सके। इससे किसानों को बेहतर समाधान प्राप्त हो सकते हैं।

नीति और समर्थन: कार्बन खेती को बढ़ावा देने के लिए सरकारी स्तर पर नीतियों और कार्यक्रमों की आवश्यकता है। इसके लिए सब्सिडी, कर छूट, और अन्य प्रोत्साहन दिए जा सकते हैं।

वैश्विक सहयोग: कार्बन खेती को वैश्विक स्तर पर बढ़ावा देने के लिए अंतरराष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता है। विभिन्न देशों के बीच ज्ञान और तकनीक का आदान-प्रदान करके इस पद्धति को और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष: कार्बन खेती एक स्थायी और प्रभावी कृषि पद्धति है जो जलवायु परिवर्तन के खिलाफ लड़ाई में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। यह न केवल पर्यावरण के लिए बल्कि किसानों के लिए भी लाभदायक है। जागरूकता बढ़ाने और नीति समर्थन के माध्यम से इस पद्धति को व्यापक रूप से अपनाने की आवश्यकता है। उचित शिक्षा, प्रशिक्षण, और सरकारी समर्थन से कार्बन खेती को सफलतापूर्वक लागू किया जा सकता है और इसके लाभों को व्यापक स्तर पर प्राप्त किया जा सकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

सर्वश्रेष्ठ आहार विकल्प: वेगन दूध व उत्पाद

आशीष कुमार श्रीवास्तव
अमित कुमार केशरी
कृषि विज्ञान केन्द्र, कौशाम्बी (उ.प्र.)

वेगन सोसाइटी की स्थापना करीब 80 साल पहले हुई , लेकिन शाकाहारवाद इससे भी पहले से चला आ रहा है । हालाकि 1940 के दशक तक शाकाहारवाद शब्द का प्रयोग नहीं किया गया था, लोगों द्वारा पशु उत्पादों से परहेज करने के तथ्य 2000 साल से भी पहले के है। 500 ईसा पूर्व में यूनानी दार्शनिक और गणितज्ञ पाइथागोरस ने सभी प्रजातियो के बीच परोपकार को बढ़ावा दिया और शाकाहारी आहार का पालन किया।

लगभग उसी समय भगवांन बुद्ध भी अपने अनुयायीयो के साथ भी शाकाहार की बात करते थे और इस विश्वास को बढ़ावा दिया कि मनुष्यों को अन्य जानवरों को पीड़ा नहीं पहुचानी चाहिए। उपनिषदों और ऋग्वेद में भी शाकाहारी को प्रोत्साहित किया गया था । ईसाई समुदाय ने सिखाया है कि बाइबल में कहा गया है कि परमेश्वर ने पौधों, बीजों और फलों को मानव भोजन के रूप में बनाया है, और इसलिए मानव आहार पूरी तरह से पौधों पर आधारित होना चाहिए ।

नवम्बर 1944 में डोनाल्ड व्हाट्सन नामक एक ब्रिटिश लकड़ी के कारीगर और उसकी पत्नी डोरोथी ने अपने आहार और जीवनशैली पर चर्चा करने के लिये पाच अन्य गैर डेरी शाकाहारियो के साथ बैठक की। इन सातो को एक नए आन्दोलन का संस्थापक माना गया। उन्होने डेरी बैन , विटन और बेनेवोर जैसे कई लेबल पर विचार किया। अंत में उन्होने अपने आहार और जीवनशैली को संदर्भित करने के लिए शाकाहारी शब्द को अपनाया यहाँ से शाकाहारी आंदोलन शुरू हुआ, जब डोनाल्ड वॉटसन ने यू के में पहली वेगन सोसाइटी का गठन किया ।

हालाकि यह शब्द 1944 में आया था, लेकिन 1949 तक लेस्ली जे. क्रॉस ने परिभाषा के लिये सुझाव दिया कि मनुष्य द्वारा शोषण से जानवरों की मुक्ति का सिद्धान्त 1988 से परिष्कृत और

आधिकारिक परिभाषा-शाकाहारवाद एक दर्शन और जीवन जीने का तरीका है जो भोजन, कपडे या किसी अन्य उदेश्य के लिये जानवरों का शोषण और क्रूरता के सभी रूपों से बाहर करने का प्रयास करता है और विस्तार से जानवरों, मनुष्यों और पर्यावरण के लाभ के लिये पशु मुक्त विकल्पों के विकास और उपयोग को बढ़ावा देता है।

अगले दशकों में चिकित्सकों सहित वैज्ञानिकों और डॉक्टरों के एक समूह द्वारा शोध में देखा गया और तर्क दिया कि पशु वसा और पशु प्रोटीन पर आधारित आहार स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है । 2003 में दो प्रमुख उत्तरी अमेरिकी आहार विशेषज्ञ संघों ने संकेत दिया कि अच्छी तरह से योजनाबद्ध शाकाहारी आहार सभी जीवन चरणों के लिए उपयुक्त है । 2010 में शाकाहारी आहार तेजी से मुख्य धारा बन गया । रेस्तरां ने अपने मेनू पर शाकाहारी वस्तुओं को चिह्नित करना शुरू कर दिया और सुपरमार्केट ने शाकाहारी संसाधित भोजन के अपने चयन में सुधार किया । हाल के वर्षों में शाकाहारी स्कूल भोजन परोसने वाले स्कूलों की वृद्धि में वृद्धि हुई है । 2016 तक, विश्व स्तर पर शाकाहारी उपभोक्ताओं का सबसे बड़ा हिस्सा वर्तमान में एशिया में रहता है, जिसमें 9त्न प्रतिशत लोग शाकाहारी आहार का पालन करते हैं ।

भारत में शाकाहार का इतिहास

शाकाहार का पता भारतीय उपमहाद्वीप में 3300-1300 ईसा पूर्व में सिंधु घाटी सभ्यता से लगाया जा सकता है, विशेष रूप से उत्तरी और पश्चिमी प्राचीन भारत में । प्रारंभिक शाकाहारियों में भारतीय दार्शनिक जैसे पार्श्वनाथ, महावीर, आचार्य कुंडकुंड, उमास्वती, समंतभद्र और वल्लुवर शामिल थे । भारतीय सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य और अशोक, उन्होंने लगभग निश्चित रूप से अपने अनुयायियों को सेम खाने और ऊनी वस्त्र पहनने से मना कर दिया। उनके तर्क स्वास्थ्य, आत्माओं के प्रवास, पशु कल्याण पर आधारित थे । भारत की शाकाहारी सोसायटी की स्थापना 1957 में हुई थी । सोसाइटी की स्थापना को चिह्नित करने के लिए नवंबर को विश्व शाकाहारी महीना मानती है ।

शाकाहारी दूध क्या है?

दूध पशु-आधारित है, जबकि शाकाहारी दूध पौधे-आधारित स्रोतों से आता है और उन लोगों के लिए लोकप्रिय विकल्प है जो पौधे आधारित आहार खाते हैं, स्वस्थ खाना चाहते हैं और पर्यावरण की मदद करना चाहते हैं । शाकाहारी दूध विभिन्न प्रकार के पौधों जैसे अनाज (मक्का, बाजरा, जई, चावल, राई, गेहूं), फलियां (सोया, मटर, मूंगफली), नट्स (बादाम, काजू, पिस्ता, अखरोट, हेज़लनट), बीज (चिया बीज, सन बीज, कद्दू के बीज, तिल के बीज, सूरजमुखी के बीज), फल (नारियल, केला), कंद (आलू) और छद्म अनाज (एक प्रकार का अनाज, क्विनोआ, ऐमारैंथ) से बनाया जा सकता है ।

शाकाहारी दूध का उपयोग और चुनते का कारण

पौधे आधारित दूध को वीगन मिल्क कहते है । पशु आधारित दूध पर शाकाहारी दूध या पौधे आधारित आहार का चयन और उपयोग करने के कई कारण हैं ।

1. **पशु दूध की तुलना में कम चीनी-** शाकाहारी दूध में मीठा और बिना मीठा किस्म मिल सकती है । गाय के दूध में प्रति कप 15 ग्राम चीनी होती है । मटर दूध, बादाम दूध और सोया दूध में आमतौर पर शून्य या एक ग्राम चीनी होती है । चावल का दूध 10 ग्राम प्रति कप और नारियल का दूध 7 ग्राम की मात्रा पाई जाती है ।

2. **पाचन संबंधी समस्याएं-** लैक्टोज असहिष्णु गुण के कारण पौधे आधारित दूध आमतौर पर पेट पर कोमल होता है । हालांकि, कई शाकाहारी दूध- चावल का दूध, सोया दूध, बादाम का दूध, सन दूध और नारियल का दूध सभी बेहतरीन विकल्प हैं यदि आपको पाचन संबंधी समस्याएं हैं ।

3. **शाकाहारी दूध में अधिक कैल्शियम** - सोया दूध, बादाम दूध, नारियल का दूध और मटर का दूध सभी कैल्शियम के आपके दैनिक मूल्य का 45त्न हो सकते हैं । गाय के दूध की तुलना में आमतौर पर कैल्शियम के आपके दैनिक मूल्य का केवल 30% होता है ।

4. **शाकाहारी दूध के साथ हार्मोन से बचें-** गाय में दूध हार्मोन इंसुलिन बढ़ा सकते हैं और इंसुलिन, विकास कारक जैसे IGF-1 को ट्रिगर कर सकते हैं । हार्मोन की मात्रा में वृद्धि से कैंसर, मुँहासे, मधुमेह और अन्य स्वास्थ्य समस्याओं जैसे कई मुद्दे हो सकते हैं ।

5. **कम कैलोरी-** गाय के दूध में प्रति कप लगभग 100 कैलोरी होती है, बादाम का दूध, नारियल का दूध,

सोया दूध, और मटर का दूध सभी में प्रति कप 30 से 80 कैलोरी होती है । कुछ प्रकार के शाकाहारी दूध अधिक कैलोरी के साथ होते हैं जैसे जई का दूध और चावल का दूध ।

6. वजन घटाने के लिए वीगन मिल्क- कैलोरी में कमी (कैलोरी की सबसे छोटी मात्रा- बादाम और काजू दूध) के कारण, शाकाहारी दूध वजन घटाने में मदद करता है ।

7. उच्च प्रोटीन मूल्य- मटर के दूध में 8 ग्राम / कप का सबसे अधिक प्रोटीन होता है । सोया दूध 7 ग्राम / कप आता है, जबकि जई और भांग का दूध जिसमें लगभग 4 ग्राम / कप प्रोटीन होता है ।

8. शाकाहारी दूध गाय के दूध के समान है- पोषण मूल्य के संदर्भ में सोया और मटर का दूध गाय के दूध के समान होता है । जिसमें काफी कम वसा और कार्बोहाइड्रेट होते हैं। जई के दूध का स्वाद अक्सर गाय के दूध के समान होता है।

9. वीगन डाइट, सब्सटिट्यूशन और मीट एनालॉग्स- वीगन डाइट अनाज, बीज, फलियां, फल, सब्जियां और नट्स पर आधारित होती है । शाकाहारी और शाकाहारी आहार के बीच मुख्य अंतर यह है कि शाकाहारी डेयरी उत्पादों, अंडे और शहद को बाहर करते हैं । शाकाहारी मांस विकल्प आमतौर पर शाकाहारी सॉसेज और वेजी बर्गर जैसे रूपों में बेचे जाते हैं, ये सभी सोयाबीन, गेहूं, दाल, चावल, मशरूम या सब्जियों से बने होते हैं । गाय या बकरी के दूध के स्थान पर सोया, बादाम, काजू, अनाज (जई, सन और चावल), भांग और नारियल के दूध का उपयोग किया जाता है । गाय के दूध (8 ग्राम/240 मिलीलीटर प्रोटीन) की तुलना में सोया दूध में (7 ग्राम/240 मिलीलीटर) प्रोटीन होता है । बादाम का दूध आहार ऊर्जा, कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन में कम होता है। शुरुवाती शिशु अवस्था पर सोया दूध का उपयोग शिशुओं के लिए स्तन के दूध के प्रतिस्थापन के रूप में नहीं किया जाना चाहिए । जिन शिशुओं को स्तनपान नहीं कराया जाता है, उन्हें वाणिज्यिक शिशु फार्मूला खिलाया जा सकता है । जो आमतौर पर गाय के दूध या सोया पर आधारित होता है । उत्तरार्द्ध को सोया आधारित शिशु फार्मूला (SBIF) के रूप में जाना जाता है । दही और क्रीम उत्पादों को पौधे आधारित उत्पादों से बदला जा सकता है । दही और क्रीम उत्पादों को सोया दही जैसे पौधे आधारित उत्पादों से बदला जा सकता है । केक, कुकीज़ और डोनट्स की तैयारी में, बेकिंग पाउडर, नरम टोफू, मसला हुआ आलू, केले, अलसी के बीजो को अंडे के प्रतिस्थापन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है जो मांस नहीं खाते हैं, वो मशरूम (बटन, ओएस्टर और सीप) खा सकते हैं।

10. शाकाहारी कपड़े चमड़े के विकल्प हैं- कई कपड़ों के उत्पाद जानवरों जैसे रेशम, ऊन (भेड़ ऊन, कश्मीरी, अंगोरा, मोहायर), फर, पंख, मोती, जानवरों की खाल, सांप की खाल आदि से बने होते हैं । नैतिक

शाकाहारी लोग गैर-पशु व्युत्पन्न सामग्री जैसे लिनन, कपास, कैनवास, पॉलिएस्टर, रबर और विनाइल से बने कपड़े और सहायक उपकरण पहन सकते हैं। चमड़े के विकल्प कॉर्क, पाइन (अनानास), कैक्टस और मशरूम, चमड़े जैसे हो सकते है।

11.शाकाहारी प्रसाधन-नैतिक शाकाहारी व्यक्तिगत देखभाल उत्पादों और पशु उत्पादों वाले घरेलू क्लीनर को शाकाहारी उत्पादों के साथ बदल देते हैं । साबुन आमतौर पर चर्बी (पशु वसा) से बनाया जाता है। शाकाहारी भी समुद्री स्पंज का उपयोग करने से बचते हैं ।

12. उत्पादों द्वारा कीट- शहद, रेशम और अन्य कीट शाकाहारी लोगों के लिए उपयुक्त उत्पाद है, लेकिन कुछ शाकाहारी समूह कीट उत्पादों के बारे में असहमत हैं । उनका मानना है कि कीट का शोषण और वह वाणिज्यिक संचालन कीड़ों को नुकसान पहुंचा सकता है और यहां तक कि मार भी सकता है ।

13. शाकाहारी/ जैविक कृषि- शाकाहारी जैविक कृषि खाद्य उत्पाद न्यूनतम पशु आदानों वाली फसलें हैं । शाकाहारी जैविक कृषि पशु-मुक्त कृषि का रूप है । पशु-मुक्त खेती का अर्थ है पशु उत्पादों या रक्त भोजन, मछली संवर्धन उत्पादों, हड्डी का चूरा, मल या अन्य पशु-मूल पदार्थ जैसे उप-उत्पादों का उपयोग नहीं किया जाता है । क्योंकि इन सामग्रियों को या तो सीधे जानवरों को नुकसान पहुंचाने के रूप में देखा जाता है या जानवरों के शोषण और परिणामी पीड़ा से जुड़ा हुआ है। जैविक खेती की तुलना में शाकाहारी जैविक खेती बहुत कम है। मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने के लिए हरी खाद, मल्चिंग, हरा अपशिष्ट, वनस्पति खाद और खनिजों का उपयोग करके शाकाहारी जैविक कृषि को किया जा सकता है । कुछ शाकाहारी माली, इसे मानव मूत्र के साथ पूरक कर सकते हैं, जो कम्पोस्ट शौचालयों से उत्पादित नाइट्रोजन प्रदान करता है।

भारत में शाकाहारी प्रमाणन और प्रचार

भारत में शाकाहार में एक समृद्ध सांस्कृतिक विरासत वाला देश है, जो शाकाहार की अवधारणा को धीरे-धीरे कर्षण प्रदान कर रही है। उपभोक्ता और उत्पादक दोनों उस प्रमाणन के लिए कई उद्देश्यों के रूप में कार्य करते हैं। उपभोक्ता प्रमाणित शाकाहारी उत्पादों को चुनने के लिए स्पष्टता, पारदर्शिता और नैतिक जानकारी (मुक्त प्रथाओं और पशु पीड़ा को कम करने में योगदान) प्रदान करते हैं। निर्माता न केवल नैतिक अखंडता का सूचक हैं, बल्कि एक रणनीतिक व्यावसायिक निर्णय भी हैं, एक बढ़ते बाजार खंड में टैप करते हैं और प्रतियोगियों से खुद को अलग करते हैं । इसके अलावा प्रमाणन ब्रांड की विश्वसनीयता और विश्वास को बढ़ाता है और बढ़ावा देता है ।

वेगन सोसाइटी ऑफ इंडिया (वीएसआई) सबसे प्रमुख प्रमाणन निकायों में से एक है, जो शाकाहार को बढ़ावा देने और विभिन्न श्रेणियों में शाकाहारी उत्पादों के लिए प्रमाणन प्रदान करने के लिए काम करता है । भारतीय सात्विक परिषद शाकाहारी समाज के उपभोक्ताओं के लिए शाकाहारी क्रांति लाना चाहती है और उपभोक्ताओं को खाद्य जनित बीमारी और मृत्यु के जोखिम से बचाने के लिए एक सुरक्षित और स्वच्छ वातावरण, नए रोजगार के अवसर और आय के साथ कट्टर वैदिक प्राचीन सिद्धांतों पर विकसित करना चाहती है । सात्विक शाकाहारी अनुरूपता मूल्यांकन कार्यक्रम और दुनिया में कहीं भी अनुरूपता सुनिश्चित करने के लिए घटक अनुसंधान, आपूर्ति श्रृंखला जांच, निगरानी नमूनाकरण, साइट पर निरीक्षण, प्रयोगशाला परीक्षण, और निष्कर्षों द्वारा निर्धारित अनुवर्ती कार्रवाई के आधार पर सात्विक शाकाहारी प्रमाणन का कार्य करती है ।

शाकाहारी प्रमाणन मानदंड- शाकाहारी प्रमाणन के मानदंड प्रमाणन एजेंसी के आधार पर भिन्न होते हैं। हालाँकि, दिशानिर्देश आमतौर पर निम्नलिखित पहलुओं पर किया जाता है-

1- संघटक संसाधन और सत्यापन
2. उत्पाद विकास और परीक्षण
3. विनिर्माण प्रक्रियाएं और उपकरण
4. पैकेजिंग और लेबलिंग

प्रमाणन एजेंसियां यह सुनिश्चित करने के लिए उत्पाद की घटक सूची की जांच करेंगी कि कोई पशु-व्युत्पन्न सामग्री या उप-उत्पाद उपयोग तो नहीं किया जाता । पशु परीक्षण, पशु-व्युत्पन्न उपकरण और कच्चे माल की अनुपस्थिति का भी मूल्यांकन किया जाता है ।

भारत में शाकाहारी प्रमाणन एजेंसियां- भारत में कई निकाय शाकाहारी प्रमाणन प्रदान करते हैं। कुछ प्रसिद्ध एजेंसियों में शामिल हैं-

प्रमाणन इकाई	एजेंसी की वेबसाइट
शाकाहारी भारत आंदोलन (वीआईएम)	https://www.veganindiamovement.org/
इंडिया ऑर्गेनिक	https://indiaorganic.org/
वेजिटेरियन सोसाइटी ऑफ इंडिया (वीएसआई)	https://www.vsi.org.in/
भारतीय सात्विक परिषद	info@sattvikcouncilofindia.org

आपके प्रमाणन की विश्वसनीयता को सुनिश्चित करने के लिए उद्योग में मान्यता प्राप्त और सम्मानित प्रमाणन एजेंसी चुनना महत्वपूर्ण है ।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

ड्रैगन फ्रूट की खेती मे लगने वाले प्रमुख रोगों का प्रभावी प्रबंधन

शेफाली चौधरी कृषि संकाय शोध छात्रा (सब्जी विज्ञान) उद्यान विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या

डॉ. संदीप कुमार, सत्येन्द्र कुमार

अवध नारायण (सहायक अध्यापक) बुद्ध महाविद्यालय, रतसिया कोठी, देवरिया

परिचय

ड्रैगन फ्रूट, जिसे वैज्ञानिक रूप से हिलोसेरियस प्रजातियां के नाम से जाना जाता है, एक उष्णकटिबंधीय फल है जिसने अपनी अनूठी उपस्थिति और स्वादिष्ट स्वाद के लिए लोकप्रियता हासिल की है। ड्रैगन फ्रूट एक प्रकार का कैक्टस का फल है जो दक्षिण अमेरिका के शुष्क क्षेत्रों में उगता है। आमतौर पर ड्रैगन फ्रूट का छिलका लाल होता है और गूदा लाल या सफेद होता है। ड्रैगन फ्रूट का इस्तेमाल कभी-कभी दवा के रूप में भी किया जाता है। यह फल भोजन के रूप में भी लोकप्रिय है। ड्रैगन फ्रूट का उपयोग मधुमेह, प्रीडायबिटीज, उच्च रक्तचाप, उच्च कोलेस्ट्रॉल, मोटापा और कई अन्य स्थितियों के लिए किया जाता है। ड्रैगन फ्रूट को कच्चा खाया जा सकता है या वाइन, जूस, स्प्रेड या डेसर्ट में बनाया जा सकता है। फूलों को कभी-कभी सब्जी के रूप में खाया जाता है या चाय में बनाया जाता है। हालाँकि, सभी फसलों की तरह, ड्रैगन फ्रूट के पौधे भी विभिन्न बीमारियों के प्रति संवेदनशील होते हैं जो उपज और गुणवत्ता को काफी कम कर देते हैं। ड्रैगन फ्रूट की सफल खेती के लिए प्रभावी रोग प्रबंधन आवश्यक है।

ड्रैगन फ्रूट में लगनेवाले प्रमुख रोग

1. तने पर बना लाल /भूरे धब्बे:

ड्रैगन फ्रूट के तने पर लाल भूरे धब्बे बनने की वजह तना पीला हो जाता है। इस रोग का रोगकारक Botryosphaeria dothidea नामक एक कवक है जिसके परिणामस्वरूप ड्रैगन फ्रूट्स के तनों पर धब्बेदार लाल / भूरे रंग के घाव हो जाते हैं। कभी-कभी वे 'बैल की आंख' के निशाने की तरह दिखते हैं और कभी-कभी कई धब्बे एक साथ मिल सकते हैं। यह रोग संक्रमित शाखा पर पीलेपन के रूप में शुरू होता है जो ऊपर तक बढ़ता है। यह रोग प्रूनिंग शीयर और अन्य औजारों से फैलता है। अधिकांश रोग अस्वच्छ बागवानी , विशेष रूप से अस्वच्छ उपकरणों के माध्यम से फैलते हैं। उपयोग के बीच अपने उपकरणों को जीवाणुरहित करना महत्वपूर्ण है ताकि बीमारी न फैले। उपकरण को अल्कोहल, हाइड्रोजन पेरोक्साइड या बहुत हल्के ब्लीचिंग पाउडर के पानी के घोल से निष्फल किया जा सकता है। कुछ रोग एक संक्रमित पौधे और एक असंक्रमित पौधे के बीच संपर्क के माध्यम से फैलते हैं, इसलिए रोपण के बीच कुछ जगह छोड़ दें। इस कवकजनित रोग के उपचार के लिए तांबेयुक्त कवकनाशी यानी ब्लाइटॉक्स 50 की 2 ग्राम मात्रा को

प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करके इस रोग की उग्रता को कम किया जा सकता है।

2. एन्थ्रेक्नोज (कोलेटोट्राइकम प्रजातियां): एन्थ्रेक्नोज मुख्य रूप से ड्रैगन फ्रूट के तनों और फलों को प्रभावित करता है। इससे फल की त्वचा पर काले, धंसे हुए घाव हो जाते हैं, जो फैलते हैं और फल सड़ने का कारण बनते हैं। तने के घावों के कारण मुरझाने और सड़न होती है। एन्थ्रेक्नोज का प्रबंधन करने के लिए, संक्रमित पौधों के हिस्सों को हटाकर और नष्ट करके अच्छी स्वच्छता का प्रयोग करें। फूल आने और फल लगने की अवस्था के दौरान निवारक उपाय के रूप में फफूंदनाशकों का प्रयोग करें।

3. बैक्टीरियल सॉफ्ट रोट (इरविनिया प्रजातियां): बैक्टीरियल सॉफ्ट रॉट ड्रैगन फ्रूट के ऊतकों के तेजी से क्षय का कारण बनता है, जिसके परिणामस्वरूप दुर्गंध और गूदेदार बनावट होती है। संक्रमित फल विपणन योग्य नहीं रह जाते हैं।

इस रोग के प्रबंधन के लिए पौधों के बीच उचित दूरी बनाए रखें और जलभराव की स्थिति को रोकने के लिए अत्यधिक सिंचाई से बचें, जो बैक्टीरिया के विकास को बढ़ावा देती है। तांबा आधारित जीवाणुनाशकों का उपयोग नियंत्रण उपाय के रूप में किया जा सकता है।

4. फ्यूसेरियम विल्ट (फ्यूसेरियम ऑक्सीस्पोरम): फ्यूजेरियम विल्ट ड्रैगन फ्रूट पौधों की संवहनी प्रणाली को प्रभावित करता है, जिससे तने पीले पड़ जाते हैं, मुरझा जाते हैं और अंततः मर जाते हैं। इससे पौधा नष्ट हो सकता है। इस रोग के प्रबंधन के लिए रोग-मुक्त रोपण सामग्री का उपयोग करें, फसल चक्र अपनाएँ और अत्यधिक पानी देने से बचें। इस रोग के लिए कोई प्रभावी नियंत्रण के लिए कार्बेंडाजिम ३ 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर मिट्टी को खूब अच्छी तरह से भिगाए ।

5. पाउडरी मिलड्यू रोग (ओडियम प्रजातियां): पाउडरयुक्त फफूंदी ड्रैगन फ्रूट के पौधों के तने और पत्तियों पर सफेद, पाउडर जैसे पदार्थ के रूप में दिखाई देती है। यह प्रकाश संश्लेषण को कम कर सकता है और विकास को रोकता है। इस रोग के प्रबंधन के लिए वायु परिसंचरण में सुधार करें, पौधों के बीच उचित दूरी बनाए रखें, और सल्फर या नीम तेल युक्त कवकनाशी का प्रयोग करें।

6. जड़ सड़न (विभिन्न कवक): जड़ सड़न से ड्रैगन फ्रूट पौधे की जड़ें सड़ने लगती हैं, जिससे मुरझाना, पीला पड़ना और अंततः मृत्यु हो जाती है। प्रबंधन के लिए अत्यधिक पानी भरने से बचें और अच्छी जल निकासी वाली मिट्टी सुनिश्चित करें। जलभराव को रोकने के लिए ड्रैगन फ्रूट को ऊंची क्यारियों में लगाएं।

एकीकृत रोग प्रबंधन

स्वच्छता: ड्रैगन फ्रूट के पौधों का नियमित निरीक्षण करें और संक्रमित पौधों के हिस्सों को हटा दें। बीमारी को फैलने से रोकने के लिए संक्रमित सामग्रियों को बागान से दूर फेंकें। लेकिन ड्रैगन फ्रूट में लगनेवाली बीमारियों को प्रबंधित करने का सबसे अच्छा तरीका साफ सुथरी (सैनिटरी प्रथाओं)खेती करना है; अर्थात, औजारों को साफ करना और संक्रमित पौधे के मलबे को खेत से लगातार हटाते रहना और पौधे को स्वस्थ, पानी देना, आसपास के क्षेत्र को खरपतवार मुक्त, और कीटों से मुक्त रखना जो बीमारी भी फैला सकते हैं।

रोपण सामग्री चयन: प्रतिष्ठित स्रोतों से रोगमुक्त रोपण सामग्री का उपयोग करें। नए पौधों को वृक्षारोपण में लाने से पहले उन्हें संगरोधित करें।

उचित जल प्रबंधन: अत्यधिक पानी देने से बचें, क्योंकि अत्यधिक गीली परिस्थितियाँ फंगल रोगों को बढ़ावा दे सकती हैं। मिट्टी में जलभराव को रोकने के लिए उचित जल निकासी सुनिश्चित करें।

फसल चक्र: मृदा जनित रोगज़नकों के संचय को कम करने के लिए फसल चक्र का अभ्यास करें। लगातार सीज़न के लिए एक ही स्थान पर ड्रैगन फ्रूट लगाने से बचें।

जैविक नियंत्रण: रोगज़नक़ आबादी को दबाने के लिए लाभकारी सूक्ष्मजीवों या जैविक कवकनाशी का उपयोग करने पर विचार करें। लाभकारी कीड़े कुछ कीटों को नियंत्रित करने में भी मदद कर सकते हैं जो रोग संचरण में योगदान करते हैं।

रासायनिक नियंत्रण: निवारक उपायों के रूप में कवकनाशकों और जीवाणुनाशकों का प्रयोग करें, विशेष रूप से फूल आने और फल लगने की अवस्था के दौरान।प्रतिरोध विकास के जोखिम को कम करने के लिए विभिन्न रासायनिक वर्गों के बीच घुमाएँ। ड्रैगन फ्रूट के पौधों के स्वास्थ्य की नियमित निगरानी करें।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

तिल की फसल में खरपतवार नियंत्रण

निशा महान, लोकनाथ सिंह
डॉ. विनोद कुमार पाण्डेय
डॉ. बरुन कुमार सिंह
ब्रह्मानंद महाविद्यालय राठ, हमीरपुर (उ.प्र.)

तिल के उत्पादन के साक्ष्य 1600 ई.वी. में टिगरिस और यूफ्रेट्स की घाटियों से मिले हैं अतः तिल खाद्य तेल के लिए उगाया जाने वाला सबसे पुराना पौधा है। तिल एक वर्षीय पौधा है जिसकी ऊंचाई 20 से 60 इंच तक रहती है। तिल के बीज में 50 से 55% तेल तथा 25% प्रोटीन पाया जाता है। भारत में तिल का उत्पादन सर्वाधिक कर्नाटक राज्य में किया जाता है।

तिल के तेल में लगभग 47% ओलिक एसिड तथा 39: लिनोलिक एसिड पाया जाता है। तिल के बीज का प्रयोग मसाले के रूप में विभिन्न प्रकार की सब्जियों तथा अचार व विभिन्न प्रकार की मिठाइयां बनाने में किया जाता है। तिल के तेल का प्रयोग सब्जी, पकवान, पेंट, साबुन, सौंदर्य प्रसाधन, इत्र, कीटनाशकों और फार्मास्यूटिकल्स में भी किया जाता है। तिल में पाए जाने वाले एंटीऑक्सीडेंट- सेसमोल के कारण तिल की सेल्फ लाइफ लंबी होती है।

तिल की फसल में खरपतवारों से होने वाली हानियां-खरीफ ऋतु में उच्च तापमान व अधिक नमी के कारण रबी ऋतु की अपेक्षा अधिक खरपतवार उगते हैं। तिल खरीफ ऋतु की फसल होने के कारण तिल में खरीफ ऋतु में उगने वाले सभी प्रकार के खरपतवार उगते हैं। तिल की फसल को बुवाई के 15 से 45 दिन तक खरपतवार मुक्त रखना चाहिए इस समय पर फसल में खरपतवार अधिक उगने से फसल की उपज में बुरा असर पड़ता है क्योंकि खरपतवार भूमि में निहित पोषक तत्वों तथा नमी का बड़ा हिस्सा अवशोषित कर लेते हैं और साथ ही साथ फसल को आवश्यक प्रकाश एवं स्थान से भी वंचित रखते हैं। खरपरवार विभिन्न रोगों के जीवाणुओं एवं कीट व्याधियों को आश्रय देते हैं जिससे तिल की उपज में 17 से 41: तक की गिरावट आ जाती है। खरपतवारों के बीज फसल की कटाई के समय फसल के बीज के साथ मिलकर फसल की गुणवत्ता को खराब कर देते हैं जिससे फसल का बाजार मूल्य कम मिलता है।

तिल में उगने वाले खरपतवार- तिल की फसल में विभिन्न प्रकार के खरपतवार उगते हैं-

- संकरी पत्ती वाले खरपतवार
- पत्थरचटा (ट्रायेन्थमा पोरयूलाकासड्रम)
- कनकवा (कामेलिना बेघालेनसिस)
- महकुआ (एजीरेटम कोनीज्वाडिस)
- वन मकोय (फाइजेलिस मिनीमा)
- सफेद मुर्ग (सिलोसिया अर्जेन्सिया)
- हजारदाना (फाइलेन्थस निरुरी)
- चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
- सांवक (इकानोक्लोआ कोलोना)
- कोदों (इल्यूसिन इंडिका)
- बनरा (सिटेरिया ग्लाऊका)
- दूब घास (साइनोंडोन डेक्टीलोन)
- मोथाकुल परिवार के खरपतवार
- मोथा (साइपेरस रोटन्ड्स, साइपेरस इरिया आदि)

खरपतवार नियंत्रण की विधियां

निवारक विधि- बुवाई के लिए साफ-सुथरे एवं प्रमाणित बीज का ही प्रयोग करना चाहिए।

- बुवाई से पहले (खेत की तैयारी के समय) पूर्णता सड़ी हुई गोबर या कंपोस्ट की खाद का प्रयोग करना चाहिए।
- सिंचाई और जल निकास नालियों को खरपतवार मुक्त रखना चाहिए।
- खेत की तैयारी व बुवाई में प्रयोग होने वाले यंत्रों की प्रयोग करने से पूर्व अच्छी तरह से साफ-सफाई कर लेनी चाहिए।

यांत्रिक विधि

तिल की फसल खरीफ ऋतु की फसल होने के कारण खरपतवारों का प्रकोप अधिक बना रहता है। तिल की फसल में फसल-खरपतवार प्रतियोगिता का क्रांतिक समय बुवाई के 15 से 45 दिन तक रहता है इसलिए तिल की फसल की पहली निराई- गुड़ाई बुवाई के 15 से 20 दिन बाद तथा दूसरी निराई- गुड़ाई बुवाई के 30 से 35 दिन बाद करके खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है। यह विधि छोटे खेतों के लिए उपयोगी होती है ज्यादा रकबा में इस विधि से खरपतवार नियंत्रण करने पर धन व समय अधिक खर्च होता है।

रासायनिक विधि

रासायनिक विधि में खरपतवार नियंत्रण के लिए विभिन्न प्रकार के खरपतवार नाशक रसायनों का प्रयोग फसल व भूमि में किया जाता है। बड़े क्षेत्रफल में इस विधि से खरपतवार नियंत्रण करने पर प्रति हेक्टेयर लागत कम आती है तथा समय की बचत हो जाती है। इस विधि से खरपतवार नियंत्रण में खरपतवारनाशियों की उचित मात्रा, उचित प्रयोग विधि तथा उपयुक्त समय का विशेष ध्यान रखना पड़ता है इन बिंदुओं का ध्यान न रखने पर फसल को लाभ की वजह हानि भी हो सकती है। तिल की बुवाई के बाद एलाक्लोर की 1.5 लीटर मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि पर छिड़काव करना चाहिए।

तिल की मिश्रित फसल में रासायनिक खरपतवार नियंत्रण- अरहर के साथ तिल को मिश्रित फसल के रूप में उगाने पर फ्लूक्लोरालिन की 1से 1.5 किलोग्राम सक्रिय मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के पहले भूमि में छिड़काव करके मिला देनी चाहिए या पेंडीमेंथलिन की 1 से 1.5 किलोग्राम सक्रिय मात्रा को बुवाई के बाद तथा अंकुरण से पूर्व भूमि में छिड़काव करना चाहिए।

रासायनिक विधि से खरपतवार नियंत्रण करते समय खरपतवारनाशियों की उपयुक्त मात्रा का प्रयोग करना अति आवश्यक है। खरपतवारनाशियों की गणना के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर द्वारा हर्बीसाइड कैलकुलेटर तथा वीड मैनेजर जैसे मोबाइल एप विकसित किए गए हैं इन एप्स को गूगल प्ले स्टोर से मुक्त में डाउनलोड करके फसल तथा रकबा से संबंधित आवश्यक जानकारी भरने के बाद खरपतवारनशियों की मात्रा तथा आवश्यक पानी की मात्रा की सही जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

मृदा अपरदन: किसानों के लिए अभिशाप

ज्ञान प्रकाश (शोध छात्र), कृषि सांख्यिकी विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

योगेश कुमार (शोध छात्र), प्रसार शिक्षा विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

मो.याहया (शोध छात्र), कीट विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

गौरव (परास्नातक छात्र), सस्य विज्ञान विभाग, चौधरी चरण सिंह पी.जी. कॉलेज हैंवरा, इटावा (उ.प्र.)

मृदा अपरदन-मृदा अपरदन के कारण भारत में प्रतिवर्ष लगभग 5 से 8 टन पोषक तत्वों की हानि होती है। भारत में मृदा अपरदन का कुल क्षेत्रफल 162.4 मिलियन हे. है जिसमें जल अपरदन का क्षेत्रफल 148.6 मिलियन हे. तथा वायु अपरदन का क्षेत्रफल 13.4 मिलियन हे. है।

परिचय - मृदा अपरदन हवा, पानी या यहाँ तक कि ग्लेशियरों जैसे भौतिक कारकों द्वारा ऊपरी मिट्टी के क्षरण की प्राकृतिक प्रक्रिया है। इसमें गतिशील गतिविधि के कारण मिट्टी की ऊपरी परत का क्षरण या क्षरण शामिल है। क्षरणकारी कारकों में वर्षा, सतही अपवाह और पौधे, पशु और मानवीय गतिविधियाँ जैसे अन्य कारक शामिल हैं। मृदा अपरदन से फसल उत्पादन में कमी, पारिस्थितिकी तंत्र का पतन और जलमार्गों का अवसादन हो सकता है। कमजोर मिट्टी के क्षरण को सीमित करने के लिए निवारक उपाय आवश्यक हैं। कृषि उत्पादकता को बनाए रखने और जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए टिकाऊ भूमि प्रबंधन के माध्यम से मिट्टी के कटाव को संबोधित करना महत्वपूर्ण है।

मृदा अपरदन का कारक-मृदा अपरदन, क प्राकृतिक प्रक्रिया है जो तब होती है जब मिट्टी की ऊपरी परत घिस जाती है।

मृदा अपरदन के मुख्य कारक इस प्रकार हैं -

पानी-बारिश, नदियाँ, बाढ़, झीलें और महासागर मिट्टी के कणों को बहा ले जाते हैं और धीरे-धीरे तलछट को बहा ले जाते हैं।

हवा: हवा ढीली मिट्टी के कणों को उड़ा सकती है, खासकर शुष्क या खुले क्षेत्रों में। यह मृदा अपरदन का एक महत्वपूर्ण कारक है, खासकर उन क्षेत्रों में जहाँ वनस्पति कम होती है।

गुरुत्वाकर्षण भूस्खलन जैसी बड़े पैमाने पर बर्बादी की प्रक्रियाएँ मृदा अपरदन में योगदान करती हैं। चट्टानें पहाड़ियों से उखड़ जाती हैं और ढलानों से नीचे गिरते ही टूट जाती हैं। मानव गतिविधियाँ कृषि, चरने वाले जानवरों, लकड़ी काटने, खनन, निर्माण और मनोरंजक गतिविधियों के कारण होने वाली गड़बड़ी मृदा अपरदन को बढ़ाती है। जब जमीन में गड़बड़ी होती है, तो मिट्टी का कटाव होने की संभावना बढ़ जाती है।

मृदा अपरदन के प्रकार

1. प्राकृतिक अपरदन सामान्य अपरदन भूवैज्ञानिक अपरदन- प्राकृतिक मृदा अपरदन में, मृदा का नुकसान मृदा निर्माण के संतुलन के बराबर होता है। यह हानिकारक प्रक्रिया नहीं है। एक इंच मृदा निर्माण में लगभग 100-1000 वर्ष लगते हैं।

2. त्वरित अपरदन असामान्य अपरदन विनाशकारी अपरदन- त्वरित मृदा अपरदन प्राकृतिक मृदा अपरदन से 10-40 गुना अधिक होता है। यह अधिक हानिकारक प्रक्रिया है, इसलिए त्वरित मृदा अपरदन को विनाशकारी मृदा अपरदन भी कहा जाता है। त्वरित मृदा अपरदन दो प्रकार का होता है-

जल अपरदन- जल अपरदन आमतौर पर आर्द्र क्षेत्र में पाया जाता है। पानी की क्रिया द्वारा मृदा द्रव्यमान का पृथक्करण और परिवहन जल अपरदन कहलाता है। यह वायु अपरदन से अधिक हानिकारक है।

जल अपरदन के प्रकार-

छिड़काव अपरदन- छिड़काव अपरदन जल अपरदन का पहला चरण है। जिसे वर्षा की बूंदों से होने वाला अपरदन भी कहा जाता है। यह अपरदन मुख्य रूप से वर्षा की तीव्रता और वर्षा की बूंदों के आकार से प्रभावित होता है। इसे स्प्लैश कप द्वारा मापा जाता है। स्प्लैश कप का आकार 10 सेमी व्यास इ 20 सेमी ऊंचाई सतह के पानी से 3 सेमी ऊपर तय किया गया है क्योंकि स्प्लैश कप में बहते हुए वर्षा के पानी का प्रवेश नहीं होता है और सुबह 8 बजे प्रत्येक स्ट्रॉम में रीडिंग दर्ज की जाती है।

परत-क्षरण (शीट अपरदन)- शीट अपरदन जल अपरदन का दूसरा चरण है। मिट्टी की पतली और काफी एकसमान सतह में तेज बारिश के पानी की क्रिया द्वारा मिट्टी के हटने को परत-क्षरण कहते हैं। शीट अपरदन को किसान मृत्यु अपरदन के रूप में भी जाना जाता है। क्योंकि ऊपरी उपजाऊ मिट्टी का क्षय शीट अपरदन द्वारा होता है। यह अपरदन चिकनी और नियमित ढलान वाले क्षेत्र में होता है।

रिल अपरदन- बहते पानी की क्रिया द्वारा संकीर्ण और उथले चौनल के निर्माण के साथ मिट्टी (सतह) को हटाना रिल अपरदन कहलाता है। इसे खेती या जुताई द्वारा हटाया जा सकता है। रिल अपरदन मुख्य रूप से ढीली सतह वाली मिट्टी के नीचे होता है।

नाली का कटाव (गली अपरदन)- पानी की खनन क्रिया द्वारा सतही मिट्टी को हटाना तथा गहरी और चौड़ी चौनल का निर्माण करना नाली का कटाव कहलाता है। यू आकार की गली को सक्रिय गली तथा वी आकार की गली को निष्क्रिय गली कहा जाता है।

वायु अपरदन- वायु अपरदन सबसे अधिक शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है। यह एक प्राकृतिक प्रक्रिया है जो हवा द्वारा मिट्टी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती है और यह जल अपरदन की तुलना में कम हानिकारक है। जल और वायु अपरदन को तरंग अपरदन भी कहा जाता है।

वायु अपरदन का रूप-

सॉल्टेशन- सॉल्टेशन मध्यम आकार के कणों का 0.1-0.5 मिमी आकार के उछलने या उछलने की प्रक्रिया के माध्यम से नुकसान की गति को सॉल्टेशन कहा जाता है। यह पवन अपरदन का पहला रूप है और लगभग 60-75: पवन अपरदन केवल सॉल्टेशन के कारण होता है।

निलंबन (सस्पेंशन)- क्षण छोटे आकार के कणों का नुकसान है जो 0.1 मिमी से कम होते हैं और तेज हवा के साथ लंबी दूरी तक ले जाए जाते हैं। 100 किमी तक की दूरी को निलंबन कहा जाता है। निलंबन में लगभग 3-5% वायु अपरदन होता है और हवा की गति 16 किमी/घंटा होती है।

सतह का रेंगना (सरफेसक्रीप)- क्षण में बड़े आकार के कणों का एक नुकसान होता है जो कि झ 0.5 मिमी (0.5 से 3 मिमी) होता है लगभग 5 से 25: वायु अपरदन होता है सतह का रेंगना। सतह के रेंगने में और न्यूनतम वायु गति दृ 26 किमी/घंटा होती है।

कृषि पर मिट्टी के कटाव का प्रभाव-मिट्टी का कटाव कृषि के लिए महत्वपूर्ण चुनौतियाँ पेश करता है, जो उत्पादकता और स्थिरता दोनों को प्रभावित करता है। यहाँ कुछ प्रमुख प्रभाव दिए गए हैं

ऊपरी मिट्टी का नुकसान- पोषक तत्वों से भरपूर ऊपरी मिट्टी फसल की वृद्धि के लिए आवश्यक है। कटाव से यह उपजाऊ परत खत्म हो जाती है, जिससे खेत की उर्वरता कम हो जाती है और खेती जटिल हो जाती है।

मिट्टी का अम्लीकरण-कटाव वाली मिट्टी अधिक अम्लीय हो सकती है, जिससे पौधों का स्वास्थ्य और पोषक तत्वों की उपलब्धता प्रभावित होती है।

रोपण सामग्री में नुकसान- कटाव से बीज, अंकुर और युवा पौधे बह सकते हैं, जिससे पैदावार कम हो सकती है।

जल प्रदूषण- कटाव वाले पानी से आने वाली तलछट जल निकायों को दूषित कर सकती है, जिससे जलीय पारिस्थितिकी तंत्र और मानव स्वास्थ्य प्रभावित हो सकता है।

मिट्टी के कटाव को नियंत्रित करने के प्राकृतिक तरीके -

मिट्टी के कटाव से पर्यावरण पर हानिकारक प्रभाव पड़ सकता है, लेकिन इसे नियंत्रित करने के कई प्राकृतिक तरीके हैं। यहाँ कुछ प्रभावी तरीके दिए गए हैं-

वनस्पति रोपण- गहरी जड़ वाले देशी पौधे, जंगली फूल, लकड़ी के बारहमासी और देशी घास चुनें। ये पौधे मिट्टी को स्थिर करते हैं और कटाव को रोकते हैं।

समोच्च खेती-वर्षा जल को संरक्षित करने और सतह के कटाव को कम करने के लिए समोच्च रेखाओं के साथ खेती करें। फसल की पंक्तियाँ, पहिए की पटरियाँ और खांचे वर्षा जल को रोकने हेतु जलाशयों के रूप में कार्य करते हैं, जिससे मिट्टी का नुकसान नहीं होता है।

मल्चिंग- कटाव को रोकने के लिए खुली मिट्टी को गीली घास की सामग्री से ढँक दें। गीली घास नमी को भी संरक्षित करती है और मिट्टी के तापमान में उतार-चढ़ाव को नियंत्रित करती है।

अधिक चराई से बचें- उचित चारागाह प्रबंधन और घूर्णी चराई कटाव के जोखिम को कम करती है। पशुओं को अलग-अलग खेतों में ले जाने से चारे की गुणवत्ता में सुधार होता है और चारागाह के पौधों को ठीक होने में मदद मिलती है।

वनरोपण- खराब हो चुके पारिस्थितिकी तंत्र को बहाल करना और मौजूदा पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा करना मिट्टी के कटाव को नियंत्रित करने में मदद करता है।

मिट्टी के कटाव को नियंत्रित करने के कृत्रिम तरीके

टेरेसिंग- जब ढलान उच्च हो तो टेरेसिंग का उपयोग किया जाता है। यह पानी के बहाव को धीमा करने और कटाव को रोकने के लिए बनाया जाता है। इसका उपयोग आमतौर पर पहाड़ी या पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि के लिए किया जाता है।

बायो-इंजीनियरिंग तकनीक- इनमें मिट्टी को स्थिर करने के लिए जीवित पौधों का उपयोग करना शामिल है। तकनीकों में लाइव फैसिन (जीवित शाखाओं के बंडल), ब्रश लेयरिंग और वनस्पति जियोग्रिड शामिल हैं।

ढलान स्थिरीकरण- ढलानों पर घास, झाड़ियाँ या पेड़ लगाने से मिट्टी को स्थिर रखने में मदद मिलती है। उनकी जड़ प्रणाली मिट्टी को अपनी जगह पर रखती है, जिससे भूस्खलन और सतह का कटाव रुकता है।

रॉक चेक डैम- ये छोटे बांध होते हैं जो नालियों या चौनलों पर बनाए जाते हैं। वे पानी के बहाव को धीमा कर देते हैं, जिससे तलछट जम जाती है और बहाव के साथ कटाव कम होता है।

मिट्टी में सुधार- मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ (जैसे खाद) मिलाने से इसकी संरचना में सुधार होता है, जिससे यह कटाव के प्रति कम संवेदनशील हो जाती है। कार्बनिक पदार्थ जल प्रतिधारण और पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाते हैं।

निष्कर्ष-कई देशों में कृषि के लिए मृदा अपरदन एक प्रमुख चुनौती बनी हुई है। इस बहुमूल्य संसाधन का उचित प्रबंधन दीर्घकालिक कृषि उत्पादकता को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है। मृदा संरक्षण अभ्यास ऐसे उपकरण हैं जिनका उपयोग किसान मृदा क्षरण को रोकने और जैविक पदार्थ बनाने के लिए कर सकते हैं। इन पद्धतियों में फसल चक्र, कम जुताई, मल्चिंग, कवर फसल और क्रॉस-स्लोप खेती आदि शामिल हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

नैनो यूरिया प्लस का फसल उत्पादन में क्रांतिकारी प्रभाव

हरिओम प्रसाद (परास्नातक कृषि छात्र), आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग, बाबा राघवदास परास्नातक महाविद्यालय, देवरिया (उ.प्र.)

गोविन्द मल्ल (शोध छात्र) कृषि प्रसार विभाग

राघवेन्द्र मल्ल (शोध छात्र) कृषि प्रसार विभाग
बी.आर.डी. पी.जी. कॉलेज देवरिया (उ.प्र.)

नैनों यूरिया (तरल) भारत सरकार द्वारा उर्वरक नियत्रण आदेश (एफसीओ,1985) द्वारा अधिसूचित किया गया है। नैनो यूरिया प्लस को अब भारत सरकार कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा अधिसूचित किया गया है। इफको नैनो यूरिया प्लस नैनो यूरिया का एक एडवांस फॉर्मूलेशन है जिसमें महत्वपूर्ण विकास चरणों में फसल की नाइट्रोजन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पोषण को फिर से परिभाषित किया गया है। यह दुनिया का पहला नैनों उर्वरक हैंढ्ढ नैनों यूरिया प्लस (तरल) नैनों यूरिया (तरल) का नया संस्करण हैं, जिसमें नाइट्रोजन कि उच्च सांद्रता (20%N 2/1 बराबर 16N 2/2%) हैं, इसमें नाइट्रोजन के रूप (उरिया-एमाइड, अमोनिकल,एमिनोज आदि) होते हैं और इसे बायो-पोलिमर अन्य एकसीसिएंत के साथ क्रियाशील बनाया जाता है, इसका आकर नैनों(<100nm) है, जिनके सतह क्षेत्र से आयत अनुपात अधिक हैं और नाइट्रोजन कि लोडिंग अधिक है। इस प्रकार फसल के पत्तों पर इसके बेहतर फैलाव के कारण इसके कुशल आत्मसात के कारण क्लोरोफिल और प्रकाश संश्लेषण दक्षता अधिक होता हैं। फसल कि उपज बढ़ती हैं और उत्पादित फसलों कि गुणवता बढती है। इसके अलावा, नैनों यूरिया प्लस (तरल) पारम्परिक टॉप ड्रेसिंग यूरिया (दानेदार) के उपयोग को 50% तक कम कर सकता है। इसका निर्माण जैविक रूप से सुरक्षित हैं और जैव प्रौधोगिकी विभाग (डीबीटी), भारत सरकार के मनको के अनुरूप है। नैनों एग्री इनपुट प्रोडक्ट(एनएआईपी)-2020 के लिए भारत सरकार के दिशा-निर्देशन नैनों यूरिया प्लस को नैनोंयूरिया (तरल) 16 के अनुरूप में उर्वरक आदेश (एफसीओ), भारत सरकार द्वारा 15 अप्रैल 2024 को एसओ1718(ई) के माध्यम से अधिसूचित किया गया है।

नैनों यूरिया प्लस (तरल)

सहकारी क्षत्र कि प्रमुख कंपनी इफको ने नैनों यूरिया प्लस(तरल) उर्वरक का उत्पादन करना शुरु कर दिया हैं, नैनों यूरिया प्लस(तरल) नैनों यूरिया (तरल) का एक नया संस्करण हैं जो महत्वपूर्ण विकाश चरणों में फसल कि नाइट्रोजन आवश्यकता को पूरा करता है। गजट अधिसूचना के अनुशार, सरकार ने 16% नाइट्रोजन सामग्री और पी एच 4-8.5 और चिपचिपाहत 5-30 के साथ तरल रूप में नैनों यूरिया प्लस(तरल) मंजूरी दी है।

नैनों यूरिया प्लस (तरल) के प्रयोग के उद्देश्य

नैनों यूरिया प्लस (तरल) के मुख्य उद्देश्य परम्परिक प्रयोग होने वाले नीम कोटेड यूरिया का 50 प्रतिशत तक करना हैं और साथ ही नीम कोटेड यूरिया के असंतुलित और अंधाधुध उपयोग को कम करना, फसल उत्पादन में वृद्धि करना, मिट्टी,पानी व वायु प्रदुषण को कम करना हैं।

लाभ और फायदे

• उपज में वृद्धि • किसानों के आय में वृद्धि • रासायनिक उर्वरक के उपयोग में कमी • पयावरण के अनुकूल • भंडारण और परवहन में आसन

किसानों के आय में वृद्धि व आर्थिक रूप से वहनीय

यह किसानों के लिए एकोफ्रेंडली और पॉकेट फ्रेंडली हैं, जो नैनों यूरिया प्लस (तरल) 500 मिली उस प्रारम्भिक नीम कोटेड यूरिया के एक बैग (45 किग्रा) के बराबर हैं और नैनों यूरिया प्लस (तरल) कि कीमत 225 हैं, जब कि नीम कोटेड यूरिया कि कीमत से कम हैं, जबकि नीम यूरिया कि कीमत लगभग 266.50 है।

नैनों यूरिया प्लस (तरल) कि प्रयोग विधि

पत्तियों पर स्प्रे

1.अच्छी पत्ती अवस्था(टिलरिंग/ ब्रांचिंग) पर 2-4 एमएल प्रति लीटर पानी कि दर से नैनों यूरिया प्लस (तरल) के 1-2 छिड़काव करें और फिर पहले छिड़काव के 20-25 दिन बाद (या फसल में फुल आने से एक सप्ताह पहले) नैनों यूरिया प्लस (तरल) को 250 एमएल-500 एमएल प्रति एकर छिड़काव करें।

2.एक अतिरिक्त छिड़काव (तीसरा) लम्बी अवधि में तथा उच्च नाइट्रोजन कि आवश्यकता वाली फासलों पर किया जा सकता हैं।

छिड़काव के लिए पानी कि मात्रा स्प्रेयर के प्रकार और फसल कि वृद्धि' अवस्था के अनुसार भिन्न होती है।

जैसेः नैपसेक स्प्रेयर-15-16 लीटर टैंक में 2-3 कैप्स (50-75ml) (8-10 टैंक सामान्तयाः 1 एकड़ फसल क्षेत्र को कवर करते हैं)।

पावर स्प्रेयर 20-25 लीटर टैंक में 3-4 दक्कन (75-100 एमएल) (4-6 टैंक सामान्तयाः एक एकड़ फसल क्षेत्र को कवर करते हैं)।

ड्रोन 10-20 लीटर मात्रा वाले प्रति टैंक में 250-500 एमएल मात्रा एक एकड़ फसल क्षेत्र को कवर करें के लिए प्रयास है।

नैनो यूरिया के दूसरे रसायनिक के साथ अनुकूलता

सीवीड एक्स्ट्रेट/सागरिका द्रव्य
एज़ोक्सीस्ट्रोबिन11% +टेबुकोनाजोल18.3% एससी
हेक्सकोनाजोल 5% एससी
क्लोरपाइरीफोस50% + साइपरमेंथ्रिन 5%
प्रोपिकोनाजोल 25% ईसी
एमिनो एसिड
जल विलय उर्वरक(18:18:18, 19:19:19, 0:52:34 , 12:61:0 इत्यादि)
(नोटः जार टेस्ट अवश्य कर लें)

सामान्य जानकारी एवं सावधानियां

स्प्रे घोल करने के लिए स्वच्छ पानी का उपयोग करें
- पत्तियों पर छिड़काव के लिए फ़्लैट या कट नोजल का प्रयोग करें
- बेहतर अवशोषण के लिए ओस से बचने के लिए सुबह या शाम के समय छिडकावकरें
- यही छिड़काव के 8 घंटे के भीतर बारिश हो जाये तो छिड़काव दोवारा करने कि सलाह दी जाती हैं
- विनिर्माण कि तारीख से 24 महीने के भीतर उपयोग करें
- छिड़काव के दौरान चेहरे पर मास्क और दस्ताने पहनें
- बोतल को ठंडी और सुखी जगह पर रखें
- बच्चों और जानवरों की पहुंच से दूर रखें

पर्णीय छिड़काव हेतु आवेदन अनुचूची

फसल का प्रकार	पहला स्प्रे	दूसरा स्प्रे	तीसरा स्प्रे
अनाज (गेहूं, जौ, मक्का, बाजरा, धान आदि)	तिलारिंग (30-35दिन या 25-30दिन)	फूल आने से पूर्व	नाइट्रोजन कि आवश्यकता पर निर्भर करता है
दालें (चना, अरहर, मसूर, मूंगा उरद ,आदि	शाखाकरण (30-35दिन)	नाइट्रोजन की आवश्यकता पर निर्भर करता हैं	नाइट्रोजन कि आवश्यकता पर निर्भर करता है
तिलहन (सरसों, मूंगफली, सोयाबीन, सूर्यमुखी आदि)	शाखाकरण (30-35दिन)	फूल आने से पहले	नाइट्रोजन कि आवश्यकता पर निर्भर करता है
सब्जी(प्याज, लहसुन, मटर, कोल क्रॉप, इत्यादि)	ब्रांचिंग (रोपाई के दिन बाद 25-30)	फूल आने के पहले	नाइट्रोजन कि आवश्यकता पर निर्भर करता है
गन्ना	कले निलने कि शुरुआती अवस्था में (गन्ना अंकुरण के 40-45 दिन के बाद)	गन्ना अंकुरण के 75-80 दिन के बाद	गन्ना अंकुरण के 100-110 दिन के बाद
आलू	फसल वृधि अवस्था पर(आलू कंद बोने के 20-25 दिन बाद)	कंद निर्माण के समय या प्रथम मिट्टी चढ़ाई पर	दूसरी मिट्टी चढ़ाई पर

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

बारानी खेती में अधिक पैदावार लेने की तकनीक

राघव सिंह मीना, डॉ. दिनेश कुमार
डॉ. रविन्द्र सिंह शेखावत
भा.कृ.अ.प.-केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान,
प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र बीकानेर (राजस्थान)

सिंचित कृषि में उत्पादकता वृद्धि की स्थेतिक गति को ध्यान में रखते हुए, राष्ट्रीय खाद्य उत्पादन में असिंचित (बारानी) कृषि के योगदान को बढ़ाने की आवश्यकता है। कई वर्षों से, इसका योगदान लगभग स्थिर है, जिसे बढ़ाने की आवश्यकता हैं यदि हमें समता के साथ विकास के उद्देश्यों को पूरा करना है। उन्नत कृषि हेतु जल एक महत्वपूर्ण संसाधन हैं। इसकी अधिकता या कमी दोनों ही पादपों के विकास को प्रभावित करती हैं। हमारे प्रदेश में लगभग तीन चौथाई क्षेत्र असिंचित हैं। इस असिंचित क्षेत्र में वर्षा की मात्रा और वितरण के अनुसार फसल उत्पादन का स्तर बदलता रहता हैं। इसलिए, हमें वर्षा वाले क्षेत्र में उन्नत खेती के तकनीकों को लेकर काम करना चाहिए ताकि हम सुनिश्चित कर सकें कि उत्पादन में सुधार हो।

कम और असामयिक वर्षा वाले क्षेत्रों में नमी संरक्षण हेतु फसल उत्पादन तकनीक को ऐसे अपनाएं जिससे फसलों की अधिक से अधिक पैदावार हो सके, उसे हम बारानी खेती कहते हैं। तकनीकी दृष्टि से उन क्षेत्रों में जहां वार्षिक वर्षा 400 मिलीमीटर से कम होती है, वहां पर वर्षा आधारित खेती बारानी खेती के तहत आती हैं। राज्य में वर्षा के अनुसार फसल क्षेत्र, उत्पादन और उत्पादकता में विशेष रूप से विविधता होती रहती हैं। वर्षा के दिन भी गिनती के होते हैं और वर्षा का वितरण अनिश्चित होता है। कभी-कभी बारिश इतनी भारी होती है कि उपजाऊ भूमि नष्ट हो जाती हैं, जबकि कभी वर्षा बस छिड़काव के रूप में होती हैं। मानसून समय भी बहुत पहले या बहुत बाद आ सकता है और वर्षाकाल में लंबा सूखा भी हो सकता है। पिछले चार दशकों के दौरान खाद्य उत्पादन आत्मनिर्भरता और उत्पादन अधिशेष में परिणत हुआ है। हालांकि, अगली सहस्त्राब्दी में लगातार बढ़ती आबादी की खाद्य मांग को पुरा करना एक कठिन कार्य बना हुआ है। देश को वर्ष 2030 तक लगभग 1.5 बिलियन लोगों की खाद्य मांग को पुरा करने के लिए हर साल 5-6 मीट्रिक टन अतिरिक्त अनाज की आवश्यकता होगी। इसलिए, इस प्रकार की परिस्थितियों में बारानी खेती की उन्नत कृषि विधियाँ अत्यंत आवश्यक हैं ताकि हम संभावित सभी उत्पादकता को हासिल कर सकें। **बारानी खेती के लिए महत्वपुर्ण उन्नत कृषि विधियाँ निम्न प्रकार हैं:-**

खेत की तैयारी: बारानी खेती से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए भूमि में संचित नमी पर निर्भर होता है। मृदा की जल सोखने और जलधारण क्षमता को बढ़ाने के लिए, रबी फसलों के कटने के तुरंत बाद या खाली खेतों में गर्मियों के दौरान मिट्टी की गहरी जुताई की जानी चाहिए। इससे हानिकारक कीट, रोगाणु और खरपतवार नष्ट हो जाते है और मृदा का तापमान और जलधारण क्षमता भी बढ़ती है। रेतीले क्षेत्रों में गर्मियों के दौरान जुताई करना अनुचित हो सकता है।

खेत को समतल बनाना: वर्षा जल को समान रूप से फैलने देना चाहिए ताकि वर्षा जल संरक्षित रूप से मृदा में चला जाए। इस संरक्षित नमी में, लंबे समय तक वर्षा नहीं होने पर भी, फसल पर सूखे का प्रभाव कम होता हैं या बिल्कुल नहीं होता।

खेतों में ढाल के विपरीत जुताई करें: इस प्रकार जुताई करने से कूड़ में पानी इकट्ठा होगा और भूमि को पानी सोखने के लिए अधिक समय मिलेगा। खेतों में ढाल के विपरीत थोड़ी-थोड़ी दूरी पर डोलियां बनाएं और वानस्पतिक अवरोध लगाएं ताकि वर्षा जल रूककर भूमि में समा सके। बारिश के बाद छोड़े गए खेतों में खरपतवार को नष्ट करने और जल सोखने की क्षमता बढ़ाने के लिए वर्षा के दौरान दो-तीन बार जुताई करनी चाहिए। क्योंकि अंतिम वर्षा और बुवाई के बीच का अंतराल लंबा रहता हैं, इसलिए नमी संरक्षण के लिए पाटा लगाना जरूरी है। प्रत्येक तीसरे वर्ष वर्षा आरंभ होने से 15-20 दिन पहले खेत में प्रति हे. 10-15 टन सड़ी हुई देशी गोबर की खाद जरूर डालनी चाहिए, अगर संभव हो सके तो प्रति वर्ष प्रति हे. 5 टन सड़ी हुई देशी गोबर की खाद जो पोषक तत्व प्रदान करने के साथ ही जल धारण करने की क्षमता भी बढ़ाती है और मृदा में जैविक पदार्थ/जीवांशों की मात्रा में वृद्धि होती हैं।

जीवाणु खाद का उपयोग: फसल में नत्रजन की आपूर्ति यूरिया जैसे उर्वरकों से की जाती हैं। यूरिया में केवल 46% नत्रजन होती हैं, जबकि हमारे वायुमंडल में लगभग 78% नत्रजन होती हैं। वायुमंडल की इस नत्रजन को पौधों को-राईजोबियम एवं एजेटोबैक्टर आदि जीवाणु खाद का उपयोग कर उपलब्ध कराया जा सकता हैं। राईजोबियम जीवाणु दलहनी फसलों की जड़ों में सहजीवी के रूप में ग्रन्थि (गांठ) बनाकर रहते हैं। यह वायुमंडल से नत्रजन प्राप्त करके सीधे पौधों को उपलब्ध करा देते हैं। एजेटोबैक्टर स्वतंत्र रूप से जमीन में रहते हैं और वायुमंडल की नत्रजन को जमीन में पौधों हेतु उपलब्ध अवस्था में छोड़ देते हैं। इस प्रकार ये भूमि की उर्वराशक्ति को बढ़ाते हैं। इसी प्रकार फॉस्फेट विलेयक (पी.एस.बी.) जीवाणु खाद जमीन में बेकार/अनुपलब्ध पड़े फॉस्फोरस को घोलकर पौधों को उपलब्ध करा देता हैं। इससे पहले खेत में उपयोग किए गए डी.ए.पी. और सिंगल सुपर फॉस्फेट का भी समुचित उपयोग हो जाता है। बीज को कल्चर से उपचारित करने हेतु 250 ग्राम गुड़ और आवश्यकता के अनुसार पानी गरम करके घोल बनाएं। घोल के ठंडा होने पर इसमें 600 ग्राम जीवाणु खाद मिलाएं। इस मिश्रण को एक हेक्टर में बोए जाने वाले बीज में इस प्रकार मिलाएं कि बीजों पर एक समान परत चढ़ जाए। छोटे आकार के बीजों के लिए जीवाणु खाद की कम मात्रा का उपयोग करें। इसके बाद बीजों को छांया में सुखाकर बुवाई करें।

शीघ्र पकने वाली फसल व किस्म का चयन: बारानी खेती के लिए शीघ्र पकने वाली, सूखा सहने की क्षमता वाली और अधिक उत्पादन देने वाली फसलों (बाजरा, मोठ, ग्वार, मूँग एवं तिल) और उनकी किस्मों का चयन करना चाहिए। इस चयन में भूमि की किस्म और सम्भावित वर्षा का ध्यान रखना चाहिए। विभिन्न फसलें और उनकी किस्में बारानी खेती के लिए उपयुक्त हो सकती हैं जो स्थानीय मौसम और भूमि की परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए स्थान विषेष के लिए अनुशंसित की गई हैं।

सही समय पर बुवाई: बारानी खेती में समय पर बुवाई करना बहुत महत्वपूर्ण है। खरीफ की बुवाई मानसून की प्रथम वर्षा के साथ ही करें, इससे बीजों का अच्छा जमाव होता है और वर्षा से पूरा लाभ मिलता है। खरीफ में बुवाई का उपयुक्त समय मध्य जून से जुलाई के पहले सप्ताह में होता है। अगर समय पर वर्षा हो रही है, तो सबसे पहले खाद्यान्न फसलों की बुवाई करें और इसके बाद दलहनी और तिलहनी फसलों की बुवाई करें।

बुवाई विधि: बीज को ऊर कर कतारों में बोयें, कतारों के बीच की दूरी बढ़ाना भी पानी की कमी होने की स्थिति में लाभदायक रहता है। ऊर कर बोने से बीज उपयुक्त गहराई पर नमी क्षेत्र में गिरता है और अंकुरण सुनिश्चित हो जाता है। छिड़काव विधि से बुवाई नहीं करनी चाहिए इससे बीज की अधिक मात्रा भी लगती हैं। ढलान वाले खेतों में बीज की बुवाई ढ़ाल के विपरीत दिशा में करनी चाहिए।

पौधों की संख्या: बारानी क्षेत्रों में अंकुरण प्रायः कम होता है। इसलिए पौधों की समुचित संख्या बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इस पर उत्पादन निर्भर करता है। इस कारण से प्रति हेक्टेयर बीज की मात्रा सामान्य से 20 प्रतिशत अधिक रखी जाती है। अंकुरण के बाद पास-पास घने उगे पौधों में से कमजोर/रोगी पौधों और खरपतवारों को उखाड़ देना चाहिए, अन्यथा पौधों की अधिक संख्या से पौधों का पूर्ण विकास नहीं होता हैं तथा उपलब्ध सीमित जल का उपयोग पौधों की वानस्पतिक वृद्धि में ही हो पाता है। फूल और दाना बनने की अवस्था में नमी की कमी हो जाती है। फलस्वरूप दाना बनता ही नहीं और यदि बनता है तो पतला रह जाता है। इसलिए प्रति इकाई क्षेत्र में पौधों की संख्या को कम रखना चाहिए, लेकिन यह कतारों के बीच की दूरी बढ़ाकर करना चाहिए ताकि भूमि में लंबे समय तक नमी बनी रहे।

मिलवां फसल: बारानी खेती में अंतराशस्य और मिलवां फसलों को बोना लाभदायक होता है। विभिन्न फसलों को अलग-अलग कतारों में एक निश्चित अनुपात में बोना चाहिए। उपयुक्त अंतराशस्य लेने से मुख्य फसल की उपज पर कोई अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ता और लाभ में वृद्धि होती है, साथ ही सूखे के कुप्रभाव से भी बचाव होता है। अंतराशस्य हेतु एक फसल अधिक ऊंचाई वाली होनी चाहिए, दूसरी कम ऊंचाई वाली या एक फसल गहरी जड़ वाली तथा दूसरी कम गहरी जड़ों वाली।

खरपतवार नियंत्रण: खरपतवार फसल से अधिक तीव्रता से नमी का शोषण करने के साथ-साथ पोषक तत्वों का भी उपयोग करते हैं, इसलिए फसल की 20 से 25 दिन की अवस्था पर निरंतर निगरानी कर खरपतवारों को निकाल देना चाहिए। सूखे की स्थिति में भूमि की ऊपरी परत को गुड़ाभोरी करना चाहिए, ताकि संचित नमी केपिलरी ट्यूब (केशनल) द्वारा वाष्पीकरण से उड़कर नष्ट नहीं हो, और पौधों की वृद्धि में काम आए। खरपतवार नियंत्रण हेतु कुली (बक्खर) का उपयोग करें, ताकि खेत में नमी संरक्षित रहे।

उर्वरक प्रबंधन: शुष्क खेती में जैविक खाद (गोबर की खाद/कम्पोस्ट) देने से पौधों को आवश्यक पोषक तत्व मिलते हैं और भूमि की उर्वरता शक्ति लंबे समय तक बनी रहती है। भूमि की भौतिक संरचना में सुधार होता है और जल धारण क्षमता बढ़ती है। सूक्ष्म जैविक संघटक सक्रिय हो जाते हैं और पोषक तत्व पौधों को प्राप्त होते हैं। बुवाई के समय उर्वरक देने से पौधों की वृद्धि के साथ-साथ उनकी जड़ों की भी वृद्धि होती है, जिससे भूमि की गहरी सतह से भी पौधा नमी ग्रहण कर सकता है, सूखे सहन करने की क्षमता बढ़ती है और शिथिलांक (विल्टिंग पोइंट) देर से आता है। नमी अभाव में भी उर्वरक दी हुई फसल से दाना और चारे की उत्पादन प्राप्त हो जाता है, जबकि अन्य फसलें सूख जाती हैं। खाद्यान्न फसलों में नत्रजन की आधी और फॉस्फोरस की पूरी मात्रा बुवाई के समय देनी चाहिए, और शेष नत्रजन फसल की 20-30 दिन की अवस्था पर वर्षा होने पर देनी चाहिए। दलहनी फसलों में उर्वरकों की पूरी मात्रा ऊर कर देनी चाहिए। गोबर की खाद और फॉस्फोरस व सल्फर युक्त उर्वरक बुवाई पूर्व देने से दलहनी फसलों की जड़ों में गांठों की बढ़ोतरी होती है।

पौध संरक्षण: तना गलन, जड़ गलन आदि रोगों के कारण बीज कम उगते हैं, या उगकर नष्ट हो जाते हैं। खरीफ फसलों जैसे बाजरा के एक किलोग्राम बीज को 3 ग्राम थाइरम से और मूंग, मोठ के एक किलोग्राम बीज को 3 ग्राम केप्टान से उपचारित करें। बाजरा को हरित बाली रोग से बचाने के लिए 6 ग्राम एप्रोन (35 एस.डी.) से प्रति किलोग्राम बीज को उपचारित करें। ग्वार में अंगमारी रोग की रोकथाम के लिए एक ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन को 10 लीटर पानी में घोलकर 3 घंटे तक बीज को भिगाएं। सामान्यतः फसलों में रस चूसने और काटकर/कुतरकर हानि पहुंचाने वाले कीटों का प्रकोप होता है। रस चूसने वाले कीटों जैसे मोयलाध्चेंपा, तेला, थ्रिप्स, सफेद मक्खी, मकड़ी आदि कीट प्रायः पत्तियों की निचली सतह पर पाए जाते हैं। इनकी रोकथाम के लिए मिथाइल डिमेटोन 25 ई.सी., डाइमिथोएट 30 ई.सी., मोनोक्रोटोफास 36 एस.एल. आदि में से किसी एक दवा की एक लीटर मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें। इसी तरह पौधों के ऊपरी भागों को काटकर/कुतरकर खाने वाली लटों/सूंडियों, फड़का, काटरा आदि कीटों की रोकथाम के लिए क्यूनालफोस 25 ई.सी., मोनोक्रोटोफास 36 एस.एल., मैलाथाइयोन 50 ई.सी. आदि में से किसी एक दवा की एक लीटर प्रति हे. की दर से छिड़काव करें।

भारत में वर्षा आधारित खेती कृषि क्षेत्र का एक गतिशील और अभिन्न अंग है, जो खाद्य उत्पादन और ग्रामीण आजीविका में महत्वपूर्ण योगदान देता है। परिवर्तनशील वर्षा, मृदा स्वास्थ्य और जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न चुनौतियों के लिए एक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है जो पारंपरिक ज्ञान, संधारणीय प्रथाओं, सरकारी सहायता और तकनीकी हस्तक्षेपों को जोड़ती है। जैसा कि भारत कृषि विकास और खाद्य सुरक्षा के लिए अपने प्रयासों को जारी रखता है, वर्षा आधारित खेती प्रणालियों की अनूठी जरूरतों को संबोधित करना कृषक समुदाय की भलाई और समग्र रूप से कृषि क्षेत्र की लचीलापन सुनिश्चित करने के लिए सर्वोपरि रहेगा। आधुनिक तकनीकों, संधारणीय प्रथाओं और समुदाय-आधारित दृष्टिकोणों का एकीकरण भारत में वर्षा आधारित कृषि के भविष्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। इस संदर्भ में, कृषि क्षेत्र को टिकाऊ और जलवायु परिवर्तन के प्रति प्रतिरोधी बनाने के लिए वर्षा आधारित कृषि पर ध्यान केंद्रित करना अनिवार्य हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

कृषि विकास में जनसंचार माध्यम की भूमिका एवं धारणा

डॉ. देवेन्द्र कुमार मीणा हरियाणा कृषि सहायक आचार्य, कृषि प्रसार, कृषि विज्ञान केंद्र, कोटपुतली, जयपुर (राजस्थान)

जनसंचार माध्यम का तात्पर्य है कि सूचना स्रोत से सूचना को संग्राहक यानी पाठकों, श्रोताओं एवं दर्शकों तक लिखित, बातचीत और दृश्य माध्यम द्वारा प्रसारित करना। संचार माध्यम का उपयोग समाज के सभी क्षेत्रों में हर जगह प्रभावी रूप से किया जाए, किन्तु विज्ञान और प्रौद्योगिकी को भारतीय कृषि तक पहुंचाने के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

जनसंचार को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है। जैसे मुद्रित, भाषित, दृष्य माध्यम, और इन तीनों का संयोजन। जनसंचार शब्द का बहुत व्यापक अर्थ है। जनसंचार सम्बन्धित सामग्री की आवष्यकता तब होती है जब उसको कई लोगों तक पहुंचाया जा सके और उन्हें सक्रियाता के लिये प्रेरित किया जाना चाहिए, जो एक प्रमुख लाभ हैं। आकाशवाणी, दूरदर्षन, सिनेमा तथा समाचार पत्र जनसंचार माध्यम के उदाहरण हैं जिनके बड़ी संख्या में श्रोतागण होते हैं और बहुत कम लागत से प्रति व्यक्ति से सर्म्पक किया जा सकता है। जहां जनसंचार सामग्री का प्रभाव लोगों के ऊपर नई क्रियाओं को अपनाने के लिये होता है, और प्रति व्यक्ति थोड़े से मूल्य में ही इससे लाभान्वित होता है। इन सामग्रियों का प्रयोग शिक्षण और सूचना पद्धति जैसी किसी अन्य विधा में पूरक से रूप में किया जा सकता है।

सामूहिक संचार, जनसंचार की धारणा

कृषि प्रौद्योगिकी को व्यक्तिगत रूप से किसान तक पहुंचाना काफी कठिन कार्य है, मगर अधिक ग्राहयता दर को बढाने में यह अधिक कारगर है। जनसंचार अप्रत्यक्ष है और इसके फलस्वरूप किसान द्वारा कृषि क्रियाओं को अपनाने में इससे बड़ी सहायता मिलती है। दूसरी सबसे उत्तम प्रक्रिया है सामूहिक सूचना संचार और प्रायः सामूहिक रूप से पहुंचाई जाती है। इस पद्धति से किसानों से व्यक्तिगत रूप से प्रत्यक्ष सर्म्पक हो जाता है तथा सामूहिक गतिशीलता अच्छी उत्पादकता प्राप्त करने के लिए हितकर है। सामूहिक दबाव से हर व्यक्ति पर प्रभाव पड़ता है और प्रयोग की जाने वाली क्रियाओं को अपनाने के लिए उनका मार्ग प्रशस्त हो जाता है, क्योंकि जिन हितकारी समूह, स्वयं सहायी समूह तथा युवा समूह ऐसे अच्छे उदाहरण हैं जो इस सन्दर्भ में प्रभावशाली व ठोस वातावरण तैयार करते हैं।

जनसंचार माध्यम की धारणा

- जन संचार माध्यम का तात्पर्य उनसे है जो विकास एजेंटों या एजेंसियों द्वारा बड़ी संख्या में व्यक्तियों तक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सूचना पहुचाने में समर्थ हों और जिनके पास एक साधन या एकमात्र स्रोत हो।
- जन संचार चैनल वे हैं जो सन्देश प्रसारित करने के ऐसे साधन हैं जो जन माध्यम में शामिल हैं, जैसे आकाशवाणी, दूरदर्शन और समाचर पत्र आदि जो एक या कुछ व्यक्तियों के स्रोत को एक अथवा कई श्रोताओं तक पहुंचाने में समर्थ होता है।
- जन संचार माध्यम सूचना के साधन या उपकरण हैं जिनका उपयोग एक बार कई लोगों तक सूचना पहुंचाने में किया जाता है।
- जन संचार माध्यम वह उपकरण व प्रौद्योगिकि हैं जिनके द्वारा सूचना और मनोरंजन सामग्री का प्रसारण कई लोगों के उपयोग हेतु किया जाता है।

जन संचार प्रणाली की भूमिका

- सामाजिक एकता और सूचना संचार नेटवर्क
- मीडिया और प्रेरणा
- एक संतुलित सम्मिश्रण की आवश्यकता
- मीडिया एक सुसाधक है
- प्रौद्योगिकी और परम्परा का समायोजन
- सन्देश और माध्यम
- जागरूकता का संचार
- प्राथमिकताओं को निर्धारित करना
- कमियों का निराकरण

ग्रामीण युवाओं के लिए प्रसार कार्यक्रम

1. कृषि और ग्रामीण विकास एजेंसियों को व्यापक स्तर पर युवा प्रसार कार्यक्रमों को शुरू करना चाहिए जिनमें ग्रामीण युवाओं को कृशि संबंधी उन्नत क्रियाओं की जानकारी दी जाए और उन्हें स्वरोजगार उपलब्ध कराने के लिये तथा उनके परिवारों की आय वृद्धि के लिये आर्थिक कार्यकुशलता की जानकारी भी दी जानी चाहिये।
2. युवा कार्यक्रमों में विभिन्न उपयोगी प्रषिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए जैसे आधुनिक कृशि क्रियाओं की जानकारी जिससे उनका ज्ञान और कार्य कुशलता में वृद्धि हो सके। इसमें स्कूल पढ़ाई छोडे हुए ग्रामीण युवाओं को अन्य युवा समूहों की अपेक्षा प्राथमिकता से शामिल किया जाए। ग्रामीण युवकों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
3. सीमान्त और भूमिहीन परिवारों के ग्रामीण युवाओं को ऐसे कार्यक्रमों ओर गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाए जिसमें लघु फार्म आकार से रुकावट नहीं आयेगी। इनमें मुर्गी पालन, पशु एवं बकरी पालन, आंगन बगिया तथा घर के आस-पास सब्जी की खेती, छोटे तालाबों में मछली पालन आदि हो सकते हैं।
4. ग्रामीण युवा कार्यक्रमों में संगठनात्मक नेतृत्व के रूप में ग्रामीण युवाओं के योग्य और इच्छुक माता पिता को शामिल करने की आवश्यकता है तथा प्रसार कार्यकर्ताओं को भी तकनीकी सहायता और मार्गदर्शन के लिए शामिल किया जाए।
5. युवाओं के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के लिए युवा कार्यक्रमों में व्यवस्थित खेल-कूद और सांस्कृतिक कार्यकलापों का प्रावधान होना चाहिए।
6. भूमिहीन ग्रामीण युवाओं हेतु उनके खाली समय में समुदाय सेवा और मनोरंजन सबंधी गतिविधियों का समावेश करके अवसर सुलभ कराये जांए।
7. युवा कार्यक्रम में साक्षरता कार्यक्रम का भी प्रावधान होना चाहिए जिसमें कार्यकारी साक्षरता शामिल हो।

उच्च स्तरीय कृषि के लिए शिक्षित ग्रामीण युवाओं पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। ये युवा किसान केवल मुख्य सूचना प्रदायी के रूप में ही कार्य नहीं करेंगे बल्कि अनुसंधान में भी वे सक्रिय भागीदारी करेंगे।

01/2023-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

मूंग की फसल में लगने वाले प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन

बिरम सिंह गुर्जर, डॉ. पवन कुमार पारीक
सुमन शर्मा, आनंद शर्मा एवं मनीष चौधरी
विषय विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केंद्र, जालोर -| (राजस्थान)

ब्लिस्टर बीटल

पहचान

इस कीट की व्यस्क मध्यम आकार की होती है जिसका सिर, उदर एवं वक्ष गहरे काले रंग का होता है। इस कीट के पंख में नारंगी रंग के पट्टीनूमा संरचना होती है। इस कीट की व्यस्क मृदा में अण्डे देती है।

लक्षण

व्यस्क भृंग हरे पौधों के फूलों एवं हरे दानों पर आक्रमण करते है इससे दाने भरने की अवस्था प्रभावित होती है। ये भृंग एक प्रकार का पीला द्रव स्त्रावित करते है जिसे बिलिस्टर कहते है।

नियंत्रण

1. नाईट्रोजन का समुचित उपयोग करें।
2. फ्युरोमॉन एवं प्रकाश प्रंपच का उपयोग रात्री के समय व्यस्क कीटों की संख्या को निर्यत्रित करने के लिये इस्तेमाल करें।
3. जालीयुक्त नेट का इस्तेमाल करें।
4. वयस्क कीटों को केरोसीनयुक्त पानी में डालकर नष्ट करें।

चने की इल्ली

पहचान

इस कीट की लार्वा 3-5 से.मी लम्बी,एवं हरे भूरे रंग की जिसकी सतह रोमयुक्त एवं गहरी पीली धारीनूमा होती है। इसकी वयस्क मध्यम आकार की हल्के भूरा उभार लिये हुये जिसका मुख वाला अग्र पंख सुनहरा एवं हरा व पीला एवं गहरा भूरा तथा इसके शरीर के बीच में गोल धब्बानूमा पंख सफेद रंग का एवं किनारा चौडे काले रंग का होता है।

लक्षण

इस कीट के लार्वा पत्तियों पर खुरचननूमा संरचना बनाकर फलियों को छेदकरदानों को खाती हैं। इस कीट का फली को नुकसान पहुंचाते समय सिर अंदर की तरफ एवं शरीर बाहर की तरफ लटका रहता है।

नियंत्रण

गहरी ग्रीष्मकालीन जुताई करे जिससे लार्वा एवं प्यूपा सूर्य के प्रकाश द्वारा उपरी सतह पर आकर परभक्षी द्वारा नष्ट हो जावें।

1. फसलों की समय पर बुवाई करें।
2. अप्रैल-मई के महीनो में गहरी जुताई करें जिससे की कीटों के अंडे धूप के सम्पर्क में आने से नष्ट हो जाएँ
3. क्वीनॉलफॉस 25 ई.सी. 1000 मि.ली. की दर से या डेल्टामिथरीन 2.8 ई.सी. 750 मि.ली. की दर से या हिसाब से 600 से 700 लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।

3. तम्बाकू की इल्ली

इस कीट के व्यस्क पतंगों के अगले पंख सुनहरे भूरे रंग के सफेद धारियां वाले होते हैं । पिछले पंखों पर भूरे रंग की शिराएं होती है। इसकी इल्लीयां हरे मटमैले रंग की होती है जिनके शरीर पर पीले हरे एवं नारंगी रंग की लम्बवत धारियां होती है। उदर के प्रत्येक खण्ड के दोनो ओर काले धब्बे होते है।

लक्षण

इस कीट की इल्ली प्रारंभिक अवस्था में समुह में रहकर पत्तियों के पर्ण हरित पदार्थो को खाती है। जिससे पौधों की सभी पत्तियां सफेद जालीनूमा दिखाई देती है।

नियंत्रण

फसल की जालीयुक्त सफेद पत्तियां जिनमें छोटी इल्लियां समूह में रहती है और जिनको खा चुकी हैं तोड़कर नष्ट करे दें। ट्राइजाफॉस 40 ई.सी. 800 मि.ली. या क्वीनालफॉस 1-5 लीटर 750 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हे. छिड़काव करें।

एफिड (माहो)

एफिड के निम्फ एवं व्यस्क पत्तियों, तनों, फूलों एवं दानों पर एक समूह में रहते है। एफिड की व्यस्क काले रंग लिये हुए चमकदार जिसकी लम्बाई 2 मि.मी. एवं कभी कभी पंख लिये हुये होती है। एफिड के निम्फ में एक वैक्स युक्त परत चढ़ी होती है जिससे वह धूसर मटमैली दिखाई पड़ती है।

लक्षण

निम्फ एवं व्यस्क भारी संख्या में पत्तियों टहनियों एवं दानों पर दिखाई देते है। ये कोमल तनों एवं पत्तियों से रख चूसते है। पत्तियां इनके प्रभाव से सिकुडी हुई दिखाई देती है।

नियंत्रण

फास्फामिडॉन 250 मि.ली. 600 से 700 लीटर पानी में प्रति हे. के हिसाब से या मिथाईल डिमेटान 25 ई.सी. 500 मि.ली. 600 लीटर पानी में प्रति हे. छिडकाव करे।

1. शीघ्र बोवाई करें।
2. नाईट्रोजन एवं पानी की कम मात्रा का इस्तेमाल करें।

सफेद मक्खी

व्यस्क कीट 1 से 2 मि.मी. आकार के हल्के पीले रंग के होते है। इनके पंखों के उपर सफेद मोमयुक्त परत होती है। दिन के समय यह पत्तियों की निचली सतह पर पायी जाती है। शिशु गोल या अण्डाकार एवं एवं हरे सफेद रंग लिये होते है।

लक्षण

यह कीट तीन प्रकार से फसलों को नुकसान पहुंचाता है। व्यस्क एवं शिशु दोनो ही पत्तियों की निचली सतह से रस चूसते है। जिससे पौधों की वृद्धि रूक जाती है। पत्तियां पीली होकर गिरने लगती है तथा फूल एवं फलियां झड़ जाती हैं। रस चूसने के साथ साथ ये कीट एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ निकालते रहते है जो नीचे की पत्तियों पर जमा हो जाता है। ये कीट मूंग में पीला मोजेक बीमारी के वाहक का कार्य करते है।

नियंत्रण

क्वीनालफॉस 25 ई.सी.1-5 लीटर प्रति हे. 600 से 800 लीटर पानी में घोलकर छिडकाव करें। जिस क्षेत्र में पीला मोजेक बीमारी का प्रकोप हो वहां इमीडॉक्लोप्रिड द्वारा बीजोपचार करें।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

डिजिटल डिमेंशिया: युवा पीढ़ी के लिए बढ़ता खतरा

आयशा बी (शोध छात्रा), डॉ. कविता दुआ (सह-प्राध्यापक)
(संसाधन प्रबंधन एवं उपभोक्ता विज्ञान, विभाग), इंद्रा चक्रवर्ती सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार (हरियाणा)

डिजिटल डिमेंशिया एक आधुनिक समय की गंभीर समस्या बनती जा रही है, विशेष रूप से भारत जैसे देश में, जहां तकनीकी उपकरणों का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। डिजिटल डिमेंशिया एक ऐसी स्थिति है जिसमें अत्यधिक डिजिटल उपकरणों का उपयोग मस्तिष्क की क्षमता को कमजोर कर देता है। इसका सीधा असर व्यक्ति की स्मरण शक्ति, एकाग्रता, और निर्णय लेने की क्षमता पर पड़ता है।

आजकल स्मार्टफोन, टैबलेट, और कंप्यूटर हमारे जीवन का अभिन्न हिस्सा बन चुके हैं। लोगों की दिनचर्या का एक बड़ा हिस्सा डिजिटल उपकरणों पर निर्भर हो गया है। चाहे वह जानकारी सहेजना हो, संपर्क में रहना हो, या मनोरंजन, हर चीज़ के लिए लोग डिजिटल उपकरणों पर निर्भर हो रहे हैं। इससे मस्तिष्क की प्राकृतिक कार्यप्रणाली में बाधा उत्पन्न होती है। स्मरणशक्ति कमजोर होने के साथ-साथ व्यक्ति की सोचने-समझने की क्षमता भी प्रभावित हो रही है।

विशेषज्ञों का कहना है कि डिजिटल डिमेंशिया विशेष रूप से युवा पीढ़ी में तेजी से फैल रहा है। युवा अधिकतर समय सोशल मीडिया, वीडियो गेम्स, और ऑनलाइन कंटेंट पर बिताते हैं, जिससे उनकी मानसिक थकावट और भावनात्मक असंतुलन जैसी समस्याएं उभर रही हैं। इसके साथ ही, उनकी सामाजिक और व्यक्तिगत ज़िंदगी पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है, क्योंकि वे वास्तविक बातचीत और संबंधों से दूर होते जा रहे हैं।

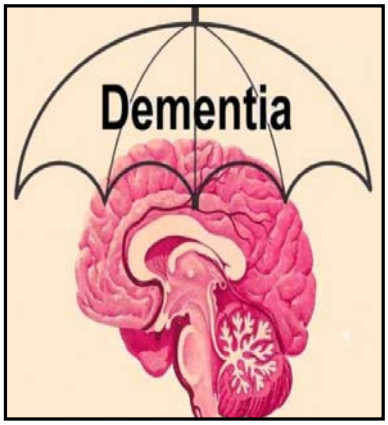

बचाव के उपाय

डिजिटल डिमेंशिया से बचने के लिए आवश्यक है कि हम अपने जीवन में डिजिटल उपकरणों के उपयोग को संतुलित करें। डिजिटल डिटॉक्स, जहां हम नियमित अंतराल पर तकनीकी उपकरणों से दूर रहते हैं, मस्तिष्क के स्वास्थ्य के लिए बेहद महत्वपूर्ण है। इसके अलावा, मानसिक गतिविधियों जैसे पढ़ाई, लेखन, ध्यान, और शारीरिक व्यायाम को अपनी दिनचर्या में शामिल करना चाहिए। नियमित शारीरिक गतिविधि, योग, और ध्यान मस्तिष्क की कार्यक्षमता को बढ़ाते हैं। इसके अलावा, पढ़ाई और काम के दौरान ब्रेक लेना भी जरूरी है, ताकि मस्तिष्क को आराम मिल सके। स्वस्थ जीवनशैली और सीमित डिजिटल उपकरणों का उपयोग इस समस्या को काफी हद तक कम कर सकता है। सामाजिक संपर्क बनाए रखने जैसे दोस्तों और परिवार के साथ समय बिताना और सामाजिक गतिविधियों में भाग लेना मस्तिष्क को स्वस्थ रखने में मदद करता है।

अंत में, डिजिटल डिवाइसों का उपयोग करते समय सही शारीरिक मुद्रा और आँखों की देखभाल का ध्यान रखना चाहिए। सही दूरी पर बैठकर डिजिटल उपकरणों का उपयोग और नियमित रूप से आँखों की जांच करवाकर डिजिटल डिमेंशिया के खतरे को कम किया जा सकता है।

भारत में इस समस्या के प्रति जागरूकता फैलाने की आवश्यकता है ताकि लोग समय रहते डिजिटल डिमेंशिया के खतरों को समझ सकें और इससे बचने के उपाय अपना सकें।

हरियाणा में राष्ट्रीय कृषि विकास योजना और कृषोन्ति योजना की राज्य स्तरीय

हरियाणा

हरियाणा के मुख्य सचिव टी.वी.एस.एन. प्रसाद की अध्यक्षता में हुई बैठक में राष्ट्रीय कृषि विकास योजना और कृषोन्ति योजना की राज्य स्तरीय स्वीकृति समिति ने आज वित्तीय वर्ष 2024-25 के लिए वार्षिक कार्य योजना को मंजूरी दी।

इस योजना में कृषि उत्पादकता को बढ़ाने , सतत खेती के तौर-तरीकों को प्रोत्साहित करने तथा बुनियादी ढांचे और मूल्य संवर्धन में रणनीतिक निवेश के माध्यम से किसानों की आजीविका बढ़ाने के लिए 1198 करोड़ 27 लाख रुपये आवंटित किए गए हैं।

राष्ट्रीय कृषि विकास योजना की कुल कार्य योजना 995 करोड़ लाख रुपये की है, जबकि कृषोन्ति योजना की कार्य योजना 203 करोड़ 27 लाख रुपये की है।

बैठक की अध्यक्षता करते हुए मुख्य सचिव ने बताया कि राष्ट्रीय कृषि विकास योजना और कृषोन्ति योजना के तहत स्वीकृत परियोजनाओं में कई प्रमुख पहलें शामिल हैं जिनमे रोहतक, झज्जर, सोनीपत, भिवानी, हिसार, जींद सहित प्रदेश के 13 जिलों में जलभराव और लवणीय मृदा के पुनर्वास के लिए 1500 लाख रुपये का आवंटन किया गया है। इसके अलावा, बावल में 125 लाख रुपये के निवेश से गाय-केंद्रित प्राकृतिक खेती मॉडल और अनुसंधान प्रयोगशाला की स्थापना की जाएगी। बागवानी फसलों की मिट्टी रहित खेती को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के पंचकूला स्थित कृषि किसान केंद्र में एक हाइड्रोपोनिक यूनिट स्थापित करने के लिए 50 लाख रुपये स्वीकृत किए गए हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
हरियाणा

मृदा उर्वरता एवं मुनाफा की दृष्टि से लाभकारी है 'ग्रीष्म मूंग'

आदर्श पांडे, शक्ति ओम पाठक एवं देवव्रत धर
एस.जी.टी. विश्वविद्यालय गुरुग्राम (हरियाणा)

परिचय : भारत में "मूंग" दाल वाली फसलों में से तीसरा सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण फसल है। 500 किलोग्राम/हेक्टेयर की औसत उपज के साथ, भारत दुनिया का सबसे बड़ा उत्पादक और मूंग का उपभोक्ता है, जो 3 से 4 मिलियन हेक्टेयर भूमि से 1.5 से 2.0 मिलियन मीट्रिक टन फसल का उत्पादन करता है। देश में उत्पादित सभी दालों का लगभग 10% से 12% मूंग है। मूंग की खेती लगभग 46 मिलियन हे. में होती है और 24 लाख मीट्रिक टन का उत्पादन होता है। इसके अतिरिक्त, यह पूरे एशिया में बड़े पैमाने पर उगाया जाता है, विशेष रूप से बांग्लादेश, भारत, थाईलैंड, कंबोडिया, वियतनाम, इंडोनेशिया, मलेशिया, दक्षिण चीन और फॉर्मोसा में, मूंग ग्रीष्म एवं खरीफ दोनो मौसम की कम समय में पकने वाली एक मुख्य दलहनी फसल है। हमारे देश में सिंचाई की व्यवस्था बढ़ने के साथ साथ मूंग के क्षेत्रफल में भी वृद्धि हुई है। पिछले कुछ वर्षों में मूंग की कम अवधि में पकने वाली किस्मों के विकास से यह सम्भव हो गया है कि रबी की फसल कटने के बाद तथा खरीफ की फसल बोने से पूर्व ग्रीष्म कालीन मूंग की फसल ली जा सकती है। भारत में मूंग का 90% से अधिक उत्पादन राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, बिहार, ओडिशा, गुजरात, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु से आता। इसका उपयोग हरी खाद एवं चारे के रूप में भी किया जाता है। गहन फसल चक्रण भी मिट्टी के कटाव को रोकने में सहायता करता है तथा मूंग के पौधों की जड़ों में पाई जाने वाली ग्रंथियां वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ाती है। अतः मूंग को फसल चक्र में सम्मिलित करके रासायनिक उर्वरक की आवश्यकता को कम किया जा सकता हैं। फली इकट्ठा करने के बाद, मूंग की फलियों को जमीन से हरे पौधों को उखाड़कर या काटकर, उन्हें छोटे टुकड़ों में काटकर, और फिर उन्हें मवेशियों को खिलाया जा सकता है मूंग का पोषण मूल्य इसे सबसे अलग बनाता है। एक सौ ग्राम मूंग के बीज 234 कैलोरी प्रदान करते हैं, साथ ही साथ अन्य पोषक तत्व जैसे, कैल्शियम 0.08 ग्राम, फॉस्फोरस 0.045, प्रोटीन 24.6%, वसा 1.0%, फाइबर 2.2 ग्राम, कार्ब्स 57.5%, विटामिन बी 300 मिलीग्राम, थियामिन 0.525 मिलीग्राम, लोहा 5.7 मिलीग्राम.

उन्नतशील प्रजातिः आर. एम. जी.-62, आर. एम. जी.-344, पूसा विशाल किस्म, टाइप-44, के.-851, जी. एम.-4, गंगा 8, आर. एम. एल.-668 और पूसा बैसाखी किस्मे है, जो अलग-अलग जलवायु के हिसाब से अधिक पैदावार देने के लिए उगाई जाती है।

खेत की तैयारी: मूंग के लिए दोमट या बलुवी दोमट भूमि सबसे उत्तम होती है। मिट्टी का पी.एच. मान 6-8 के बीच होना चाहिए। मूंग की फसल हल्के क्षारीय, लवणीय या अम्लीय क्षेत्रों में भी हो सकती है। खेत का प्रबंधन ऐसा होना चाहिए जिससे जल निकास की उचित व्यवस्था की जा सके, क्योंकि वृद्धि के लिए जल भराव की स्थिति बहुत हानिकारक होती है। जल निकास न होने से जड़ों में नाइट्रोजन को स्थिर करने वाली ग्रंथियों का निर्माण कम होता है तथा पौधो की जड़े गलने लगती हैं। मिट्टी भुरभुरी संरचना एवं उचित जल निकास वाली होनी चाहिए, जिससे आसान जड़ प्रवेश और ऑक्सीजन की अनुमति मिलती है। मूंग की फलियाँ एक टैपरोट सिस्टम विकसित करती हैं, और कॉम्पैक्ट मिट्टी जड़ के विस्तार में बाधा डाल सकती है, जिससे विकास रुक जाता है और पैदावार कम हो जाती है। अच्छी तरह से सड़ी हुई खाद जैसे कार्बनिक पदार्थों के साथ मिट्टी में नियमित रूप से संशोधन करने से इसकी उर्वराशक्ति बढ़ सकती है, जल प्रतिधारण में सुधार हो सकता है और आवश्यक पोषक तत्व प्रदान हो सकते हैं।

बुवाई: ग्रीष्म मूंग की बुवाई उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, बिहार एवं पश्चिम बंगाल में मार्च से अप्रैल के मध्य तक की जा सकती है। बुवाई का समय इस प्रकार निश्चित करना चाहिए ताकि वर्षा शुरू होने से पूर्व कटाई की जा सके अन्यथा वर्षा होने पर बीज की गुणवत्ता प्रभावित होती है। अप्रैल के बाद बुवाई करने पर फसल देर से पकती है, फलियों छोटी रह जाती है तथा दाने भी छोटे रह जाने के कारण बीज की पैदावर तथा गुणवत्ता दोनों प्रभावित होती है। मार्च-अप्रैल (गर्मियों) में बुवाई हेतु 20-25 किग्रा. तथा जुलाई (खरीफ) में बुवाई के लिए 15-18 किग्रा0 बीज एक हैक्टेयर के लिए पर्याप्त रहता है पंक्ति से पंक्ति की दुरी 30 से.मी. पौधे से पौधे की दुरी 10 से.मी. पर्याप्त है। बुवाई से पूर्व बीज को कीट तथा व्याधियों से बचाने के लिए उपचार अति आवश्यक है। बीज को बोन से पूर्व कवकनाशी जैसे-बाविस्टीन या थायरम 2.5 ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर से उपचारित करके धूप में सुखाकर लगभग 6 घन्टे बाद दीमक के बचाव हेतु 2 मिली. क्लोरोपायरीफोस प्रति किग्रा. बीज की दर से उपचारित करने के एक दिन बाद राइजोबियम कल्चर से उपचारित करके, अच्छी प्रकार धूप में सुखाकर बुवाई करनी चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधन: आवश्यक तत्वों में से, दलहनी फसलों के लिए विशेष रूप से पर्याप्त मात्रा में फास्फोरस, कैल्शियम, मैग्नीशियम, सल्फर, मोलिब्डेनम की आवश्यकता होती है। विकास को प्रोत्साहित करने और नोड्यूल, फली गठन और अनाज सेटिंग के आकार को बढ़ाने के लिए कैल्शियम और मैग्नीशियम की आवश्यकता होती है। नोड्यूलेशन और प्रोटीन संश्लेषण के लिए सल्फर की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिए मोलिब्डेनम और प्रजनन के लिए बोरान की आवश्यकता होती है। मूंग की फसल में 15-20 किग्रा. नाइट्रोजन और 40-50 किग्रा. फास्फोरस प्रति हैक्टेयर देना चाहिए। रिपोर्टों के अनुसार, विभिन्न जैविक स्रोतों के साथ उर्वरक के अनुप्रयोग को एकीकृत करके उच्च फसल उपज, मिट्टी की गुणवत्ता और मिट्टी की उत्पादकता को बनाए रखा जा सकता है। वर्मीकम्पोस्ट एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन का एक हिस्सा है और इसे गैर-भारी, कम लागत वाले पौधों के उर्वरकों का एक किफायती, नवीकरणीय और पर्यावरणीय रूप से स्वीकार्य स्रोत माना जाता है जो भारत की टिकाऊ कृषि प्रणाली में पोषक तत्वों की भरपाई करते हैं। जो केंचुओं द्वारा जैविक अपशिष्ट और पौधों के अवशेषों से बनाई जाती है।

सिंचाई: मूंग की बुवाई से पहले खेत की पलेवा (फसल बोने से पूर्व सिंचाई) करनी चाहिए। इससे खेत में बीजों का अंकुरण अधिक बेहतर होता है। बीज फसल में पुष्पन से पूर्व एवं दाना भरने के समय दो सिंचाईयां करना अति आवश्यक होता है। इससे उपज भी अधिक मिलती है एवं बीज की गुणवत्ता भी बनी रहती है। यदि विकास के दौरान अपर्याप्त वर्षा होती है, तो अच्छी फसल उत्पादन हेतु सिंचाई आवश्यक हो जाती है। ग्रीष्मकालीन/वसंत मूंग के लिए, 2-3 सिंचाई की सिफारिश की जाती है, जो बुवाई के 20-25 दिन बाद शुरू होती। यदि ग्रीष्मकालीन मूंग की फसल में पानी की कमी के लक्षण दिखाई दे तो सिंचाई कर देनी चाहिए क्योंकि ग्रीष्म ऋतु में तापमान अधिक होने एवं वायुमंडल में आर्द्रता कम होने पर अधिक सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। फलियां पकने के समय पानी की आवृति कम कर देनी चाहिए अन्यथा फसल के एक साथ पकने में बाधा आती है। जब 75% फलियाँ पक जाए, सिचाई बंद कर देनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण: मूंग के प्रमुख खरपतवार मोथा, चौलाई, सांवाधार, सांठी, मकरा, बादरा, मकोई, हरहुई, चिलमिली एवं भिगरी है। खरपतवार प्रतियोगिता की महत्वपूर्ण अवधि खरपतवार प्रतिस्पर्धा के प्रति संवेदनशील फसल वृद्धि की अवधि है जहां दोनों फसलें पोषक तत्वों, प्रकाश, स्थान और पानी जैसे संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा करती हैं। खरपतवार तेजी से बढ़ते हैं और उपलब्ध संसाधनों को अपना लेते हैं, जिससे फसल भुखमरी और उपज का नुकसान होता है। अध्ययनों से पता चलता है कि खरपतवार मूंग की उपज को 30-50% तक कम कर सकते हैं, इस अवधि के दौरान खरपतवारों को नियंत्रित करके संभावित उपज हानि को कम किया जा सकता है। गर्मियों में, खरपतवार 46-53% की उपज हानि का कारण बन सकते हैं। मूंग की खेती में खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए रासायनिक खरपतवार नियंत्रण एक अधिक किफायती और प्रभावी तरीका है। यह महत्वपूर्ण चरणों के दौरान खरपतवार मुक्त स्थिति प्रदान करता है और उत्पादन लागत को कम करता है। खरपतवारों के लिए उनकी चयनात्मकता के कारण शाकनाशी का उपयोग पूर्ण नियंत्रण के लिए किया जाता है। अध्ययनों से पता चला है कि फसल बोने से पूर्व पेंडीमेथालिन और फसल बोने के बाद इमेजथापायर के उपयोग के परिणामस्वरूप पौधे की ऊंचाई अधिक होती है, नोड्यूल शुष्क वजन, और उच्च खरपतवार नियंत्रण दक्षता और मूंग में अनाज और ढेना पैदावार होती है। कुल मिलाकर, खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए रासायनिक खरपतवार प्रबंधन सबसे अच्छा और आर्थिक रूप से व्यवहार्य तरीका है।

बीमारी और कीट नियंत्रण: मूंग की फसल में कई कीट लगते हैं, जो पौधों के विभिन्न भागों (अंकुर या रोगाणु, पत्तियां, तना, फूल, कलियाँ और फलियाँ आदि) को महत्वपूर्ण नुकसान पहुँचाते हैं। आमतौर पर, विभिन्न कीट मूंग की फसल की पूरी वानस्पतिक वृद्धि अवस्था में उसे नुकसान पहुंचा सकते हैं और उपज को भी गंभीर नुकसान पहुंचा सकते हैं। भारत में, मूंग पर कीटों की 64 से अधिक प्रजातियों का हमला होता है। सबसे महत्वपूर्ण में तना मक्खियाँ, फली छेदक, चित्तीदार फली छेदक, फली बग, पिस्सू भृंग, एफिड्स, थ्रिप्स, सफेद मक्खियाँ, पत्ती हॉपर और बालों वाले कैटरपिलर शामिल हैं। एन्थ्रेक्नोज, बैक्टीरियल लीफ ब्लाइट, सर्कोस्पोरा लीफ स्पॉट, पाउडरी फफूंदी, जड़ सड़न और लीफ ब्लाइट, जंग और मैक्रोफोमिना ब्लाइट कुछ बीमारियाँ हैं। इनमें से प्रत्येक क्रमशः 30-50% उपज हानि का कारण बन सकता है। ये रोग पत्तियों, तनों, फलियों और जड़ों को प्रभावित करते हैं और घाव, झुलसा और मुरझाने जैसे लक्षण प्रदर्शित करते हैं। मूंग की फसलों को इस प्रकार के नुकसान से बचाने के लिए प्रभावी प्रबंधन आवश्यक हैं। एकीकृत कीट प्रबंधन को लागू करना, प्रतिरोधी किस्मों को नियोजित करना और कवकनाशी और कीटनाशकों का समय पर उपयोग करना।

कटाई, गहाई और उपजः फसल तीन महीने में कटाई के लिए आती है। हालांकि, शुरुआती बदलाव 60 से 65 दिनों में परिपक्व होंगे। फली को टूटने से बचाने के लिए, फसल को मृत-पकने से पहले काटा जाता है। पौधों को दरांती से उखाड़ दिया जाता है या जमीनी स्तर से ऊपर काट दिया जाता है, लगभग एक सप्ताह तक थ्रेसिंग फर्श पर सुखाया जाता है। फली की एक या दो हैंडपिकिंग भी आम हैं। उपज को साफ किया जाता है और लगभग 12% नमी सामग्री तक धूप में सुखाया जाता है। भंडारण कीटों के भंडारण और नियंत्रण की विधि अन्य दालों के समान है।

निष्कर्षः ग्रीष्मकालीन मूंग की खेती वायुमंडलीय नाइट्रोजन को पौधों के अनुकूल रूपों में परिवर्तित करके मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाती है जिससे सिंथेटिक नाइट्रोजन उर्वरकों की आवश्यकता कम हो जाती है। इसकी गहरी जड़ प्रणाली मिट्टी की संरचना और वातन में सुधार करती है। समग्र स्वास्थ्य को बढ़ाती है। ग्रीष्मकालीन मूंग की खेती आर्थिक रूप से लाभप्रद है, जिसमें कम इनपुट लागत और घरेलू और अंतरराष्ट्रीय बाजारों में उच्च मांग है। यह स्थायी कृषि प्रथाओं के साथ संरेखित करता है, और पर्यावरण के अनुकूल कृषि विधियों का समर्थन करता है। मूंग का दुनिया भर में सेवन किया जाता है क्योंकि यह सूक्ष्म पोषक तत्वों का एक स्रोत है और इसमें औषधीय गुण भी होते है। मूंग बीन्स भी पोषण से भरपूर होते हैं, प्रोटीन, फाइबर, विटामिन और खनिज प्रदान करते हैं। खाद्य सुरक्षा और पोषण में योगदान करते हैं। पोषण संबंधी कारकों के अलावा, इसमें पॉलीफेनोल, टैनिन, ओलिगोसेकेराइड जैसे एंटीन्यूट्रिशनल कारक होते हैं, जिनमें एंटीऑक्सीडेंट जैसे शक्तिशाली स्वास्थ्य को बढ़ावा देने वाले प्रभाव होते हैं। कई जांचों से पता चलता है कि मूंग के विभिन्न हिस्सों से निकाले गए विभिन्न अर्क, बायोएक्टिव यौगिकों या प्रोटीन आइसोलेट्स में महत्वपूर्ण स्वास्थ्य-बढ़ाने वाले प्रभाव होते हैं। इसके अलावा, इस फसल की कम जल सेवन की आवश्यकता होती है, जो संयंत्रों के पानी की बचत में मदद करता है और पानी की संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान देता है। इस प्रकार, ग्रीष्म मूंग की खेती मृदा उर्वरता, मुनाफा, और पानी की संरक्षण के साथ-साथ किसानों की आर्थिक वृद्धि में भी मदद कर सकती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
हरियाणा

माँ और बच्चे के लिए स्तनपान के फायदे

ज्योति सिहाग मानव विकास और पारिवारिक अध्ययन विभाग, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार (हरियाणा)

स्तनपान क्या होता है

जब माँ के द्वारा बच्चे को दूध पिलाया जाता है उसे स्तनपान कहते है। नवजात शिशु से लेकर कुछ वर्ष के बच्चो को सिर्फ माँ का ही दूध पिलाया जाता है डॉक्टर 6 महीने तक के बच्चो को स्तनपान कराने की सलाह देते है इस दूध में बच्चे के लिए सभी पोषण व तत्व भरपूर मात्रा में पाए जाते है इसी प्रक्रिया को ब्रेस्टफीडिंग अर्थात् स्तनपान कहते है।

बच्चे को भूख लगने का संकेत

नवजात शिशु या कुछ वर्ष के बच्चे भूख लगते समय या किसी भी जरूरत के लिए बोल नहीं पाते है वह सिर्फ संकेत देते है। यह संकेत निम्नलिखित है।

1. बच्चे का अधिक रोना: छोटे बच्चे बोल पाने में असमर्थ होते है लेकिन जब इन बच्चो को भूख लगती है तब यह रोते हुए भूख लगने का संकेत देते है और माँ के स्तनपान करने पर बच्चे चुप हो जाते है

2. इशारे करना: जब बच्चे को भूख लगती है तब वह इशारे करते हुए अपनी बातों को समझाने की कोशिश करते है, बच्चे माँ के स्तन की ओर इशारा करते हुए भूख का संकेत देते है।

3. गुस्से में हाथ पैर मारना: बच्चो को अधिक भूख लगने पर या इशारे ना समझने पर बच्चे गुस्से में हाथ पैर मारने लगते है इस संकेत से समझ जाना चाहिए कि बच्चे को भूख लग रही है।

बच्चो के लिए स्तनपान के फायदे

1. बच्चो को अनेक रोगों से बचाने, प्रतिरक्षा प्रणाली मजबूत करने, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में स्तनपान ही मददगार साबित होता है।

2. जो बच्चे स्तनपान करते है उनका मस्तिष्क का विकास तेजी से होता है।

3. जब माँ बच्चो को स्तनपान कराती है तो माँ के गर्भाशय और अंडाशय के कैंसर होने की संभावना कम रहती है।

4. माँ का स्तनपान बच्चे की शारीरिक वृद्धि, विकास और संतुलित पोषण व आहार प्रदान करता है।

माँ के लिए स्तनपान कराने के फायदे

1. घाव का जल्दी भरना: जब माँ बच्चे को जन्म देती है तो उनके शरीर में कई घाव व दर्द बना रहता है लेकिन स्तनपान कराने की वजह से यह दर्द व घाव जल्दी से भर जाते है।

2. माँ और बच्चो के बीच बेहतर सम्बन्ध: मां और बच्चो के बीच स्तनपान बेहतर सम्बन्ध बनाता व रिश्ते भी मजबूत करता है

3. वजन का नियंत्रण में रहना: प्रेग्नेंसी के समय माँ का वजन बढ़ने लगता है लेकिन स्तनपान कराने की वजह से कैलोरी कम होती है जिससे बढ़ते वजन को नियंत्रित किया जा सकता है।

4. हार्मोन का संतुलित होना: स्तनपान कि वजह से माँ के हार्मोन संतुलित रहते है जिसके कारण माँ को अधिक ऊर्जा प्राप्त होती है साथ ही कील- मुंहासे होने की संभावना कम बनी रहती है।

स्तनपान कराने के सही तरीके

उल्टे हाथ की दिशा: यदि माँ सीधे स्तन से बच्चे या नवजात शिशु को स्तनपान करा रही है तो बच्चे को उसके विपरीत दिशा यानी उल्टे हाथ से पकड़ा जाता है और सीधे हाथ से स्तन को पकड़कर बच्चे या नवजात शिशु को स्तनपान कराया जाता है।

पीठ के बल लेटकर: यदि माँ थकान महसूस कर रही है या घर में ही बच्चे को स्तनपान करा रही है तो मां पीठ के बल लेटकर बच्चे को अपने ऊपर लेटाकर स्तनपान करा सकती है। इस तरीके से नवजात शिशु या बच्चा आसानी से दूध पी सकता है।

गोदी में बैठाकर स्तनपान कराना: गोदी में बैठाकर बच्चे को स्तनपान कराने के तरीके को क्रॉस क्रेडिल कहते है यह तरीका सबसे उच्च माना गया है इसमें मां को पहले संतुलित स्थिति में बैठना होता है फिर बच्चे को गोदी में लेटाकर और उसके सिर को माँ के एक हाथ से सहारा देकर स्तनपान कराया जाता है।

पहली बार माँ बनने के दौरान स्तनपान कराने के टिप्स

पहली बार माँ बनने के बाद नवजात शिशु को दूध या स्तनपान कराने के टिप्स माँ को नहीं पता होते है यह सभी टिप्स निम्नलिखित है-

- माँ को ऐसे कपड़े पहनने चाहिए जिससे नवजात शिशु को आसानी से स्तनपान कराया जा सके जैसे हल्के से ढीले टीशर्ट या खींचाव वाले कपड़े और आगे से खुलने वाली कमीज़ या कुर्ती।
- माँ को अपने साथ दुप्पटा रखना चाहिए जिससे बच्चे को स्तनपान के समय ढक सके।
- स्तनपान के समय बच्चे के सिर या पीठ को सहारा देना आवश्यक होता है।
- बच्चे को स्तनपान कराने से पहले माँ को दोनों स्तन साफ कपड़े से पोंछ लेना चाहिए।
- यदि किसी माँ के स्तन से स्तनपान कराने के बाद दूध टपकता है तो उन्हें अपने साथ टिश्यू पेपर या वॉशेबल ब्रेस्ट पैड का प्रयोग करना चाहिए।
- यदि किसी माँ की डिलीवरी सी सेक्शन या सर्जरी से हुई हो तो स्तनपान कराने में माँ को कठिनाई होती है ऐसी स्थिति में अस्पताल में उपस्थित डॉक्टर या नर्स की सहायता अवश्य ले।
- स्तनपान कराने के अलग अलग तरीके है लेकिन बच्चा जिस तरीके में आराम महसूस करता है उसी तरीके से बच्चे को स्तनपान कराया जाए

स्तनपान के लिए चिकित्सक विचार या सलाह लेना जरूरी है या नहीं

यह कुछ स्थिति निम्नलिखत है जब स्तनपान कराने से बच्चे को नुकसान भी हो सकता है

- यदि माँ एचआईवी पॉजिटिव है तो बच्चे को स्तनपान नहीं कराना चाहिए क्योंकि एचआईवी के संक्रमण दूध के जरिए बच्चे तक पहुंच सकता है
- माँ को कैंसर रोग का इलाज के लिए कीमोथेरेपी की गई हो तब बच्चे को स्तनपान नहीं कराना चाहिए।
- माँ को टीबी रोग होना
- माँ अवैध ड्रग्स यानी कोकेन का इस्तेमाल करती हो तो इस स्थिति में भी स्तनपान नहीं कराना चाहिए।

स्तनपान के साथ आने वाली कुछ सामान्य कठिनाइयां

1. दूध वाहिनी में रुकावट आना

माँ के शरीर में दूध का उत्पादन एल्वियोली द्वारा होता है और दूध एरियोला के अन्तर्गत इकट्ठा करता है। स्तनपान के दौरान बच्चा एरियोला को चूसता है लेकिन दूध वाहिनी एल्वियोली में रुकावट आने की वजह से बच्चा स्तनपान नहीं कर पाता है। दूध वाहिनी में रुकावट आने की वजह से मां के स्तन में सूजन या गांठ बन जाती हैं जिसे छूने पर मां को दर्द महसूस होता है।

2. निपल्स में उभार ना होना

कई माँ के निपल्स में उभार नहीं होता यानी यह निपल्स अंदर को या चपटे हुए होते है जिसके कारण बच्चे को स्तनपान के समय परेशानी का सामना करना पड़ता है और बच्चा सही से दूध नहीं पी पाता है।

3. रूखे व निप्पल में क्रैक होना

जब नवजात शिशु या बच्चो को सही स्थिति या तरीके से स्तनपान नहीं कराया जाता है तो निप्पल में रूखापन व क्रैक की समस्या सामने आती है।

4. माँ के स्तन में दूध कम आना

जब माँ के शरीर में कमजोरी , थायरॉइड और हार्मोन का संतुलन सही नहीं रहता है तब माँ के स्तन से दूध कम निकलता है जिसके कारण बच्चे का पूरा पेट नहीं भर पाता है।

मां का दूध एंटीबॉडी और इम्यून फैक्टर्स से भरपूर होता है, जिसकी वजह से शिशु का सांस, गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल संबंधी बीमारियों और संक्रमणों से बचाव होता है। पोषक तत्वों से भरपूर मां का दूध बच्चे की प्रतिरक्षा प्रणाली मजबूत करने में मदद करता है। ऐसा इसलिए क्योंकि मां का दूध बच्चे के संपूर्ण विकास के लिए काफी जरूरी होता है। बच्चे को अपना दूध पिलाने से न सिर्फ शिशु को, बल्कि मां को भी कई सारे फायदे मिलते हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मेघालय

'कृषि में क्रांति: CRISPR/Cas तकनीक और फसल सुधार पर उसका प्रभाव'

नीलेश विमल M.Sc. Scholar (Plant Molecular Biology & Biotechnology) CPGS-AS, (Central Agricultural University-Imphal), Umiam, (Meghalaya)

कैलाश सिंह M.Sc. (Agronomy), RVSKVV, Gwalior (M.P.)

परिचय: कृषि-जीनोमिक्स में सी.आर.आई.एस.पी.आर./सी.ए.एस.(CRISPR/Cas) प्रौद्योगिकी (तकनीक) के आगमन ने फसल की खेती के क्षेत्र में एक आदर्श बदलाव लाया है। इस नवीन तकनीक में फसलों को उगाने के हमारे तरीके को बदलने, उन्हें अधिक लचीला, उत्पादक और टिकाऊ बनाने की क्षमता है। **CRISPR/Cas** तकनीक सटीक जीनोम संपादन के लिए एक शक्तिशाली उपकरण है, जो वैज्ञानिकों को फसलों में वांछनीय लक्षणों को पेश करने और अभूतपूर्व सटीकता और दक्षता के साथ अवांछनीय लक्षणों को खत्म करने में सक्षम बनाता है।

सी.आर.आई.एस.पी.आर. (CRISPR/Cas) के पीछे का विज्ञान

CRISPR/Cas एक प्रकार का आर.एन.ए.-निर्देशित डी.एन.ए. एंडोन्यूक्लीज़ है जिसे सटीक जीनोम संपादन के लिए पुनर्निर्मित किया गया है। प्रणाली में दो मुख्य घटक होते हैं: एक छोटा RNA अणु जिसे गाइड आर. एन. ए. (gRNA) कहा जाता है और एक एंडोन्यूक्लीज़ एंजाइम जिसे CAs9 कहा जाता है। gRNA को एक विशिष्ट DNA अनुक्रम को पहचानने हेतु क्रमादेशित किया जाता है, और Cas9 एंजाइम उस स्थान पर को काटता है। यह डीएनए में एक डबल-स्ट्रैंडेड ब्रेक बनाता है, जिसे कोशिका की प्राकृतिक मरम्मत मशीनरी दो मुख्य मार्गों में से एक के माध्यम से ठीक कर सकती है: **गैर-समरूप अंत जुड़ाव (NHEJ- Non Homologous End Joining) या समरूप पुनर्संयोजन। (HR-Homologous Recombination).**

फसल सुधार में अनुप्रयोग

फसल सुधार में CRISPR/Cas तकनीक प्रणाली के कई अनुप्रयोग हैं, जिनमें शामिल हैं:

रोग प्रतिरोध: CRISPR/Cas तकनीक का उपयोग फसलों में रोग प्रतिरोधी जीन पेश करने, कीटनाशकों की आवश्यकता को कम करने और फसल की पैदावार में सुधार करने के लिए किया जा सकता है।

सूखा सहिष्णुता-वैज्ञानिक फसलों में सूखा सहिष्णु जीन पेश करने के लिए **CRISPR/Cas** तकनीक का उपयोग कर सकते हैं, जिससे वे पानी की कमी वाले वातावरण में पनपने में सक्षम हो सकते हैं।

उपज में वृद्धि: CRISPR/Cas तकनीक का उपयोग ऐसे जीन पेश करने हेतु किया जा सकता है जो उपज में वृद्धि को बढ़ावा देते हैं। फसल उत्पादकता में सुधार करते हैं और कृषि के पर्यावरणीय प्रभाव को कम करते हैं।

पोषण संवर्धन: CRISPR/Cas तकनीक का उपयोग उन जीनों को पेश करने के लिए किया जा सकता है जो फसलों की पोषण सामग्री को बढ़ाते हैं, मानव स्वास्थ्य और पोषण में सुधार करते हैं।

कीट प्रतिरोध: CRISPR/Cas तकनीक का उपयोग फसलों में कीट प्रतिरोधी जीन पेश करने, कीटनाशकों की आवश्यकता को कम करने और फसल की पैदावार में सुधार करने के लिए किया जा सकता है।

कृषि-जीनोमिक्स में CRISPR/Cas तकनीक के लाभ

CRISPR/Cas तकनीक प्रणाली पारंपरिक प्रजनन तकनीकों पर कई लाभ प्रदान करती है, जिनमें शामिल हैं:

परिशुद्धता: CRISPR/Cas तकनीक जीनोम के सटीक संपादन की अनुमति देता है, जो लक्ष्य से बाहर के प्रभावों के जोखिम को कम करता है।

दक्षता: CRISPR/Cas तकनीक फसलों में वांछनीय लक्षणों को पेश करने के लिए एक त्वरित और कुशल विधि है।

कार्यक्षमता: CRISPR/Cas तकनीक का उपयोग एक ही फसल में कई लक्षणों को पेश करने के लिए किया जा सकता है, जिससे कई प्रजनन चक्रों की आवश्यकता कम हो जाती है।

लागत प्रभावीता: CRISPR/Cas तकनीक फसल सुधार के लिए एक लागत प्रभावी विधि है, जिससे व्यापक प्रजनन कार्यक्रमों की आवश्यकता कम हो जाती है।

चुनौतियां और सीमाएं

जबकि CRISPR/Cas तकनीक में फसल की खेती में क्रांति लाने की क्षमता है, **कई चुनौतियां और सीमाएं हैं जिन पर ध्यान दिया जाना चाहिए, जिनमें शामिल हैं:**

नियामक तंत्र: CRISPR/Cas तकनीक के लिए नियामक तंत्र अभी भी विकसित हो रहा है और देश के अनुसार बदलता रहता है, जिससे शोधकर्ताओं और उद्योग के हितधारकों के लिए अनिश्चितता पैदा होती है।

लक्ष्य से बाहर के प्रभाव: CRISPR/Cas तकनीक के लक्ष्य से बाहर के प्रभाव हो सकते हैं, जिससे अनपेक्षित परिणाम हो सकते हैं।

जीन प्रवाह: आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलों से गैर-लक्षित प्रजातियों में जीन प्रवाह के पारिस्थितिकी तंत्र पर अनपेक्षित परिणाम हो सकते हैं।

सार्वजनिक धारणा: आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलों की सुरक्षा और नैतिकता के बारे में बहस चल रही है, जो जनता की धारणा और गोद लेने को प्रभावित कर सकती है।

भविष्य की दिशाएं

कृषि-जीनोमिक्स में **CRISPR/Cas** तकनीक का भविष्य आशाजनक है, जिस पर चल रहे शोध केंद्रित हैं:

दक्षता में सुधार: शोधकर्ता **CRISPR/Cas** तकनीक प्रणाली की दक्षता में सुधार करने, लक्ष्य से बाहर के प्रभावों को कम करने और परिशुद्धता बढ़ाने के लिए काम कर रहे हैं।

अनुप्रयोगों का विस्तार: पशुधन और जलीय कृषि में सुधार के साथ-साथ नवीन जैव सामग्री के विकास में इसकी क्षमता के लिए CRISPR/Cas तकनीक का पता लगाया जा रहा है।

विनियामक चुनौतियों का समाधान: शोधकर्ता और उद्योग हितधारक विनियामक चुनौतियों का समाधान करने के लिए काम कर रहे हैं, जिससे फसलों के विकास और परिनियोजन के लिए एक स्पष्ट ढांचा सुनिश्चित किया जा सके।

सार्वजनिक जुड़ाव बढ़ाना: सार्वजनिक जुड़ाव और CRISPR/Cas तकनीक की समझ बढ़ाने, चिंताओं को दूर करने और अभिग्रहण लेने को बढ़ावा देने के प्रयास किए जा रहे हैं।

निष्कर्ष

CRISPR/Cas तकनीक में खाद्य फसल की खेती के परिदृश्य में क्रांति लाने की क्षमता है, जो अधिक लचीला, उत्पादक और टिकाऊ फसलों के विकास को सक्षम बनाती है। जबकि चुनौतियों और सीमाओं को संबोधित किया जाना है, CRISPR/Cas तकनीक लाभ इसे कृषि के भविष्य के लिए एक रोमांचक और आशाजनक तकनीक बनाते हैं। जैसे-जैसे शोध आगे बढ़ रहा है, यह संभावना है कि CRISPR/Cas पर तकनीक वैश्विक खाद्य सुरक्षा और स्थिरता सुनिश्चित करने में तेजी से महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
बिहार

लकड़ी की कलाकृतियां: गरीबों के लिए आय का एक स्त्रोत

डॉ. सौरभ शर्मा (संकाय)
ऋषव कुमार (बीएससी चौथे वर्ष के छात्र-वानिकी विभाग)
डॉ. रमेश कुमार झा (डीन) पंडित दीन दयाल उपाध्याय बागवानी एवं वानिकी महाविद्यालय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पीपराकोठी, ई. चंपारण (बिहार)

परिचय

कड़ी की कलाकृतियाँ वे वस्तुएँ हैं जो मनुष्यों द्वारा लकड़ियों से बनाई जाती हैं, जिनमें सरल उपकरण से लेकर कला के जटिल काम तक शामिल हैं। लकड़ी की कलाकृतियों में लकड़ी से बनी वस्तुओं की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है, जैसे कुर्सियां और मेज, उपकरण और संगीत वाद्ययंत्र, पेंटिंग और मूर्तियां, वास्तुशिल्प तत्व, जहाज और गाड़ियाँ, घरेलू बर्तन, धार्मिक वस्तुएँ, खिलौने और लेखन उपकरण। ये कलाकृतियाँ उपयोगी, सुंदर, व्यावहारिक या प्रतीकात्मक हो सकती हैं, जो रोजमर्रा की जिंदगी, संस्कृति और इतिहास में लकड़ी के विभिन्न अनुप्रयोगों को दर्शाती हैं। आधुनिक युग में, लकड़ी की कलाकृतियों का उपयोग सजावटी उद्देश्यों, सौंदर्य सौंदर्य, सांस्कृतिक और आर्थिक मूल्य के लिए किया जाता है।

ऐतिहासिक महत्व

लकड़ी, लोगों द्वारा उपयोग की जाने वाली पहली सामग्रियों में से एक है, जिसे पूरे इतिहास में कई अलग-अलग वस्तुओं में आकार दिया गया है। वस्तुओं को बनाने में लकड़ी का व्यापक उपयोग मानव समुदायों में इसकी ऐतिहासिक प्रासंगिकता पर जोर देता है, पुरानी शिल्प कौशल और सांस्कृतिक व्यवहार में अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। भारत में लकड़ी पर नक्काशी की प्रथाएं सदियों से विकसित हुई हैं और यह कौशल, रचनात्मकता और आध्यात्मिक महत्व का शानदार उल्लेखनीय मिश्रण दिखा रही है। लकड़ी की कलाकृतियों का इतिहास लगभग 5000 वर्ष पुराना है। हस्तशिल्प के सबसे पुराने रिकॉर्ड सिंध और सिंधु घाटी सभ्यता में मोएन जो दारो के समय के हैं, जो लगभग 3000 और 1700 ईसा पूर्व के बीच अस्तित्व में थे।

लकड़ी के हस्तशिल्प

हस्तशिल्प शब्द दो शब्दों हस्त+शिल्प से मिलकर बना है। हस्त का अर्थ है हाथ या साधारण औजारों और शिल्प का उपयोग करके बनाई गई एक अनूठी अभिव्यक्ति जो किसी देश की संस्कृति, परंपरा और विरासत से संबंधित है। एक लकड़ी की कलाकृति/हस्तशिल्प एक ऐसी प्रक्रिया द्वारा बनाई जाती है जो प्राकृतिक तत्वों को मानव शिल्प कौशल के साथ जोड़ती है। लकड़ी के हस्तशिल्प मुख्य रूप से फर्नीचर, प्राचीन वस्तुएँ, उपहार आइटम, सहायक उपकरण, सजावटी सामान जैसी श्रेणियां हैं। इसकी शुरुआत टिकाऊ वानिकी तकनीकों से होती है जो यह सुनिश्चित करती है कि हम अपने मूल्यवान जंगलों को नष्ट किए बिना लकड़ी इकट्ठा कर सकते हैं। इसमें पेड़ों को सावधानीपूर्वक चुनना और काटना शामिल है, जिससे उपभोग और संरक्षण के बीच संतुलन बनाते हुए जंगल को फिर से विकसित होने की अनुमति मिलती है।

लकड़ी के हस्तशिल्प के लिए सबसे अधिक उपयोग की जाने वाली प्रजातियां-हस्तशिल्प उद्योग में तीन सबसे अधिक उपयोग की जाने वाली लकड़ियाँ हैं शीशम (डेलबर्गिया सिस्सू), आम (मंगिफेरा इंडिका) और बबूल (बबूल एसपीपी.)। अन्य छोटी लकड़ियों में ओक (क्वेरकस एसपीपी.) और सागौन (टेक्टोना एसपीपी.) शामिल हैं, जिनका उपयोग कुल लकड़ी की खपत का 1.98% और 8.60% है।

लकड़ी के हस्तशिल्प के निर्माण की प्रक्रियाएं

लकड़ी के हस्तशिल्प बनाने की प्रक्रिया में कई चरण शामिल होते हैं।

- सबसे पहले, लकड़ी का सावधानीपूर्वक चयन किया जाता है, यह प्राथमिक चरण है जिसमें बनाई जाने वाली हस्तशिल्प के अनुसार उपयुक्त प्रजातियों का चयन किया जाता है।
- दूसरा चरण, लकड़ी का रूपांतरण जिसमें पेड़ों को टुकड़ों में काटना शामिल है जिन्हें लकड़ी कहा जाता है। लकड़ी के तख्तों के रूप में खरीदी जाती है जो न्यूनतम 4-5 इंच चौड़ी और औसत लंबाई 3-6 फीट के बीच होती है।
- तीसरा चरण, उपचार और लकड़ी का सूखना है जहां लकड़ी को उपचार प्रक्रिया में मानक रसायनों का उपयोग करके उपचार संयंत्र में रासायनिक रूप से उपचारित किया जाता है, बोरेक्स जैसे रसायन, अन्य पर्यावरण के अनुकूल और दीमक रोधी रसायनों को लकड़ी पर दबाव के साथ लगाया जाता है ताकि इसे टिकाऊ और विरोधी बनाया जा सके। दीमक उपचार के बाद, जो लकड़ी अब गीली हो गई है, उसे भट्ठा सीज़निंग या संतुलन नमी सामग्री (ई.एम.सी.) पर वायु सीज़निंग जैसी विधियों का उपयोग करके लकड़ी को सुखाने और सीज़न करने की आवश्यकता है।
- चौथा चरण, सैंडिंग जिसमें लकड़ी के खुरदरेपन को दूर करने के लिए सैंडपेपर और सैंडिंग मशीन की मदद से सतह को चिकना करना शामिल है।
- अंत में, संयोजन चरण में तैयार लकड़ी का उपयोग आवश्यक हस्तशिल्प बनाने के लिए किया जाता है।

भारत में लकड़ी के हस्तशिल्प की स्थिति

भारत के उत्तरी राज्य में लकड़ी के काम की एक समृद्ध परंपरा है। पंजाब के क्षेत्र उत्कृष्ट लकड़ी के हस्तशिल्प फर्नीचर हैं। कश्मीर अखरोट (जुग्लान्स रेजिया) के पेड़ से बनी कलाकृतियों के लिए प्रसिद्ध है। छत्तीसगढ़ के कारीगर मुखौटे, दरवाजे, खिड़की के फ्रेम और मूर्तियों जैसे लकड़ी के शिल्प में विशेषज्ञता रखते हैं। गोवा की लकड़ी की नक्काशी पुर्तगाली और भारतीय संस्कृति का एक सौंदर्यपूर्ण मिश्रण है, और डिजाइन मुख्य रूप से पुष्प, जानवरों और मानव आकृतियों का है।

प्रचुर वनों से संपन्न, लकड़ी का काम दक्षिण भारत में एक लोकप्रिय शिल्प है। यह मुख्य रूप से शीशम (डालबर्गिया लैटिफोलिया) और चंदन की लकड़ी (सैंटालम एल्बम) पर किया जाता है। आंध्र प्रदेश की लाल चंदन (टेरोकार्पस सैंटालिनस) की लकड़ी का उपयोग विभिन्न डिजाइनों में कटलरी, सुंदर बक्से और कागज चाकू के लिए किया जाता है। मदुरै (तमिलनाडु का एक शहर) अपनी शीशम की लकड़ी की नक्काशी के लिए लोकप्रिय है। कर्नाटक सुंदर हाथी की छवियों और शीशम की लकड़ी से बने फर्नीचर के लिए प्रसिद्ध है। केरल में कुंबली की लकड़ी से नारी की भव्य मूर्तियाँ बनाई जाती हैं।

निष्कर्ष

लकड़ी की कलाकृतियाँ सांस्कृतिक विरासत और इतिहास, कलात्मक अभिव्यक्ति, वैज्ञानिक अनुसंधान, शैक्षिक मूल्य, आर्थिक महत्व, सांस्कृतिक और पिछले समाज की प्रौद्योगिकियों में महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में काम करती हैं। लकड़ी की कलाकृतियों के वैश्विक निर्यात में हाल ही में गिरावट आई है। लकड़ी की कलाकृतियों का भविष्य स्थिरता और रचनात्मकता के संतुलन से परिभाषित होगा। पर्यावरण-अनुकूल तरीकों पर जोर देने और नवीन प्रौद्योगिकियों के संयोजन से डिजाइन विकल्प खुलेंगे। वैश्विक बाजारों और उपभोक्ताओं की प्राथमिकताओं में बदलाव के साथ, उच्च गुणवत्ता, कारीगर लकड़ी के टुकड़ों की स्थायी अपील शिल्प कौशल के महत्व को उजागर करेगी।

12/2022-23

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
बिहार

सेब में विकास की किशोर अवस्था को छोटा करने के लिए प्रयुक्त विभिन्न कृषि विज्ञान पद्धतियां

नेहा सिन्हा, बीरेंद्र कुमार
दिव्या तिवारी, साहीना परवीन
बागवानी विभाग (फल विज्ञान), नालन्दा हॉर्टिकल्चर कॉलेज, नूरसराय, नालन्दा (बिहार)
संतोष कुमार चौधरी सस्य विज्ञान विभाग, नालन्दा हॉर्टिकल्चर कॉलेज नूरसराय, नालन्दा

परिचय

फल के पौधों में लंबी किशोर अवस्था होती है , जिसके दौरान वे फूल नहीं देते है। सेब के पौधों में, ये किशोर अवस्था 8 साल की हो सकती है। यह सेब के प्रजनन कार्यक्रम में पीढ़ी के समय, के बढ़ने का मुख्य करक होती है। जब हम फल के पौधों को उगाते है तो यह हमारा उद्देश्य होता है की उन्हें जल्द से जल्द विकास के किशोर चरण से गुजरे और फूल खिलने के लिए प्रोत्साहित करें। जिमरमैन (1973) ने देखा कि ग्रीनहाउस परिस्थितियों में उगाए गए क्रैब एप्पल के पौधों में, किशोर अवस्था से वयस्क अवस्था में बदलाव बिंदु को इंगित करने वाली सबसे निचली कली 1.8-2 मीटर की ऊंचाई पर पाई गई। हालांकि विकास के चरण को अंकुर की ऊंचाई की तुलना में उत्पादित नोड्स (अर्थात तने पर स्थित बिंदु जहां से पत्ती उगती है) की संख्या के आधार पर बेहतर ढंग से मापा जा सकता है। तदनुसार उदाहरण के लिए, हेन्के एट अल. (2007), के किशोर से वयस्क वनस्पति और वयस्क वनस्पति से वयस्क प्रजनन चरणों में बदलाव बिंदु क्रमशः अग्रणी शूट पर नोड्स 77 और 122 के आसपास होते हैं।

बदलाव काल को 'वयस्क वनस्पति चरण'के रूप में परिभाषित किया गया है जो नोड्स 77-122 के बीच होता है। यह अवलोकन दर्शाता है किशोर अवस्था का अंत और फूलों का प्रथम प्रकटन एक साथ नहीं हो सकते हैं। इसलिए, अन्य कारकों के कारण भी पौधों में फूल नहीं आ सकते हैं। भले ही उनमें फूल आने की क्षमता आ गई हो। इन परिवर्तनों को नीचे दिए गए चित्र में योजनाबद्ध रूप से दर्शाया गया है, जिसमें सुविधा के लिए नोड्स के स्थान पर इंटरनोड्स (अर्थात क्रमिक नोड्स के बीच अंतराल) की संख्या का उपयोग किया गया है।

पौधों में फूल लाने के लिए तकनीकें

पुष्पन को प्रेरित करने और बढ़ाने की अधिकांश पारंपरिक तकनीकें, टहनियों की वानस्पतिक वृद्धि को धीमा करने से जुड़ी हैं। इस तरह से सेब के पौधों का उपचार, वयस्क वनस्पतिक अवस्था तक पहुंचने तक प्रतिकूल परिणाम देता है। वास्तविक किशोर अवस्था के दौरान लक्ष्य, अग्रणी शाखा पर लगभग 77 नोड्स तक यथाशीघ्र पहुंचना होता है, जिससे यह अवस्था पूरी हो जाती है। फूल आने के समय को कम करने के लिए नीचे सूचीबद्ध तकनीकें जैनिक एट अल. (1996) और हेन्के एट अल. (2007) से संकलित की गई हैं।

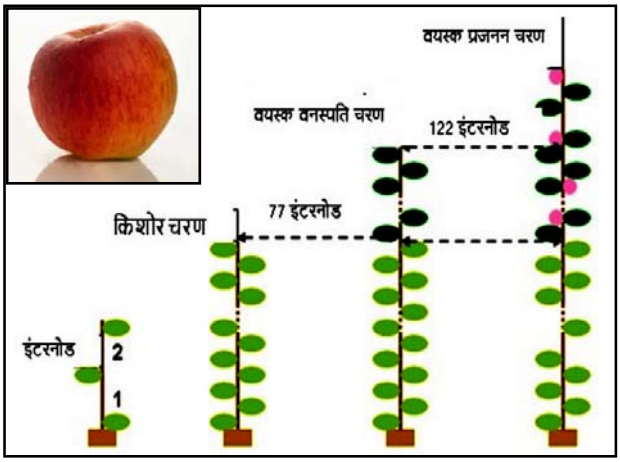

किशोरावस्था के दौरान प्रभावी उपाय

- स्वाभाविक रूप से होने वाले शीघ्र पुष्पन वाले जीनोटाइप या म्यूटेंट का चयन और प्रसार।
- 122 नोड्स पर अंकुरण से लेकर 'वयस्क प्रजनन चरण' तक पौधों की तीव्र वृद्धि होना।
- पौधों को लंबे समय तक बढ़ने के मौसम में रखने से उनकी वृद्धि बढ़ जाती है।
- अग्रणी शाखा के शीर्षस्थ प्रभुत्व को बढ़ाने वाले उपचार करना चाहिये (विकास को बढ़ाते हैं)।

वयस्क वनस्पति अवस्था के दौरान और/या उसके बाद प्रभावी क्रियाएं

- ऐसे उपचार करें जो टहनियों में शीर्षस्थ भाग की प्रबलता को कम करते हैं, पुष्प निर्माण को बढ़ावा दे सकते हैं।
- तने पर रिंगिंग, स्कोरिंग, छाल उलटना, जड़ छंटाई, क्षैतिज शूट अभिविन्यास और शूट झुकाव द्वारा वनस्पति विकास का अवरोध।
- निष्पत्रण करें।
- कुछ पादप वृद्धि नियामकों/हार्मोन का अनुप्रयोग लगाएं
- बौने मूलवृंतों पर अंकुरों की कलम लगाएं।

युवा पौधों के तीव्र विकास को बढ़ावा देना

पुष्पन समय को कम करने के लिए सबसे प्रभावी रणनीति है पौधों को यथासंभव तीव्रता से विकसित करना, तथा एकल लीडर की वृद्धि को तेज करना, ताकि नोड उत्पादन की दर में बिना किसी बाधा के वृद्धि हो सके। जैनिक एट अल. (1996) के अनुसार, ग्रीनहाउस में अनुकूलतम परिस्थितियों में उगाए गए पौधे पहले मौसम में 3 मीटर ऊंचाई तक पहुंचे, जबकि खेत में उगने पर इनकी ऊंचाई 1 मीटर ही रही। एक वर्ष में भी उनमे फूल आने की क्षमता पाई गई। यह देखते हुए कि मुख्य शाखा के शीर्ष पर सबसे छोटी वृद्धि पौधे के युवा अवस्था मे सबसे पहले उभरती है। फूल और फल उत्पन्न होने तक लीडर को नहीं काटा जाना चाहिए।

बौने मूलवृंतों पर पौधों की कलम लगाना या कलिका लगाना, फूल आने के समय को तेज करने का एक स्थापित तरीका है। लेवांडोव्स्की और जुराविक्ज (2000) द्वारा विकसित विधि में खुले में उगाए गए 2 वर्षीय सेब के पौधों की निष्क्रिय मुख्य शाखाओं के सबसे ऊपरी हिस्सों को P 22 रूटस्टॉक्स पर हाथ से ग्राफ्ट किया गया था। ग्राफ्ट किए गए पेड़ों को मिट्टी के सब्सट्रेट और प्लांट कम्पोस्ट के 1:1 मिश्रण से भरे 8-लीटर कंटेनर में लगाया गया था। उन्हें अगस्त के अंत में एक स्थायी स्थान पर रोपाई तक प्लास्टिक कवर के नीचे उगाया गया था। जिन पौधों की युक्तियों का उपयोग ग्राफ्टिंग के लिए किया गया था, उन्हें कुछ महीने पहले अप्रैल के अंत में उसी स्थान पर प्रत्यारोपित किया गया था। ग्राफ्ट किए गए पौधों में से लगभग 30% ग्राफ्टिंग के बाद दूसरे वर्ष में पाया गया और एक साल बाद अतिरिक्त 40% पाया गया। उस अवधि के दौरान मूल जड़ वाले पौधों में से किसी में भी फूल की कलियाँ विकसित नहीं हुई थी ।

संदर्भ

1. हैन्के एम-वी, फ्लैचोव्स्की एच, पील ए, हैटश सी.(2007). कोई फूल नहीं, कोई फल नहीं- फलों के पेड़ों में फूल आने की आनुवंशिक क्षमता। जीन, जीनोम और जीनोमिक्स 1(1), 1-20.
2. जैनिक जे, कमिंस जेएन, ब्राउन एसके और हेमट एम. (1996). सेब। इनः जैनिक जे, मूर जेएन (संपादक), फ्रूट ब्रीडिंग, वॉल्यूम फ्रू ट्री एंड ट्रॉपिकल फ्रूट्स। जॉन विले एंड संस, इंक. 1-77.
3. लेवांडोव्स्की, एम.य जुराविक्ज, ई. (2000). जर्नल ऑफ फ्रूट एंड ऑर्नामेंटल प्लांट रिसर्च 8 (1):33-37

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
बिहार

सूरजमुखी की खेती के विभिन्न पहलू

डॉ. रंजु कुमारी सहायक प्राध्यापक सह वैज्ञानिक, नालन्दा उद्यान महाविद्यालय, नूरसराय, नालन्दा (बिहार)

डॉ. अनिल कुमार सिंह वरीय वैज्ञानिक एवं प्रधान, कृषि विज्ञान केन्द्र, सरैया, मुजफ्फरपुर

डॉ. रजनीश सिंह विषय वस्तु विशेषज्ञ, फसल उत्पादन, कृशि विज्ञान केन्द्र, सरैया, मुजफ्फरपुर

ई. सुभाष चन्द्रा सह-प्राध्यापक, अभियंत्रण कृशि महाविद्यालय, पूसा

हेमचन्द्र चौधरी सहायक प्राध्यापक-सह वैज्ञानिक, बीज निदेशालय, ढोली

सूरजमुखी या 'सूर्यमुखी' (वानस्पतिक नामः हेलियनथस एनस) अमेरिका के देशज वार्षिक पौधे हैं। यह अनेक देशों के बागों में उगाया जाता है। यह कंपोजिटी कुल के हेलिएंथस गण का एक सदस्य है। इस गण में लगभग साठ जातियाँ पाई गई हैं जिनमें हेलिएंथस ऐमूस, हेलिएंथस डिकैपेटलेस, हेलिएंथिस मल्टिफ्लोरस, हे. औरगैलिस, हे. ऐट्रोरुबेंस, हे. जाइजेन्टियस तथा हे. मौलिस प्रमुख हैं।

यह फूल अमरीका का देशज है पर रूस, अमरीका, ब्रिटेन, मिस्र, डेनमार्क, स्वीडन और भारत आदि अनेक देशों में आज उगाया जाता है। इसका नाम सूरजमुखी इस कारण पड़ा कि यह सूर्य और ओर झुकता रहता है, हालाँकि प्रायः सभी पेड़ पौधे सूर्य प्रकाश के लिए सूर्य की ओर कुछ न कुछ झुकते हैं। सूरजमुखी का सूर्य की ओर झुकना आँखों से देखा जा सकता है। बागों में उगाए जाने वाले सूरजमुखी की उपर्युक्त प्रथम दो जातियाँ ही हैं। इसके पेड़ 1 मी. से 5 मी. तक ऊँचे होते हैं। इनके डंठल बड़े तुनुक होते हैं, हवा के झोंके से टूट जा सकते हैं अतः इनमें टेक लगाने की आवश्यकता पड़ सकती है। इसकी पत्तियाँ 7 सेमी से 30 सेमी लंबी होती है। कुछ सूरजमुखी एकवर्षी होते हैं और कुछ बहुवर्षी या कुछ बड़े कद के होते हैं और कुछ छोटे कद के।

परिचय: जिसे आमतौर पर फूल कहा जाता है, वह वास्तव में एक साथ संकुलित बहुत से फ्लोरेट्स (छोटे फूल) का सर (विधिवत रूप से सम्मिश्र फूल) है। बाहरी फ्लोरेट्स निष्फल रे फ्लोरेट्स हैं और पीले, लाल, नारंगी, या अन्य रंगों के हो सकते हैं। परिपत्र सर के अंदर के फ्लोरेट्स को डिस्क फ्लोरेट्स कहा जाता है, जो बीज में परिपक्व होते हैं। सूरजमुखी के गुच्छे के भीतर के फ्लोरेट्स एक सर्पिल पैटर्न में व्यवस्थित होते हैं। आम तौर पर प्रत्येक फ्लोरेट लगभग स्वर्ण कोण 137.5ए, द्वारा अगले की ओर उन्मुख होता है, जो परस्पर संबंधित सर्पिल का उत्पादन करते हैं, जहाँ बायें सर्पिल की संख्या और दाहिने सर्पिल की संख्या लगातार फिबोनैकी संख्या होती है। आमतौर पर, एक दिशा में 34 सर्पिल होते हैं और दूसरी में 55, एक बहुत बड़े सूरजमुखी पर एक दिशा में 89 और दूसरी में 144 होते हैं। यह पैटर्न फूल सर के भीतर बीज की सबसे कुशल पैकिंग उत्पन्न करता है।

हेलिओट्रोपिज्म: कोंपल अवस्था में सूरजमुखी हेलिओट्रोपिज्म प्रदर्शित करते हैं। सूर्योदय के समय, अधिकतम सूरजमुखियों के चेहरे पूर्व की ओर मुड़े होते हैं। दिन के दौरान, वे पूर्व से पश्चिम तक सूरज का पीछा करते हैं, जबकि रात में वे एक पूर्वाभिमुख उन्मुखीकरण पर वापस आ जाते हे. यह गति, मोटर कोशिकाओं द्वारा पल्विनस में प्रदर्शित की जाती है, जो कली के ठीक नीचे तने का एक लचीला क्षेत्र होता है। जैसे ही कोंपल अवस्था समाप्त होती है, तना सकत हो जाता है और फूल खिलने का चरण शुरू हो जाता है। अपने फूल खिलने के चरण में सूरजमुखी अपनी हेलिओट्रोपिक क्षमता खो देते हैं। तना ''स्थिर'' हो जाता है, विशिष्ट रूप से एक पूर्वाभिमुख उन्मुखीकरण में.उद्धरण चाहिए, तना और पत्ते अपना हरा रंग खो देते हैं। जंगली सूरजमुखी आम तौर पर सूर्य की ओर नहीं मुड़ता है। परिपक्व होने पर उसका पुष्पित सर बहुत सी दिशाओं में अभिमुख हो सकता है। हालांकि, पत्ते आमतौर पर कुछ हेलिओट्रोपिज्म दिखाते हैं।

किस्में (प्रकार)

सूरजमुखी की निम्नलिखित किस्में हैं : अमेरिकी जाइंट, हाईब्रीड, आर्निका, ऑटम ब्यूटी,एज्टेक सन, ब्लेक ओइल, ड्वार्फ सनस्पोट, इवनिंग सन, जाइंट प्रिमरोज, इंडियन ब्लेंकेट हाईब्रीड, आयरिश आइज, इतालवी वाईट, काँग हाईब्रीड, लार्ज ग्रे स्ट्राइप, लेमन क्वीन, मेमोथ सूरजमुखी, मंगोलियाई जाइंट, ऑरेंज सन, पीच पैशन, रेड सन, रिंग ऑफ फायर, रोस्टोव, स्कायस्क्रेपर, सोराया, स्ट्राबेरी ब्लोंड, सनी हाईब्रीड, टाइयो, ताराह मारा, टेडीबिअर, टाइटन, वैलन्टाइन, वेलवेट क्वीन, येलो एम्प्रेस

अन्य प्रजातियां: मेक्सीमिलियन सूरजमुखी (हेलियनथस मेक्सीमिलियनी) उत्तरी अमेरिका के मूल बारहमासी सूरजमुखी की 38 प्रजातियों में से एक है। भूमि संस्थान और अन्य प्रजनन कार्यक्रम वर्तमान में, एक बारहमासी बीज फसल के रूप में इन के लिए संभावना तलाश कर रहे हैं। सुनचोक (यरूशलेम आटिचोक या हेलियनथस ट्युबरोसस) सूरजमुखी से संबंधित है, यह बारहमासी सूरजमुखी का एक और उदाहरण है। मैक्सिकन सूरजमुखी टिथोनिया रोटनडिफोलिया है। यह बहुत ही दूर से उत्तर अमेरिकी सूरजमुखी से संबंधित है। फाल्स (नकली) सूरजमुखी जीनस हेलिओपसिस के पौधों को सन्दर्भित करता है। सूरजमुखी की फसल में मुख्यतः रतुआ, डाउनी मिल्ड्यू, पाऊडरी मिल्ड्यू, हेड राट, राइजोपस हेड राट जैसी समस्याएं आती हैं.

रतुआ: इस रोग में पत्तियों छोटे लाल-भूरे दब्बे बनते हैं, जिन पर ये जंग के रंग का पाउडर बनता हैं बाद में ये रोग ऊपर की पत्तियों तक फैल जाता हैं तथा पत्तियां पीली दिखने लग जाती हैं और गिर जाती हैं।

रोकथाम: सहनशील और प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करना चाहिए। फसल चक्र अपनाना चाहिए. पिछली फसल के अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए. मैनकोजेब / 0.2: का छिड़काव करें।

डाउनी मिल्ड्यू: रोग ग्रस्त पौधा छोटा रह जाता हैं जिसमे पत्तियां मोटी एवं पत्तियों की नशे सफेद-पीली हो जाती हैं पत्तियों की निचली सतह पर फफूंद दिखती हैं अधिक नमी से फफूंद पत्तियों की ऊपरी सतह पर फैल जाती हैं।

रोकथाम: डाउनी फफूंदी के प्रबंधन के लिए रोग प्रतिरोधी संकरों को लगाना बहुत महत्वपूर्ण है. फसल चक्र अपनाना चाहिए. फफूंदनाशक बीज उपचार करना चाहिए। खरपतवार मेजबानों को हटाना चाहिए।

सफेद चूर्णी रोग (पाऊडरी मिल्ड्यू): इस रोग के कारण पत्तियों पर सफेद चूर्ण जैसा दिखाई देता है. पुरानी पत्तियों की ऊपरी सतह पर सफेद से ग्रे फफूंदी दिखाई देती है. जैसे-जैसे पौधे परिपक्व होते हैं, सफेद फफूंदी वाले क्षेत्रों में ब्लैक पिन हेड का आकार दिखाई देता है. प्रभावित पत्ते अधिक चमकते हैं, मुड़ते हैं, और मर जाते हैं।

रोकथाम: पूरा खेत और फसल स्वच्छता अगेती किस्मों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। संक्रमित पौधे के मलबे को हटाना, सल्फर डस्ट / 25-30 किग्रा/हेक्टेयर या कैलिक्सिन 0.1: का प्रयोग रोग के प्रकोप को कम करने में प्रभावी पाया गया है।

हेड रॉट: प्रभावित हेड की निचली सतह पर पानी से लथपथ घाव दिखाई देते हैं, जो बाद में भूरे रंग के हो जाते हैं. हेड के प्रभावित हिस्से नरम और गूदेदार हो जाते हैं और कीड़े भी सड़े हुए ऊतकों से जुड़े हुए दिखाई देते हैं। हेड पर हमला करने वाले लार्वा और कीड़े फंगस के प्रवेश का मार्ग प्रशस्त करते हैं जो हेड के अंदरूनी हिस्से और विकासशील बीजों पर हमला करता है. बीज एक काले चूर्ण द्रव्यमान में परिवर्तित हो जाते हैं. हेड अंत में सूख जाता है और भारी कवक जाल के साथ नीचे गिर जाता है।

रोकथाम: बीजों को थीरम या कार्बेन्डाजिम/2 ग्रामध्किलोग्राम से उपचारित करें। हेड पर खाने वाले इल्लियों को नियंत्रित करें। रुक-रुक कर होने वाली बारिश के मौसम में मैनकोजेब/1 किग्रा हे. के साथ हेड पर स्प्रे करें और 10 दिनों के बाद दोहराएं।

तना एवं जड़ गलन: शुरू में हल्के-भूरे रंग का धब्बा तने पर भूमि की सतह के पास आता है तथा बाद में नीचे तथा ऊपर की तरफ तने पर फैल जाता है। जड़ तथा तना काला पड़ जाता है पौधे सूख जाते हैं। यह बीमारी अधिकतर फूलों में दाने बनते समय आती है।

रोकथाम: अंकुर के निकट रोपण से बचना चाहिए। पौधे की शक्ति को बनाए रखने के लिए पोषण प्रदान किया जाना चाहिए। जब भी मिट्टी सूख जाए और मिट्टी का तापमान बढ़ जाए तो सिंचाई करनी चाहिए। अच्छे जल-निकास वाली भूमि में फसल लगाएं, 3-4 वर्ष का फसल-चक्र गेहूँ व जौ जैसी फसलों से करें। ट्राइकोडर्मा विराइड फॉर्म्युलेशन/4 ग्राम किग्रा बीज के साथ बीज उपचार, बीज का उपचार बाविस्टिन 2 ग्राम या थाइरम 3 ग्रा. प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से करें।

आल्टरनेरिया ब्लाइट: पत्तियों पर काले रंग के गोल तथा अण्डाकार धब्बे बनते हैं। बाद में यह धब्बे आकार में बढ़ जाते हैं व पत्ते झुलस जाते हैं। ऐसे धब्बों में गोल छल्ले भी नजर आते हैं।

रोकथाम: अंकुर के निकट रोपण से बचना चाहिए। पौधे की शक्ति को बनाए रखने के लिए पोषण प्रदान किया जाना चाहिए। जब भी मिट्टी सूख जाए और मिट्टी का तापमान बढ़ जाए तो सिंचाई करनी चाहिए अच्छे जल-निकास वाली भूमि में फसल लगाएं.3-4 वर्ष का फसल- चक्र गेहूँ व जौ जैसी फसलों से करें। ट्राइकोडर्मा विराइड फॉर्म्युलेशन / 4 ग्राम किग्रा बीज के साथ बीज उपचार। बीज का उपचार बाविस्टिन 2 ग्राम या थाइरम 3 ग्रा. प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से करें।

फूल गलन: फूलों में दाने पड़ते समय यह बीमारी आती है। फूल के पिछले भाग पर शुरू में हल्का-भूरे रंग का ध्ब्बा बनता है जो बाद में फूल के अधिकांश भाग में फैल जाता है जिससे फूल गल जाता है। कभी-कभी फूल की डण्डी पर भी यह गलन फैल जाती है व फूल टूट कर लटक जाता है। ऐसे फूलों में दाने नहीं बनते।

रोकथाम: अंकुर के निकट रोपण से बचना चाहिए. पौधे की शक्ति को बनाए रखने के लिए पोषण प्रदान किया जाना चाहिए। अच्छे जल-निकास वाली भूमि में फसल लगाएं। ट्राइकोडर्मा विराइड फॉर्म्युलेशन / 4 ग्राम/ किग्रा बीज के साथ बीज उपचार. बीज का उपचार बाविस्टिन 2 ग्राम या थाइरम 3 ग्रा. प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से करें। डाइथेन एम-45 (0.2:) का घोल दो बार 15 दिन के अंतर पर छिड़कें. फूलों पर भी इसी दवाई के छिड़काव से फूल गलन पर नियन्त्रण हो जाता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
बिहार

एकीकृत आम की खेती सह मुर्गी पालन किसानों की आय बढ़ाने का एक प्रयोग

डॉ. अंजली कुमारी सहायक प्राध्यापक सह कनीय वैज्ञानिक, पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर

डॉ. नागार्जुन पी सहायक प्राध्यापक सह कनीय वैज्ञानिक सस्यविज्ञान, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर

डॉ. कुलदीप प्रकाश शिंदे सहायक प्राध्यापक, कृषि महाविद्यालय बीकानेर

डॉ. शिवानी तिवारी सहायक प्राध्यापक सह कनीय वैज्ञानिक, जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर

डॉ. कुमारी चंद्रकला सहायक प्राध्यापक सह कनीय वैज्ञानिक, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

भारतीय किसान लगभग 25 मिलियन मीट्रिक टन आम का उत्पादन करते है। विश्व में आम के उत्पादन में भारत का प्रथम स्थान है। आम की खेती भारतीय किसानों के लिए महत्वपूर्ण आय का स्रोत है। व्यावसायिक दृष्टिकोण से किसानो के लिए आम का खास महत्व है। परन्तु आम के बाग से होने वाली कमाई साल के 3-4 महीने तक ही सीमित रहती है। ऐसे में आवश्यकता है, एक ऐसे विकल्प की जो आम की खेती को प्रभावित किये बिना जमीन का सर्वोत्तम उपयोग कर सालों भर किसानों के लिए आय का स्त्रोत उपलब्ध कराये। भा.कृ.अनु.प.-केंद्रीय उपोष्णकटिबंधीय बागवानी संस्थान, लखनऊ द्वारा फार्मर फर्स्ट कार्यक्रम में प्रस्तावित आम के बगीचे में ग्रामीण मुर्गी पालन से किसानों की आय बढ़ाने पर जोर दिया जा रहा है। इसी से प्रेरित होकर इस लेख में आम की खेती के साथ ग्रामीण मुर्गीपालन के लाभ, चुनौतियों और तकनीकी पहलुओं पर चर्चा की गई है।

आम के बगीचे पर आधारित मुर्गी पालन क्यों?: भारत में ज्यादातर आम के बाग मोनो क्रॉप के रूप में विकसित हैं। आम उत्पादकों की आजीविका केवल आम के फलों की बिक्री पर निर्भर है। आम उत्पादक किसान ज्यादा पैदावार के लिए बहुतायत मात्रा में कीटनाशकों एवं खाद का उपयोग करते है। ज्यादा लागत छोटे और सीमांत किसानों को विशेष रूप से प्रभावित करती है। ऐसी परिस्थिति में आम के बागों में विविधीकरण एक अच्छा विकल्प है। इसी सोंच के साथ आम के बागो में देसी मुर्गीयों के पालन का कार्यक्रम भारत सरकार द्वारा फार्मर फर्स्ट कार्यक्रम के माध्यम से उत्तरप्रदेश के कई क्षेत्रों में चलाया जा रहा है। यह कार्यक्रम किसानो को न केवल सालों भर आय के लिए प्रेरित करता है बल्कि मुर्गीयाँ बागों में मौजूद कीटो को खा कर कई हद तक कीटनाशकों के उपयोग एवं लागत को भी सीमित करती है।

आम आधारित मुर्गी पालन कैसे शुरू करें?: आम के बागों में देसी मुर्गीयों के पालन को शुरू करने के लिए सबसे पहले आवास की व्यवस्था की जाती है जो कि उन्हें अधिक तापमान, बारिश, ठण्ड एवं शिकारियों से बचाता है। आवास की ल.मचौ.म ऊ. 4×3.5×8 या 12 फीट लगभग बनाई जाती है। आम के बागों में पालने के लिए प्रमुख रूप से कुक्कुट की 4 प्रजातियों (सीएआरआई-देवेंद्र, सीएआरआई-निर्भीक, सीएआरआई-श्यामा और कड़कनाथ) को चुना गया है। सीएआरआई-निर्भीक और सीएआरआई-श्यामा ज्यादा अंडा उत्पादन (175-185) में विशेष महत्व रखते है। इनमे अंडा उत्पादन 5वें महीने से प्रारम्भ हो जाता है जबकि सीएआरआई-देवेन्द्र और सीएआरआई-श्यामा का वजन जल्दी बढ़ता है। सीएआरआई देवेन्द्र का वजन 4 महीने में 1.5 किलोग्राम हो जाता है। इनसे 300-400रु. प्रति मुर्गी तक किसानो को आसानी से प्राप्त हो जाता है। कड़कनाथ 7-8 माह में 1.5 किलो का होता है। ये बाजार में प्रति पक्षी 800-1000 रु0 में बिकते हैं। कड़कनाथ इन चारों प्रजातियों में सबसे ज्यादा फुर्तीला होता है। आम के ऊपरी सतह के कीटों को नियंत्रित करने में इसकी भूमिका सबसे ज्यादा होती है।

आम के बागों में पाली जाने वाली मुर्गीयों के लिए चारे का प्रबंधन: मुर्गी पालन के लिए जो प्रजातियां चुनी गयी है वो ज्यादातर आम के बगीचे में चर कर ही काम चला लेती है। आम के बगीचे में चरने के दौरान ये कीट,पतंगों, खर-पतवार के बीज, हरे मोथा को खा लेते है। फिर भी वजन बढ़ाने के लिए इनको सुबह एवं शाम में पूरक आहार की आवश्यकता होती है। उद्यान क्षेत्र की उपलब्धता के अनुसार पूरक आहार की मात्रा कम या ज्यादा हो सकती है। एक औसत पूरक आहार 30-45 ग्राम/पक्षी/दिन दिया जाता है। पूरक आहार के रूप में अजोला भी एक अच्छा विकल्प हो सकता है। इसमें प्रचुर मात्रा में खनिज, लवण के साथ साथ अपरिष्कृत प्रोटीन 24 प्रतिशत होता है जिनकी पाचन क्षमता लगभग 50 प्रतिशत तक होती है।

आम के बगीचे की आयु- यदि बगीचे में नए आम के पेड़ ज्यादा है तो सूरज की किरणे धरती पर अच्छी मात्रा में पड़ेंगी जो अजोला की खेती के लिए आदर्श सिद्ध होगा। लेकिन इस समय बगीचे में ज्यादा कीट पतंग नहीं होते है। ऐसे में यदि किसान गोबर का उपयोग करते हैं तो गोबर कीटो को अपनी ओर आकर्षित करते है जो कि मुर्गीयों के लिए भोजन का उचित प्रबंधन करने में सक्षम है। नए एवं पुराने आम के बगीचे में प्रति मुर्गी स्थान की आवश्यकता अलग अलग होती है। यदि मुर्गीयों को पूरक आहार नहीं दे रहे है तो उद्यान में 5-10 मी2 पक्षी स्थान की आवश्यकता होती है। यदि बगीचे में अजोला का प्रबंधन है तो प्रति मुर्गी स्थान की आवश्यकता काफी हद तक कम हो जाती है। स्थान की आवश्यकता पर जलवायु का भी अच्छा प्रभाव होता है। यदि बगीचे में नए वृक्ष है एवं अजोला तथा गोबर का उपयोग किया जा रहा है तो प्रति मुर्गी स्थान की आवश्यकता लगभग 2-3 मी2 तक हो जाती है।

मुर्गी पालन का आम के बगीचों पर प्रभाव: इस पारितंत्र में पक्षी अपना भोजन बगीचे में मौजूद प्यूपा, लार्वा, कीड़े और छेदक से प्राप्त करते हैं जिसके कारण उद्यान में कीटो की संख्या नियंत्रण में रहती है। साथ साथ कीटनाशकों का उपयोग सीमित हो जाता है। पक्षियों की कुछ प्रजातियां जैसे कड़कनाथ कुछ ऊंचाई तक उड़ भी सकते है एवं आम के पेड़ के ऊपरी हिस्सों पर मौजूद टिड्डियों तथा पत्तियों पर जाला बनाने वाले कीटों को भी खा लेते है। एक मुर्गी अपने जीवन काल में 45 किलो ग्राम तक पोल्ट्री बीट खाद के रूप में बगीचे में उत्सर्जित करती है। बगीचे में यदि 500 मुर्गीयों का पालन किया जा रहा है तो औसतन 225 क्विंटल पोल्ट्री बीट खाद प्रतिवर्ष प्राप्त किया जा सकता है। मुर्गीयां चरने के दौरान मिटटी की परत को छोटे छोटे टुकड़ों में तोड़ देती है। जिससे मिटटी की निचे की सतहों में हवा का प्रवाह सुनिश्चित होता है। अतः यह स्पष्ट है कि जिन आम के बगीचों में एकीकृत मुर्गी पालन किया जा रहा है उनमे अपेक्षाकृत कम कीटनाशक एवं कम खाद का उपयोग होता है, जो लागत को कम करने का एक उत्कृष्ट विकल्प है।

एकीकृत आम की खेती सह मुर्गी पालन की संधारणीयता: शोधकर्ताओं द्वारा आम के बगीचे को एकीकृत कृषि प्रणाली में शामिल करने सम्बन्धी कई लाभदायक प्रणाली विकसित किए गए जो बाहरी सामग्रियों पर निर्भर थे तथा उनमे विशेषज्ञता की कमी थी जिस कारण वो मॉडल सफल नहीं हुए। सरलता, अनुकूलनशीलता और उत्पादन की लागत को ध्यान में रखते हुए इस प्रणाली को विकसित किया गया है। इस प्रणाली में मुर्गीयों का घर 3 से 5 साल तक टिकाऊ रहता है। केवल समय समय पर इनके ऊपर लगे पॉलीशीट एवं बांस के ढाँचे को बदलने की आवश्यकता होती है। मुर्गीयों का घर बनाने की लागत 5,000-10,000 रु. होती है। गरीब किसान भी सीमित संसाधन में इस प्रणाली को आसानी से अपना सकते है। सालो भर बाजार में मुर्गी एवं उसके उत्पादों की स्वीकार्यता व्यापक रूप से होती है। यह भी इस प्रणाली को सफल बनाने का एक महत्वपूर्ण कारण है। इस प्रणाली में केवल शुरुआती निवेश के रूप में चूजे एवं अजोला के बीजो को खरीदना होता है। उत्तर भारतीय जलवायु में अजोला 8-9 तक महीने तक खुद भी है। अतः इस प्रणाली हेतु अत्यधिक ठंड और गर्मी के मौसम में बीजो को बचा के रखने की आवश्यकता होती है। इन दो विषम वातावरण में इस प्रणाली को सफल बनाने हेतु आहार हेतु कुछ सहायक उपाय करने की आवश्यकता होती है। इस प्रणाली में आज भी एक बड़ी चुनौती निरंतर चूजे की आपूर्ति ही है। स्टॉक के द्वारा कम अंडा, कम चूजा उत्पादन इस मॉडल में उद्यमियों की वाणिज्यिक लाभप्रदता को सीमित करता है। यही कारण है कि निजी हैचरियां इस प्रणाली के लिए चूजों का उत्पादन नहीं कर रही हैं। ऐसी व्यवस्था हेतु चूजों की आवश्यकता होती है।सरकारी क्षेत्र में हैचरी को ऐसा करने की न तो क्षमता है और न ही इच्छशक्ति। जैसे जैसे मांग बढ़ेगी वैसे ही युवा उद्यमी इस प्रणाली को अपनाने हेतु आगे आएंगे। बुनियादी ढाँचे और परिचालन सुविधाएं भी अपनी तरफ उद्यमियों का ध्यान आकृष्ट करेंगे एवं निजी हैचरी की स्थापना होगी।

आम के साथ एकीकृत मुर्गी पालन प्रणाली की खामियां: देसी मुर्गीयों की उत्पादन क्षमता अपेक्षाकृत कम होती है। जरूरतों को पूरा करने के लिए छोटी हैचरी इकाइयों की अनुपलब्धता है। गर्मी के मौसम में तथा गर्म क्षेत्रों में इस प्रणाली को अपनाने में मुर्गीयों की अधिक मृत्यु दर की समस्या बनी रहती है। इस प्रणाली में मुर्गीयां दिन के समय खुले में चरती है जिससे कुत्ते, बिल्ली साँप, चील, बाज और चोर जैसे सामान्य शिकारियों का खतरा बना रहता है। पशु चिकित्सा, स्वास्थ्य देखभाल और विस्तार सेवाओं का अभाव भी इस प्रणाली को प्रभावित करता है।

आम आधारित मुर्गी पालन के माध्यम से आय में वृद्धि: उत्तरप्रदेश के जिन किसानो ने इस प्रणाली को अपनाया है उनको जहाँ पहले कीटनाशकों के छिड़काव पर प्रति एकड़ 15 से 16 हजार रुपये की लागत आती थी वह अब घटकर 3 से 4 हजार रुपये रह गयी है। जिन किसानों ने इस प्रणाली को अपनाया है उनको प्रति एकड़ 1,71,828 रुपये का शुद्ध लाभ प्राप्त हुआ जो कि गैर मुर्गी पालन एकीकृत बागों की तुलना में 12,223 रुपये प्रति एकड़ अधिक है। इस प्रणाली को अपनाने वाले किसानो को प्रति रुपया आय व्यय का अनुपात 1.96 है जबकि आम बागानों को मोनोक्रोप की तरह अपनाने वाले किसानो में यह अनुपात 1.21 है।

निष्कर्ष: आम की खेती के साथ मुर्गी पालन एक लाभकारी और टिकाऊ कृषि प्रणाली है। इससे किसानों को अतिरिक्त आय की प्राप्त होती है और वे अपनी जमीन का अधिकतम उपयोग कर सकते हैं। उचित प्रबंधन और तकनीकी ज्ञान के साथ, किसान इस संयुक्त खेती प्रणाली से उच्च लाभ प्राप्त कर सकते हैं। भारत के जिन क्षेत्रों में इस प्रणाली को अपनाया गया है उनसे सीख लेकर अन्य क्षेत्रो में भी किसानो को इसके लिए प्रेरित करने की आवश्यकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
बिहार

बायपास फैट का पशुओं में महत्व

डॉ. किरण कुमारी (सह प्राध्यापक) पशु पोषण विभाग, COVAS किशनगंज (बिहार)

डॉ. अनुज सिंह (सहायक प्राध्यापक) पशु पोषण विभाग, COVAS किशनगंज (बिहार)

डॉ. वन्दना सिंह (सहायक प्रोफेसर) VPT, COVAS, किशनगंज (बिहार)

उच्च उत्पादक गायों तथा भैसों के आहार में वसा का समावेश आम हो गया है। दुग्धावस्था के आरंभ (80 -100 दिनों) में ऊर्जा की मांग पशुओं द्वारा ग्रहण किये जाने वाले ऊर्जा से अधिक होता है। ऋणात्मक ऊर्जा पशु के शरीर भार में अत्यधिक कमी, कीटोसिस, फैटी लीवर सिंड्रोम तथा जनन क्षमता एवं दुग्धउत्पादन कम कर देता है। अनाज ऊर्जा प्रदान करने का किफायती श्रोत है लेकिन कार्बोहाइड्रेट किण्वीकरण के कारण आहार में इसके शामिल करने की मात्रा सीमित है। वसा कार्बोहाइड्रट विहीन ऊर्जा का धनिष्ठ श्रोत है। इसके आहार में शामिल करने से ऊर्जा की पूर्ति हो जाती है। लेकिन अपरिष्कृत वसा रूमेन में मोटा चारा की पाचनशीलता कम करता है। इसलिए रोमान्थी के आहार में रूमेन रक्षित वसा (बाइपास वसा) दिया जाता है। पशुपालन में बायपास फैट एक महत्वपूर्ण तत्व है जो पशुओं के स्वास्थ्य और उत्पादन क्षमता पर गहरा असर डालता है। यह विशेष रूप से दूध देने वाली गायों और भेड़ों में महत्वपूर्ण है क्योंकि यह उनकी ऊर्जा की जरूरतों को पूरा करने में मदद करता है।

बायपास फैट क्या है

बायपास फैट वह वसा है जो पशुओं के पाचन तंत्र के माध्यम से ठीक से पच नहीं पाती बल्कि सीधे आंतों में जाती है। यह वसा तब अधिक उपयोगी होती है जब पशु ऊर्जा की अधिक मात्रा की जरूरत होती है जैसे कि उच्च दूध उत्पादन या प्रजनन के समय।

बायपास फैट का महत्व

ऊर्जा की आपूर्ति

बायपास फैट पशुओं को अतिरिक्त ऊर्जा प्रदान करती है जो विशेष रूप से तब महत्वपूर्ण होती है जब पशु अपने शरीर को अधिक ऊर्जा की जरूरत महसूस करता है। उदाहरण के लिए दूध देने वाली गायें दूध उत्पादन के दौरान उच्च ऊर्जा की जरूरत होती है जिसे बायपास फैट से पूरा किया जा सकता है।

दूध उत्पादन में सुधार

बायपास फैट दूध की वसा सामग्री को बढ़ा सकती हैए जिससे दूध की गुणवत्ता में सुधार होता है। इससे दूध की बाजार मूल्य में भी वृद्धि होती है और दूध देने वाली गायों के आर्थिक लाभ में इजाफा होता है।

पोषण संतुलन

बायपास फैट के सेवन से पशुओं को आवश्यक पोषक तत्व मिलते हैं जो उनके संपूर्ण स्वास्थ्य को बनाए रखने में मदद करते हैं। यह विशेष रूप से तब महत्वपूर्ण होता है जब पशुओं को संपूर्ण और संतुलित आहार नहीं मिल पा रहा हो।

प्रजनन स्वास्थ्य

उच्च गुणवत्ता वाली बायपास फैट प्रजनन स्वास्थ्य को भी प्रभावित कर सकती है। यह हार्मोनल संतुलन को बनाए रखने में मदद करती है जो पशुओं की प्रजनन क्षमता पर सकारात्मक प्रभाव डालता है।

बायपास फैट के स्रोत

पशुपालन में बायपास फैट के विभिन्न स्त्रोत होते हैं जिनमें शामिल हैं-

ऑयल सीड्स: जैसे कि सोया बीन्स, कनोला बीन्स, और सूरजमुखी के बीज।

पाम ऑयल: यह बायपास फैट का एक अच्छा स्रोत होता है और इसे पशुओं के आहार में मिलाया जा सकता है।

अन्य वसायुक्त पदार्थ: जैसे कि मांस और हड्डी का आटा।

बाइपास वसा प्रदान करने की प्रणाली

1. अखण्ड तेलीय बीज खिलाना
2. हाइड्रोजनीकृत वसा खिलाना
3. फॉर्मलीन उपचारित तेलीय बीज खिलाना
4. लम्बी श्रृंखला वाली वसीय अम्ल का कैल्शियम लवण खिलाना (प्रमुख व्यवसायिक की विधि)
5. संयोजन प्रणाली द्वारा निर्मित बाइपास फैट खिलाना
6. पशुपालक द्वारा उत्पादन की विधि

संयोजन प्रणाली

इसमें 4 कि.ग्रा राइस ब्रान तेल को अल्यूमूनियम पात्र में गर्म करते हैं। इसमें 10 लीटर जल में 1.6 कि.ग्रा. कैल्शियम हाइड्रोऔक्साइड घोल कर मिलाया है तथा 30 मिनट तक उबाला जाता है, फिर कपड़े से छान लिया जाता है तथा अवक्षेप को धूप में सुखा लिया जाता है।

बाइपास वसा की तुलनात्मक विवरणी

	1	2
	लम्बी श्रृंखला वसीय अम्ल कैल्शियम लवण	संयोजक प्रणाली
वसा की मात्रा	80-84%	70-75%
कैल्शियम	7-9%	7-8%
रूमेन रक्षित वसा	78-82%	80-85%

बाइपास वसा खिलाने से लाभ

1.गर्भावस्था के अन्त तथा दुग्धावस्था के आरम्भ में बाइपास वसा खिलाने से ऋणात्मक ऊर्जा के कारण होने वाले व्याधि से बचा जा सकता है।

2.अधिकतम दुग्ध उत्पादन तथा सतत् दुग्धउत्पादन काल में वृद्धि

बाइपास वसा खिलाये जाने की अनुशंसित मात्रा

संकर नस्ल की गाय एंव भैंस	200-400 ग्राम
वृद्धि करने वाले वत्स में	1.5-2.0% ;आहार की शुष्क पदार्थ के मात्रा के आधार पर)

बाइपास वसा खिलाने पर आहार में निम्न घटक को बढ़ा दिया जाता है:

1.मोटा चारा	1-2%
2.मैग्नीशियम	0.25-0.30%
3.बाइपास प्रोटीन	72 ग्राम प्रति क्विंटल मेश
4.नियासिन	6-12 ग्राम प्रति क्विंटल मेश

निष्कर्ष

पशुओं में बायपास फैट का महत्व अत्यधिक है, विशेष रूप से दूध देने वाली गायों और भेड़ों के लिए। यह न केवल उनकी ऊर्जा की जरूरतों को पूरा करती है बल्कि दूध उत्पादन, स्वास्थ्य और प्रजनन क्षमता को भी बेहतर बनाती है। इसलिए पशुपालकों को अपने आहार में उचित मात्रा में बायपास फैट शामिल करने पर ध्यान देना चाहिए, ताकि वे अपने पशुओं की उत्पादन क्षमता और स्वास्थ्य को बेहतर बना सकें।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
बिहार

उच्च आय के लिए ग्लैडियोलस की व्यवसायिक खेती

डॉ. शशि रंजन प्रताप सिंह
इं. विकाश चन्द्र वर्मा
(सहायक प्राध्यापक सह कनीय वैज्ञानिक)
भोला पासवान शास्त्री कृषि महाविद्यालय (पूर्णिया) (बिहार)
श्री पवन शुक्ला मंडन भारती कृषि
महाविद्यालय (सहरसा)
डॉ. अखिलेश कुमार सिंह वीर कुंवर सिंह
कृषि महाविद्यालय (बक्सर)

आज विश्व की फूलमंडियों में ग्लैडियोलस पुष्प की मांग लगातार बढ़ रही है इसका मुख्य कारण इसके रूप रंग आकार-प्रकार में विविधता, गुलदान आयु और हर तरह की जलवायु और मृदा में उगने की क्षमता इसकी मुख्य विषेषता है। ग्लैडिलस सामान्यतः ठंडी जलवायु को पसंद करता है। जिस कारण इस पौधे का फूल, कन्द उच्च गुणवता वाले होते है। भारत में इस फूल की खेती जम्मू काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश तथा बिहार राज्य में प्रमुख रूप से इसकी खेती की जा रही है। ग्लैडियोलस इरिडियेसी कुल का पौधा है जिसका वैज्ञानिक नाम ग्लैडियोलस ग्रैण्डीफ्लोरस एवं इसे साधारण भाषा में स्वाड लिली, कौर्नफ्लैग नामों से जाना जाता है जो प्रायः सभी रंगों में जैसे लाल, गुलाबी, मैरून, नारंगी, पीला, हल्का हरा, बैंगनी, जामुनी इत्यादि रंगों में किस्में विकसित हुई है।

प्रजातियाँ: संसार के विभिन्न देशों में तथा भारत में इसकी प्रजातियाँ विकसित करने के लिए अनेक शोध कार्य हुए है जिसके फलस्वरूप अनेक किस्में विकसित हुई है। ग्लैडियोलस सामान्यतः दो वर्गों में विभाजित किया गया है जिसमें नीदरलैन्ड से विकसित फूल प्रजातियों को डच हाइब्रिड तथा अमेरिका से विकसित किस्मों को अमेरिकन हाइब्रिड के नाम से जाना जाता है।

प्रचलित डच हाइब्रिड प्रजातियाँ: फ्रेण्डशिप, नोवलक्स, ऑस्कर, विंग्सगलोरी, पीटर पीयर्स इत्यादि है।

अमेरिकन हाइब्रिड प्रजातियाँ: अमेरिकन ब्यूटी, वाटरमेलन, इन्टरप्रिड, कैण्डीमैन, इम्पाला, अपोलो, जेस्टर इत्यादि है।

भारत में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली तथा भारतीय उद्यान अनुसंधान संस्थान, बंगलौर और राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान लखनऊ द्वारा कई महत्वपूर्ण प्रजातियों को विकसित किया गया है जिसमें मनमोहन, मोहनी, मनीषा, पुनम, अप्सरा, शोभा, अर्चना, वसंतवहार, ज्वाला, मुक्ता, पीताम्बर, त्रिलोकी, सपना, नजराना, मीरा, अग्निरेखा, रक्तगंधा, आरती, पूसा शुहागिन इत्यादि है।

प्रवर्धन: व्यवसायिक स्तर पर ग्लैडियोलस का प्रवर्धन कंदों, धनकंदो और ऊतक संबर्धन द्वारा किया जाता है। ग्लैडियोलस के कंद प्याज जैसे होते है, जो कंद कहे जाते है। इस कंद के साथ कुछ मटर के दाने के आकार के छोटे-छोटे कंद भी लगे रहते है जिसे घनकंद कहा जाता है। इनकी संख्या बिहार राज्य में एक पौधों में 225 तक पाई गई है। इन्हें व्यवसायिक स्तर पर प्रयोग करने हेतु दो से तीन साल तक इन्हें रोपित किया जाता है।

जलवायु: ग्लैडियोलस की खेती मैदानी इलाकों से लेकर पहाड़ी क्षेत्रों में किया जाता है। वास्तव में यह पुष्प ठंडी जलवायु को पसंद करता है जिसके कारण इसकी खेती बिहार राज्य में अक्टूबर-नवम्बर माह में बड़ी ही आसानीपुर्वक खुले वातावरण में किया जा सकता है। ग्लैडियोलस की खेती 18-25 डिग्री सेल्सियस तापमान में सुगमतापूर्वक किया जाता है। इस फसल में जब तापमान 10 डिग्री सेल्सियस से नीचे गिरने लगता है तो पाला पड़ने की सम्भवनाए बढ़ जाता है तथ जब तापमान 35 डिग्री सेल्सियस से उपर बढ़ता है तो इसकी वृद्धि रूक जाती है एवे अधिक गर्मी के कारण पत्तियाँ झुलसने लगती है।

भूमि की तैयारी: ग्लैडियोलस की खेती हेतु अच्छी जलनिकास वाली दोमट मृदा सर्वोत्तम होती है। ग्लैडियोलस की खेती अम्लीय मृदा जिसका पीएच

चित्र : ग्लैडियोलस की व्यवसायिक खेती

मान 5.5 से 6.5 तक हो वह उत्पादन हेतु अच्छी होती है। भूमि तैयारी के लिए मृदा को मिट्टी पलट हल से एक जुताई तथा सामान्य हल द्वारा दो से तीन जुताई 45 सेंमी. तक करनी चाहिए। इसके बाद भूमि को छोटे-छोटे क्यारियों में बिभाजित कर जिस प्रकार आलू की बुआई करते है वैसे किया जाता है।

रोपण का समय: बिहार राज्य में रोपण का कार्य अक्टूबर-नवम्बर माह में करने से उत्पादन तथा उत्पाद गुणवत्ता सर्वोत्तम रहता है। रोपण हेतु उपयोग किये जा रहे कंदों को 90-100 दिनों तक सुसुप्ता अवस्था में रखा होना चाहिए। ऐसे कंद एक निश्चित अवधि तक सुसुप्ता अवस्था में रहते है तथा बाद में यह अवस्था समाप्त होने के बाद इनका उपयोग रोपण हेतु किया जाता है।

कंदो का उपचार: रोपण से पूर्व सभी कंदों को उनकी प्रजातियाँ एवं आकार के अनुसार अलग अलग रखना चाहिए, सम्भव हो तो कंद के उपरी छिलके को हटा देना चाहिए उसके बाद इन कंदों को एक प्रतिशत कार्बेन्डाजिम एक घोल में 30 मिनट तक उपचारिक करके तथा छायें में सूखाने के बाद ही रोपण के लिए प्रयोग करना चाहिए।

रोपण दूरी: कंदों का रोपण 30 सेंमी. कतार से कतार व 20 सें. मी. पौध से पौध की दूरी पर करनी चाहिए। इस हिसाब से एक हेक्टेयर में 1.5 लाख कंद लगाए जा सकते हैं। बड़े कंदों को लगाने के लिए गहराई प्रायः 8 सेंमी. रखनी चाहिए। इसके अलावा छोटे कंद की गहराई कम रखी जाती है।

खाद एवं उर्वरक: ग्लैडियोलस की खेती के लिए अच्छी प्रकार से सड़ी हुई 50 टन गोवर की खाद, 300 किलोग्राम नाइट्रोजन, 300 किलोग्राम फासफोरस, 200 किलोग्राम पोटास और 25 किलोग्राम जिंक सल्फेट का प्रयोग प्रति हेक्टेयर करना चाहिए इसके अतिरिक्त 300 किलोग्राम नाइट्रोजन का प्रयोग छह पत्तियों आने पर करना चाहिए।

सिचाई: ग्लैडियोलस की कास्तकारी के लिए सिचाई जल की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। भूमि के प्रकार और मौसम के अनुसार एक से दो सप्ताह पर सिचाई करनी चाहिए। कंद निकालने के समय से 4 से 6 सप्ताह पूर्व सिचाई नहीं करनी चाहिए।

सहारा देना: ग्लैडियोलस के पौधों को मिट्टी चढ़ाने तथा पौधों को सहारा देने हेतु लकड़ी के डंडे का प्रयोग दो फूट की उँचाई पर रस्सी से बाँधकर किया जाता है जिससे पौध एवं पुष्प-डंडियाँ की गिरने की सम्भावनाएँ नहीं रहती है।

निराई-गुणाई: खरपतवार नियंत्रण हेतु प्रत्येक 20 से 25 दिनों पर हाथ से निदाई करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त रासायनिक खर-पतवार नियंत्रण हेतु पेन्डामेथलिन 2.5 लीटर प्रति हेक्टेयर के हिसाब से खेत की तैयारी के समय में छिड़कांव करना चाहिए जिसका प्रभाव शुरूआती 40 दिनों तक होता है।

पुष्प डंडियों के निकलने की अवधि: ग्लैडियोलस में पुष्प-डंडिया प्रजातियों, तापमान, मौसम, लगाने का समय एवं कंद आकार के अनुसार निकलना प्रारम्भ करती है। सामान्यतः रोपाई के 60 दिनों बाद पुष्प- डंडिया निकलना प्रारम्भ करती है।

पुष्प डंडियों की तुड़ाई: ग्लैडियोलस में पुष्प डंडियों के तुड़ाई का सही समय तभी होता है जब पुष्प डंडियों में लगे सबसे नीचे वाली पुष्प कली पर रंग दिखने लगे अगर इससे पहले काट लिए जाते है तो उसमें से फूल नहीं निकलेंगे। पुष्प डंडियों को जमीन से 10 से 15 से0 मी0 उपर से तेज धारवाली चाकू से काटना चाहिए। स्पाई काटने के तुरंत बाद इन्हें पानी में रखा जाता है उसके उपरान्त इन्हे 400 पीपीए 8 हाइड्रोक्सीक्यूनोलिन सिट्रेट और 40% चीनी के घोल में रखना चाहिए। पुष्प-डंडियों के काटने का सही समय सुबह या शाम होता है।

श्रेणीकरण: टेढ़ी-मेढ़ी बीमारी ग्रस्त क्रीड़े लगी हुई पुष्प डंडियों को छाँटकर हटा देना चाहिए। पुष्प डंडियों में अतिरिक्त पत्तियों को भी हटा देना चाहिए उसके बाद प्रजाजियों और आकार के अनुसार इनका श्रेणीकरण किया जाता है। भरतीय बाजार हेतु जो श्रेणी निर्धारित किये गये है उनके अनुसार 14 से उपर पुष्पवाली को ऐगजीविशन, 11से 13 पुष्पवाली को स्टैण्डर्ड और 8 से 10 पुष्पवाली को कमर्शियल एवं 8 से कम वाली को यूटिलिटी ग्रेड में रखा गया है।

पैकिंग: श्रेणीकरण के अनुसार पुष्पडंडियों को 10-12 की संख्या के बंडल में बाँध जाता है और उन्हे रददी अखबारी कागज से उपर से नीचे तक लपेटा जाता है। पुष्पडंडियों को रखने के लिए 33 सेंमी. चौड़े 107 से. लम्बे और 130 सेंमी. गहरे कार्डबोर्ड में लेटाकर रखा जाता है। इस तरह से 100 से 120 पुष्पडंडियाँ रखे जा सकते है।

फूलों का उत्पादन: ग्लैडियोलस में सामान्यतौर पर एक पौधे से एक पुष्पडंडियों को ही लेना चाहिए तथा अतिरिक्त पुष्पडंडियों को शुरूआत में ही हटा देना चाहिए। अच्छी प्रकार से व्यवसायिक खेती करने पर 80% पुष्पडंडियाँ प्राप्त की जा सकती है। 10% बी ग्रेड की, 5% सी ग्रेड की तथा 5% खराब हो जाते है।

कंदों को उखाड़ना एवं उपचार: ग्लैडियोलस पौधों की पत्तियाँ पीला पड़ने लगे और सूखना आरम्भ करदे तब कंदो और घनकंदों को सावधानीपुर्वक जमीन से निकाल लेना चाहिए। सामान्यतः पुष्पडंडिया काटने के 30 से 45 दिनों बाद खुदाई आरंभ करना चाहिए। खुदाई उपरान्त निकले कंदो और घनकंदों को किस्म अनुसार विभाजित करके 0.1% कार्बेन्डाजीम के घोल में 30 मीनट डुबों करके उन्हे छायावाली हवादार जगह पर अच्छी तरह सूखा लेना चाहिए।

कंद उत्पादन: ग्लैडियोलस कास्तकारी में जितने पौधे उगते है उतने ही बाजार में बेचने लायक कंद और पुष्पडंडियों का उत्पादन होता है।

कंदो का भंडारण: कंदों को भंडारित करने का सही तरीका केवल कोल्ड स्टोरेज में रखकर के ही किया जा सकता है। जहाँ इन्हे 4 से 10 डिग्री सेल्सियस पर रखा जाता है। कोल्ड स्टोरेज में रखे हुए कंदों और घनकंदो को एक समय अंतराल पर निरीक्षण करते रहना चाहिए। ताकि बीमारीग्रस्त और खराब कंदों को छाटकर हटाया जा सकें। भंडारण से पूर्व इन्हे 0.2त्न कार्बेन्डाजीम और मैन्कोजेब 0.2% के घोल से उपचारित करके तथा छाये में सूखाकर ही भंडारगृह में रखना चाहिए।

बीमारियाँ: ग्लैडियोलस की खेती में फ्यूजेरियम रॉट और बोट्राईटिस रॉट का प्रकोप होता है जो कंदों को और पूरे पौध को सड़ा देते है। इनके नियत्रण के लिए कार्बेन्डाजीम के घोल से रोपण के पूर्व उपचारित करने से तथा गर्म पानी उपचार 52 डिग्री सेल्सियस से 30 मीनट तक उपचार करने से रोग का प्रकोप कम हो जाता है।

कीट: ग्लैडियोलस की फसल में रसचूषक कीट जैसे माहू और थ्रीप्स का प्रकोप होता है जिनके नियत्रंण हेतु इमिडाक्लोरपीड 0.5 .मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर के छिडकाव करना चाहिए। इसके अलावा ग्रीन कैटरकीलर का प्रकोप होता है इसके नियंत्रण करने के लिए इन्डोक्साकार्य 01 मि.ली. प्रति ली. पानी में मिलाकर के छिडकाव करना चाहिए तथा ग्रब्स के नियंत्रण हेतु 400 मि.ली. क्लोरापारिफॉस का प्रति एकड़ छिडकांव भूमि में करना चाहिए।

उपज: अच्छे प्रकार से की गई व्यवसायिक खेती से 1.5 लाख पुष्पडंडियाँ प्रति हे. प्राप्त होती है जिनका बाजार मूल्य 5 से 8 रू. होता है तथा 1.5 लाख कंदों का उत्पादन इससे प्राप्त होता है। एक शोध-पत्र के प्रसंग के द्वारा इसकी खेती में लगभग 3.0 लाख रू. का खर्च आता है। इससे यह निस्कर्ष निकलता है कि इसकी खेती से अत्यधिक शुद्ध मुनाफा कमाया जा सकता है जो साधारण फसल की खेती से कही अधिक है। एक अन्य शोध-प्रसंग के द्वारा ज्ञात हुआ है कि बिहार राज्य में ग्लैडियोलस की खेती आसानीपुर्वक की जा सकती है जिसकी फूलों की गुणवत्ता अन्य राज्यों की तुलना में कम नहीं है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
गुजरात

थिलेरियोसिस: दुधारू पशुओं का घातक रोग

डॉ. पी.एच. अग्रावत
डॉ. जे.एच. वनसोला
डॉ. प्रचण्ड प्रताप सिंह
डॉ. आर.के. डांगी
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, कामधेनु विश्वविद्यालय, आनंद-388001 (गुजरात)

थिलेरियोसिस दुधारू पशुओं को हानि पहुंचाने वाले घातक रोगों में से एक है। यह रोग थिलेरिया एन्नयुलेटा नामक रक्त में पाये जाने वाले परजीवी से होता है। यह परजीवी दुधारू पशुओं एवं दुग्ध व्यवसाय को बहुत नुकसान पहुँचाता है। यह परजीवी हायलोमा नामक चीचड़ द्वारा फैलता है तथा मुख्यतः गर्मी एवं वर्षा ऋतु में अधिक होता है। क्योंकि उच्च तापमान एवं उच्च आर्द्रता चीचड़ों के विकास के लिए उत्तम वातावरण स्थापित करते हैं इस परजीवी द्वारा अधिक हानि मुख्यतः दुग्ध उत्पादन घटने तथा दुधारू पशुओं की मृत्यु के कारण होती है ।

लक्षण: • इस रोग में शरीर का तापमान बहुत तेजी से लगभग 40-41.5° सेल्सियस तक पहुँच जाता है।

- सतही लिम्फ नोड्स का विस्तार हो जाता है।
- हृदय गति एवं श्वास गति में वृद्धि हो जाती है।
- नाक से सीरस पदार्थ, आंखों से आंसू एवं खांसी आने लगती है।
- भूख में कमी हो जाती है, जिससे पशु चारा खाना बहुत कम कर देते हैं।
- दुग्ध उत्पादन में गिरावट आ जाती है।
- दमा, दस्त, दुर्बलता भी आम लक्षण हैं।
- कुछ समय पश्चात् बुखार कम होने के साथ-साथ पशु को रक्त की कमी एवं पीलिया हो जाता है
- पशु का मूत्र भी पीला हो जाता है।

इस रोग से पशुओं की मृत्यु भी हो जाती है तथा मृत्यु दर गर्भवती गायों में सबसे अधिक होती है।

शव परीक्षण: थिलेरियोसिस से पीड़ित पशु का शव परीक्षण करने पर निम्नलिखित विकृतियां पाई जाती हैं, जैसे-

- बाह्य लिम्फ नोड्स के आकार में वृद्धि,
- जिगर एवं तिल्ली का विस्तार,
- फेफड़ों एवं गुर्दों की बाह्य सतह पर हल्का खून का आना।
- जठरान्त एवं आँतों में छालों की उपस्थिति का होना।

शव परीक्षण करने पर इन सभी विकृतियों की उपस्थिति रोग की पुष्टि करती है ।

जांच

थिलेरियोसिस की जांच के लिए सर्वप्रथम रोग की उस क्षेत्र में पूर्व उपस्थिति एवं चीचड़ों की उपस्थित का पता किया जाता है। इसके पश्चात् उपयुक्त लक्षणों की उपस्थिति इस रोग का अनुमान लगाने में बहुत महत्वपूर्ण हैं। इसके अलावा विशिष्ट जांच के लिए खून के पतले धब्बों एवं लिम्फ नोड्स एवं जिगर की बायोप्सी के परीक्षण द्वारा ही इस परजीवी की उपस्थिति की जांच की जा सकती है। मृत पशुओं में शव परीक्षण भी रोग की जांच के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इसके अलावा विभिन्न तकनीकों जैसे पी.सी. आर . एवं सी.एफ.टी. द्वारा भी इस रोग की जाँच की जा सकती है ।

उपचार

इस रोग के उपचार के लिए बूपारवाक्यान इन्जेक्शन 25 मि.ग्रा. प्रति किग्रा. वजन की दर से माँसपेशियों में लगाया जाता है। अगर जरूरत हो तो दूसरा इंजेक्शन पुनः 48 घंटे बाद भी दिया जा सकता है। इसके अलावा ऑक्सीटेट्रासाइक्लिन का टीका भी 5-10 मि.ग्रा. प्रति किग्रा. वजन की दर से मांसपेशियों में लगाया जा सकता है ।

रोकथाम एवं नियंत्रण

- रोग के नियंत्रण हेतु पीड़ित पशुओं का पूर्ण इलाज करना चाहिए
- पशुओं में रोग की रोकथाम के लिए 'रक्षावैक-टी' नामक टीका भी उपलब्ध है। इस टीके का प्रयोग 2 महीने या उससे अधिक उम्र के पशुओं में किया जा सकता है। इस टीके की 3 मि.ली. मात्रा को त्वचा के नीचे लगाया जाता है तथा रोग की पूर्ण रोकथाम के लिए इसे प्रतिवर्ष लगाया जाना चाहिए।
- पशुओं की उन प्रजातियों के पालन द्वारा भी हम थिलेरियोसिस का नियंत्रण कर सकते हैं जिनमें थिलेरियोसिस बहुत कम होता है , जैसे गाय की साहिवाल प्रजाति।
- इनके अलावा चीचड़ों के नियंत्रण द्वारा भी रोग का नियंत्रण किया जा सकता है। चीचड़ों के नियंत्रण के लिए निम्नलिखित उपाय प्रयोग किये जा सकते हैं।
- पशुओं के शरीर का निरीक्षण करके, चीचड़ों को हाथ से निकालकर उन्हें मसल या जला देना चाहिए।
- रासायनिक पदार्थों जैसे 125% डेल्टामैथरिन स्प्रे या 10% साइपरमैथरिन स्प्रे के पूरे शरीर पर छिड़काव द्वारा चीचड़ों को नियंत्रित किया जा सकता है। इसके अलावा 1 मिली. प्रति लीटर की दर से साइपरमैथरिन को पानी में मिलाकर भी जानवर। के शरीर को धोया जा सकता है। आइवरमैक्टिन इंजेक्शन भी 02 मिग्रा प्रति किग्रा की दर से त्वचा के नीचे दिया जा सकता है ।
- घरेलू वनस्पतियों जैसे नीम के तेल या तुलसी के तेल को पशुओं के शरीर पर लगाने से भी चीचड़ों का नियंत्रण संभव है।

- हन्टरैलस हुकैराई नामक कीट के प्रयोग से भी चीचड़ों को नियंत्रित किया जा सकता है, ये कीट चीचड़ों की निम्फ अवस्था पर अंडे देते हैं तथा इन कीटों के लावा, चीचड़ों की निम्फ अवस्था को खा जाते हैं।
- मिथोप्रिन के प्रयोग द्वारा भी चीचड़ों को नियंत्रित किया सकता है
- पशुओं को नियमित रूप से कीटनाशक से धोना चाहिए ।
- पशुओं के आवास स्थल को भी कीटनाशक तथा चूने से धोना चाहिए।
- आवास स्थल में चूने की पुताई करनी चाहिए तथा सभी दरारों को चूने से भरते रहना चाहिए। इन दरारों में चीचड़ों की विभिन्न अवस्थाएं पाई जाती है तथा दरारे चूने या कीटनाशक से भरने पर चीचड़ों नियंत्रित रहते हैं ।
- घास के मैदान की भी नियमित रूप से जुताई करनी चाहिए।
- पशु के आवास स्थल के चारों ओर गढ्ढा खोदकर उसमें कीटनाशक भरने से चीचड़ों को आवास स्थल में आने से प्रतिबंधित किया जा सकता है।

इस प्रकार दुधारू पशुओं में थिलेरियोसिस के लक्षणों की जानकारी द्वारा पशुपालक रोग के शुरूआती अवस्था में रोग की उपस्थिति का अनुमान लगा सकते हैं तथा उचित समय पर पशु चिकित्सक से रोग की जांच एवं उपचार तथा रोग के नियंत्रण के विभिन्न उपायों के प्रयोग द्वारा इस रोग से होने वाली हानियों से अपने पशुओं को सुरक्षित रख सकते हैं।

जैन बीज भण्डार
एवं पशु आहार
मैन बाजार, चीनोर रोड,
छीमक जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
प्रो. मुकेश जैन, मोबाइल: 9977638510
04/2023-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
महाराष्ट्र

कृषि में मल्चिंग तकनीक साबित हो रही है फायदेमंद

डॉ. मयूर अडावडकर (सहायक प्राध्यापक)
सिंचन और निचरा अभियांत्रिकी विभाग, कृषि अभियांत्रिकी एवं तंत्रज्ञान महाविद्यालय, कृषि विज्ञान संकुल, काष्टी, मालेगाव- 423105 (महाराष्ट्र)

डॉ. विनायक पराडकर (सहायक प्राध्यापक)
जल और मृदा संधारण अभियांत्रिकी विभाग, कृषि अभियांत्रिकी एवं तंत्रज्ञान महाविद्यालय, कृषि विज्ञान संकुल, काष्टी, मालेगाव- 423105 (महाराष्ट्र)

पानी फसलों की वृद्धि के लिए एक प्रमुख घटक है। महाराष्ट्र में वर्षा का असमान वितरण और अनियमितता के कारण कुछ क्षेत्रों में पानी की कमी की समस्या उत्पन्न होती है। पानी की कमी से फसल उत्पादन में भारी कमी होती है, जबकि अधिक पानी से पानी की बर्बादी होती है। इसलिए, हमारे पास पानी की कमी हो या अधिक, हमें मल्चिंग तकनीक का उपयोग करना चाहिए। मल्चिंग का मतलब है मिट्टी की सतह पर जैविक या अजैविक पदार्थों की परत लगाना। मल्चिंग से मिट्टी में नमी बनी रहती है, खरपतवार नियंत्रण होता है और मिट्टी का तापमान नियंत्रित रहता है।

मल्चिंग के फायदे

- **नमी नियंत्रण:** मिट्टी पर आवरण होने से मिट्टी के पानी के वाष्पीकरण की गति कम हो जाती है, जिससे मिट्टी में नमी बनी रहती है और पानी की बचत होती है।
- **पानी प्रबंधन:** जहां पानी की उपलब्धता कम हो, वहाँ मल्चिंग के माध्यम से कम पानी में फसल ली जा सकती है।
- **खरपतवार नियंत्रण:** मल्चिंग से खरपतवारों को आवश्यक सूर्यप्रकाश नहीं मिलता, जिससे उनकी वृद्धि कम होती है।
- **तापमान नियंत्रण:** मल्चिंग से मिट्टी का तापमान नियंत्रित रहता है जिससे फसल की वृद्धि अच्छी होती है।
- **मिट्टी की गुणवत्ता:** जैविक मल्चिंग से मिट्टी को पोषण मिलता है और उसकी गुणवत्ता में सुधार होता है।
- **मिट्टी का संरक्षण:** मल्चिंग मिट्टी का संरक्षण करता है जिससे मिट्टी का कटाव कम होता है। इससे मिट्टी में पोषक तत्व बने रहते हैं और फसल का पोषण बेहतर होता है। पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ने से फसल की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।
- **रोग और कीट नियंत्रण:** मल्च फसल के आसपास एक भौतिक अवरोध बनाता है, जिससे कुछ प्रकार के कीटों का फसल तक पहुंचना मुश्किल होता है, और परिणाम स्वरूप मल्चिंग से रोग और कीट नियंत्रण होता है।
- **फसल की गुणवत्ता और उत्पादन बढ़ाना:** मल्चिंग से खरपतवार नियंत्रण, तापमान नियंत्रण, रोग और कीट नियंत्रण, और फसल को आवश्यक पानी मिलने के कारण फसल की गुणवत्ता और उत्पादन में वृद्धि होती है।

आकृती 1. मल्चिंग के फायदे

मल्चिंग के प्रकार

1.जैविक मल्चिंग:

इसमें प्राकृतिक रूप से मिलने वाले जैविक पदार्थों का उपयोग किया जाता है, जैसे कि:

- **पुआल:** धान्य का पुआल (जैसे चावल, गेहूं) मिट्टी पर डालकर मल्चिंग किया जा सकता है। यह फसल की वृद्धि और खरपतवार नियंत्रण में मदद करता है।
- **घास:** सूखी घास या पत्ते मिट्टी पर डालकर मल्चिंग किया जा सकता है। यह फसल को संरक्षण देता है और मिट्टी की नमी बनाए रखता है।
- **गिरते हुए पत्ते:** पेड़ों से गिरने वाले पत्तों का उपयोग करके मल्चिंग किया जा सकता है। यह प्रकृति में सरल और उपयोगी मल्चिंग सामग्री है।
- **खाद:** कम्पोस्ट खाद या सड़ी हुई खाद मिट्टी पर डालकर मल्चिंग किया जा सकता है। यह मिट्टी को पोषण देने के साथ-साथ खरपतवार नियंत्रण में मदद करता है।
- **लकड़ी की चूरा:** लकड़ी का सड़ा हुआ चूरा मिट्टी पर डालकर मल्चिंग किया जा सकता है। यह खरपतवार नियंत्रण में मदद करता है और मिट्टी की गुणवत्ता को सुधारता है।

अजैविक मल्चिंग

इसमें रासायनिक या मानव निर्मित पदार्थों का उपयोग किया जाता है, जैसे कि:

- **प्लास्टिक मल्चिंग:** काला, चांदी या सफेद प्लास्टिक का उपयोग करके मल्चिंग किया जा सकता है। यह खरपतवार नियंत्रण में प्रभावी है और फसल की वृद्धि को सुधारता है।
- **कागज:** मोटे कागज की परत मिट्टी पर डालकर मल्चिंग किया जा सकता है। यह खरपतवार नियंत्रण में मदद करता है।
- **रेशम:** नायलॉन या अन्य रेशम का उपयोग करके मल्चिंग किया जा सकता है। यह फसल को सहारा देने के साथ-साथ खरपतवार नियंत्रण में मदद करता है।
- **कंकड़:** छोटे-छोटे पत्थर या कंकड़ की परत मिट्टी पर डालकर मल्चिंग किया जा सकता है। यह मिट्टी की नमी बनाए रखता है और खरपतवार नियंत्रण में मदद करता है।

3.विशेष मल्चिंग

इस प्रकार में कुछ विशेष पदार्थों का उपयोग किया जाता है, जो विशेष परिस्थितियों में उपयोगी होते हैं, जैसे कि:

- **बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक:** इस प्लास्टिक का उपयोग जैविक मल्चिंग की तरह ही किया जाता है, लेकिन यह प्लास्टिक बाद में सड़कर मिट्टी में मिल जाता है।
- **रबर मल्चिंग:** पुराने टायर के रबर का उपयोग करके मल्चिंग किया जा सकता है। यह दीर्घकालिक टिकाऊ होता है और खरपतवार नियंत्रण में मदद करता है।

मल्चिंग कैसे करें?

- **मिट्टी की तैयारी:** मल्चिंग करने से पहले मिट्टी की जुताई और खेत को साफ करें। इसके बाद बेड तैयार करें।
- **मल्चिंग सामग्री का चयन:** आपको जो उचित लगे, उस मल्चिंग सामग्री का चयन करें (जैविक या अजैविक)।
- **मल्चिंग सामग्री डालना:** चुनी गई सामग्री की पतली या मोटी परत को फसल की जड़ों के आसपास या पूरे बेड पर डालें।
- **पानी देना:** मल्चिंग के बाद पानी दें, ताकि मिट्टी की नमी बनी रहे।

मल्चिंग के लिए सावधानियां

- प्लास्टिक मल्चिंग करते समय, प्लास्टिक का पुनः उपयोग सही तरीके से करें।
- जैविक मल्चिंग करते समय, सड़ने वाली सामग्री का उपयोग करें ताकि मिट्टी को पोषक तत्व मिल सकें।
- मल्चिंग खेती में एक अत्यंत उपयोगी विधि है, जिससे फसल की वृद्धि सुधरती है और खेती की उत्पादकता बढ़ती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
महाराष्ट्र

नैनो यूरिया-भविष्य का दर्शन

शैलेश मारुति आचार्य पीएचडी स्कॉलर और श्री बापूसाहेब भाकरे, पूर्व डीन, महात्मा फुले कृषि विश्वविद्यालय, राहुरी (महाराष्ट्र)

गोशवारा: दानेदार यूरिया न केवल उत्पादक के लिए महंगा है, बल्कि मनुष्यों और पर्यावरण के लिए भी हानिकारक हो सकता है। इसके अलावा, नैनो यूरिया का उपयोग अजैविक तनाव सहिष्णुता को बढ़ाने के लिए भी किया जा सकता है। नैनो-यूरिया पर्यावरण प्रदूषण को रोकता है और सूखे की स्थिति में उगाए गए गेहूं की भौतिक विशेषताओं में सुधार करता है। नैनो यूरिया का सतह क्षेत्र अधिक होता है क्योंकि नैनो कण का आकार छोटा होता है और इसकी प्रतिक्रियाशीलता, पानी घुलनशीलता अधिक होती है। नैनो यूरिया एक महत्वपूर्ण कृषि उपकरण है और फसल दक्षता, उत्पादन और गुणवत्ता मानदंडों में सुधार करता है, पोषक तत्वों के उपयोग की दक्षता में वृद्धि करता है, उर्वरक अपव्यय और रोपण लागत को कम करता है। नैनो-यूरिया सटीक कृषि में सटीक पोषक तत्व प्रबंधन के लिए बहुत प्रभावी है और फसलों के विकास के चरण के अनुकूल होकर फसल की वृद्धि अवधि के दौरान पोषक तत्व प्रदान कर सकता है। नैनो-यूरिया फसल की वृद्धि को इष्टतम सांद्रता तक बढ़ाता है, एकाग्रता में और वृद्धि पोषक तत्वों की विषाक्तता के कारण फसल की वृद्धि में बाधा डाल सकती है। नैनो-यूरिया पौधे में विभिन्न चयापचय प्रतिक्रियाओं के लिए अधिक सतह क्षेत्र प्रदान करता है जो प्रकाश संश्लेषण की दर को बढ़ाता है और अधिक शुष्क पदार्थ और फसल पैदा करता है। यह पौधों को विभिन्न जैविक और अजैविक तनावों से भी बचाता है।

परिचय: नैनो आकार के उर्वरक टिकाऊ कृषि की दिशा में नैनो प्रौद्योगिकी की नई सीमा हैं। नैनो-यूरिया उत्पादन विधि मिट्टी से एग्रोकेमिकल उत्सर्जन को काफी कम करते हुए बेहतर फसल उत्पादन के लिए नैनो-स्केल सामग्री विकसित करने का एक आसान तरीका प्रदान करती है। नैनो यूरिया (तरल) में उच्च सतह क्षेत्र (1 मिमी यूरिया प्रिल के 10,000 गुना) और कई कणों (1 मिमी यूरिया प्रिल की तुलना में 55,000 नाइट्रोजन कण) के साथ नैनो-स्केल नाइट्रोजन कण होते हैं। ... इसके अलावा, नैनो यूरिया (तरल) के उपयोग से उत्पादन, बायोमास, मिट्टी के स्वास्थ्य और पोषण की गुणवत्ता में सुधार होता है।

नैनो यूरिया के फायदे: नैनो यूरिया (तरल) के कई लाभ हैं-1. पारंपरिक यूरिया की आवश्यकता को 50% या उससे अधिक तक कम कर देता है 2. कम आवश्यकता और उच्च उत्पादन-नैनो यूरिया की एक बोतल (500 मिलीलीटर) की दक्षता यूरिया के एक बैग की दक्षता के बराबर है। 3. पर्यावरण के अनुकूल उत्पादन, मिट्टी, वायु और पानी की गुणवत्ता में सुधार, इस प्रकार ग्लोबल वार्मिंग चिंताओं को दूर करने और संयुक्त राष्ट्र सतत विकास समूहों (NSDG) को पूरा करने में मदद करना। 4. पारंपरिक यूरिया की तुलना में सस्ता। 5. किसानों की उत्पादन लागत घटती है, किसानों की आय बढ़ती है। 6. फसल उत्पादकता और उपज की पोषण गुणवत्ता में सुधार करता है।

जब पत्तियों पर छिड़काव किया जाता है, तो नैनो यूरिया रंध्र और अन्य छिद्रों के माध्यम से आसानी से प्रवेश करता है और पौधों की कोशिकाओं द्वारा अवशोषित होता है। यह पौधे में फ्लोएम के माध्यम से अपनी आवश्यकताओं के अनुसार पौधे के अंदर आसानी से वितरित हो जाता है। अप्रयुक्त नाइट्रोजन को पौधे की रिक्तिका में संग्रहीत किया जाता है और पौधे की उचित वृद्धि और विकास के लिए धीरे-धीरे जारी किया जाता है। नैनो यूरिया (तरल) में कोई सरकारी सब्सिडी शामिल नहीं है और इसे सब्सिडी वाले यूरिया के एक बैग से 10त्न कम पर किसानों को उपलब्ध कराया जाएगा। परिवहन आसान और किफायती होगा, क्योंकि 500 मिलीलीटर की बोतल नियमित यूरिया उर्वरक के एक बैग के बराबर होगी। नैनो यूरिया के अतिसंतृप्त गुणों के कारण, पत्तियों पर छिड़काव करने पर यह पौधे में अवशोषित हो जाता है। प्रवेश करने पर, ये नैनो कण पौधे के क्षेत्र में पहुंचते हैं जहां नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है और नियंत्रित तरीके से पोषक तत्वों को छोड़ते हैं। 7. नॅनो युरिया पारंपरिक युरियाची जागा घेण्यासाठी विकसित करण्यात आला असून त्यामुळे त्याची गरज किमान 50 टक्क्यांनी कमी होऊ शकते. त्यात 500 मिलीमध्ये नायट्रोजनचे 40,000 भाग प्रति दशलक्ष (पीपीएम) असतात बाटली, जी पारंपारिक युरियाच्या एका पिशवीद्वारे प्रदान केलेल्या नायट्रोजन पोषक घटकांच्या प्रभावाच्या समतुल्य आहे म्हणजे 50 किलो. 8. राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली (एनएआरएस) के तहत 43 फसलों, 20 आईसीएआर अनुसंधान संस्थानों, राज्य कृषि विश्वविद्यालयों और कृषि विज्ञान केंद्रों पर फील्ड ट्रायल करने के बाद नैनो यूरिया को सरकार के उर्वरक नियंत्रण आदेश में शामिल किया गया है. 9. नए नैनो यूरिया (तरल) से बेहतर पोषण गुणवत्ता के साथ फसल उत्पादन में वृद्धि होगी। नया उत्पाद, जो पारंपरिक यूरिया की तुलना में सस्ता है, से जलवायु परिवर्तन की समस्या के साथ-साथ मिट्टी, जल और वायु प्रदूषण के अत्यधिक उपयोग को कम करने और दानेदार प्रकृति के कारण होने वाले पर्यावरण प्रदूषण को कम करने की उम्मीद है। 10. एक नैनो यूरिया तरल कण आकार में 30 नैनो मीटर है और इसकी सतह का क्षेत्र पारंपरिक दानेदार यूरिया की तुलना में मात्रा के आकार से लगभग 10,000 गुना बड़ा है। अपने बहुत छोटे आकार और सतह के गुणों के कारण, तरल पौधों की पत्तियों पर छिड़काव करने पर नैनो यूरिया अधिक प्रभावी ढंग से अवशोषित होता है। नैनो यूरिया तरल लागत प्रभावी होने के अलावा पौधों के पोषण के लिए स्थायी समाधान प्रदान करने का वादा करता है क्योंकि यह वर्तमान संस्करण की तुलना में कम उपयोग के बावजूद मिट्टी, जल और वायु प्रदूषण को कम करते हुए फसलों के लिए उच्च पोषक दक्षता प्रदान करता है।

अनुप्रयोगों: 2 से 4 मिलीलीटर नैनो यूरिया को एक लीटर पानी में मिलाकर सक्रिय वृद्धि अवस्था में फसलों की पत्तियों का छिड़काव करें। पहला छिड़काव सक्रिय जुताई/शाखा चरण (अंकुरण के 30-35 दिन बाद या रोपण के 20-25 दिन बाद) में किया जाना चाहिए। दूसरा छिड़काव पहले छिड़काव के 20-25 दिन बाद या फसल में फूल आने से पहले किया जाना चाहिए। नोट - बेसल चरण पर डीएपी या जटिल उर्वरक द्वारा लागू नाइट्रोजन में कटौती न करें। केवल 2-3 विभाजन में लागू शीर्ष-कपड़े वाले यूरिया को कम करें; नैनो यूरिया के स्प्रे की संख्या फसल और नाइट्रोजन की आवश्यकता के अनुसार बढ़ाई जा सकती है।

उपयोग करने हेतु सुझाव: 1. उपयोग करने से पहले बोतल को ठीक से हिलाएं। 2. पत्तियों को स्प्रे करने हेतु एक फ्लैट पंखे या कटे हुए नोज़ल का उपयोग करें। 3. सुबह या शाम के समय ओस और स्प्रे से बचें। 4. यदि नैनो यूरिया का छिड़काव करने के 12 घंटे के भीतर बारिश हो जाती है, तो फिर से छिड़काव करने की सलाह दी जाती है। 5. नैनो यूरिया को आसानी से जैव-उत्तेजक, 100% पानी में घुलनशील उर्वरकों और कृषि रसायनों के साथ मिलाया जा सकता है। स्थिरता हेतु मिश्रण और छिड़काव से पहले जार परीक्षण करना हमेशा उचित होता है। 6. नैनो यूरिया का उपयोग बेहतर परिणामों हेतु उत्पादन की तारीख से 2 साल के भीतर किया जाना चाहिए।

सुरक्षा और सावधानियां: 1. जैव सुरक्षा और विषाक्तता के लिए विभाग के दिशानिर्देशों के अनुसार नैनो-यूरिया का परीक्षण किया गया है

जैव प्रौद्योगिकी (डीबीटी), भारत सरकार और ओईसीडी अंतर्राष्ट्रीय दिशानिर्देश।

2. नैनो यूरिया उपयोगकर्ता के लिए सुरक्षित है; पौधों और जानवरों के लिए सुरक्षित और विषाक्त नहीं, हालांकि, फसलों को छिड़कते समय फेस मास्क और दस्ताने का उपयोग करने की सिफारिश की जाती है। 3. उच्च तापमान से बचें और उन्हें सूखी जगहों पर रखें और बच्चों और पालतू जानवरों की पहुंच से दूर रहें।

समाप्ति: भारत में, इफको ने पारंपरिक यूरिया के असंतुलित और अति प्रयोग को दूर करने के लिए नैनो तकनीक पर आधारित नैनो यूरिया (तरल) उर्वरक विकसित किया। पर्यावरण प्रदूषण और दुनिया की बढ़ती आबादी की भुखमरी की समस्या के अनुसार, ऐसा प्रतीत होता है कि नैनो-यूरिया का उपयोग न केवल पर्यावरण प्रदूषण, यूट्रोफिकेशन, भूजल के प्रदूषण और पारंपरिक यूरिया प्रिल/दानेदारों के अति प्रयोग से होने वाली बीमारियों को कम कर सकता है, बल्कि छोटे कणों के व्यास, पौधों की जड़ों और पत्तियों में अधिक प्रवेश के कारण फसलों के भौतिक गुणों और उपज में भी सुधार कर सकता है। इसलिए, नैनो-यूरिया के बजाय पारंपरिक उर्वरकों का उपयोग करने की सिफारिश की जाती है, विशेष रूप से रेत मिट्टी में, क्योंकि पारंपरिक यूरिया उर्वरक और भूजल प्रदूषण की अधिक निकासी की संभावना है। जैविक और अजैविक बाधाएं कृषि उत्पादकता को सीमित करती हैं और मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं और कृषि में फसल उत्पादन में सुधार के लिए विशेष नैनो-उर्वरकों के उपयोग को प्रभावित करती हैं।

कुंज एजेंसीज

अपने भाई चप्पा सेठ की दुकान
हमारे यहां सभी प्रकार के खाद बीज एवं कीटनाशक दवाईयां उचित रेट पर मिलती है
प्रो. कार्तिक गुप्ता 9589545404
प्रो. हार्दिक गुप्ता 9644689094
भितरवार रोड, डबरा, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
10/2023-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
हिमाचल प्रदेश

स्वस्थ सब्जी पौध तैयार करने की तकनीकें

अंजली कुमारी एम.एस.सी) डॉ. वाइएस परमार उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय नौनी, सोलन (हि. प्र.)

बलबीर सिंह डोगरा (प्रधान वैज्ञानिक) डॉ. वाइएस परमार उद्यानिकी एवं वानिकी वि.वि. नौनी, सोलन (हि. प्र.)

अनुज सोही (पी.एच.डी.) डॉ. वाईएस परमार उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय नौनी, सोलन (हि.प्र.)

शिवाली धीमान (पी.एच.डी. स्कॉलर) डॉ. वाइएस परमार उद्यानिकी एवं वानिकी वि.वि. नौनी, सोलन (हि. प्र.)

सब्जी उत्पादन कृषि का एक महत्वपूर्ण भाग है, और इसके लिए स्वस्थ पौध तैयार करना एक महत्वपूर्ण कदम है। स्वस्थ पौध से न केवल उपज में वृद्धि होती है, बल्कि रोगों और कीटों के हमले से भी फसल को बचाया जा सकता है। पौध तैयार करने की तकनीकें यदि सही तरीके से अपनाई जाएं, तो इससे सब्जी उत्पादन में गुणवत्ता और मात्रा दोनों में सुधार होता है। इस लेख में हम स्वस्थ सब्जी पौध तैयार करने की विभिन्न तकनीकों पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

बीज का चयन

स्वस्थ पौध तैयार करने की पहली और महत्वपूर्ण कड़ी है उच्च गुणवत्ता वाले बीज का चयन। बीजों का चयन करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए:

प्रमाणित बीज: केवल प्रमाणित स्रोतों से बीज खरीदें, जो बीजों की उच्च गुणवत्ता और शुद्धता की गारंटी देते हैं।

बीज का आकार और रंग: बीजों का आकार समान होना चाहिए और उनमें कोई दोष या रंग में अंतर नहीं होना चाहिए।

बीज का अंकुरण प्रतिशत: उच्च अंकुरण क्षमता वाले बीजों का चयन करें। आमतौर पर 85-90त्न अंकुरण दर वाले बीज अच्छे माने जाते हैं।

बीज उपचार

बीजों को बोने से पहले उनका उपचार आवश्यक है ताकि वे बीमारियों से मुक्त रहें और उनका अंकुरण बेहतर हो। बीज उपचार के निम्नलिखित तरीके हैं:

रासायनिक उपचार: बीजों को फफूंदनाशकों जैसे कैप्टान या थीरम से उपचारित किया जा सकता है। इसके लिए बीजों को 2-3 ग्राम दवा प्रति किलोग्राम बीज की दर से मिलाया जाता है।

जैविक उपचार: ट्राइकोडर्मा, प्सूडोमोनास जैसे जैविक एजेंटों से बीज उपचार किया जा सकता है। ये एजेंट बीजों को रोगजनकों से बचाते हैं।

गर्म पानी से उपचार: कुछ बीमारियों को नियंत्रित करने के लिए बीजों को 50-55 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 15-20 मिनट के लिए गर्म पानी में डुबोया जा सकता है।

नर्सरी प्रबंधन

नर्सरी में पौध तैयार करना एक महत्वपूर्ण चरण है। नर्सरी की तैयारी में निम्नलिखित बिंदुओं का ध्यान रखना चाहिए:

भूमि की तैयारी: नर्सरी के लिए चयनित भूमि को अच्छी तरह से जोतें और उसका समतलीकरण करें। इसके बाद खेत को जैविक खाद या कम्पोस्ट से समृद्ध करें।

बीज बोना: बीजों को कतारों में बोएं ताकि उनकी देखभाल और प्रबंधन में आसानी हो। बीज बोने की गहराई सामान्यतः 1-2 सेंटीमीटर होती है।

सिंचाई: नर्सरी में जल निकासी की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए। अंकुरण के दौरान हल्की सिंचाई करें और जरूरत पड़ने पर नियमित सिंचाई करते रहें।

खाद प्रबंधन: पौधों को स्वस्थ बनाए रखने हेतु संतुलित खाद का प्रयोग करें। विशेषकर नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश जैसे पोषक तत्वों की पूर्ति करें।

रोग और कीट प्रबंधन

नर्सरी में रोग और कीटों का प्रकोप आमतौर पर पौधों की प्रारंभिक अवस्था में होता है। इससे बचने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाए जा सकते हैं:

नियंत्रण के उपाय: रोग और कीटों की पहचान होते ही उन्हें नियंत्रित करने के उपाय तुरंत अपनाएं। जैविक या रासायनिक नियंत्रण विधियों का उपयोग करें।

निवारक उपाय: रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन करें और नर्सरी में साफ-सफाई का विशेष ध्यान रखें।

फसल चक्रीकरण: नर्सरी में फसल चक्रीकरण अपनाएं ताकि मिट्टी से जुड़ी बीमारियों का प्रकोप कम हो।

पौधों का प्रतिरोपण

जब पौधे 4-6 पत्तियां विकसित कर लेते हैं और उनके तने मजबूत हो जाते हैं, तो उन्हें मुख्य खेत में प्रतिरोपित किया जा सकता है। प्रतिरोपण के दौरान निम्नलिखित बिंदुओं का ध्यान रखें:

मिट्टी की नमी: प्रतिरोपण के समय खेत की मिट्टी में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।

पौधों का चयन: केवल स्वस्थ और रोगमुक्त पौधों का चयन करें। कमजोर या रोगग्रस्त पौधों को हटा दें।

सिंचाई: प्रतिरोपण के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करें ताकि पौधों को नई जगह पर आसानी से स्थापित होने में मदद मिले।

जलवायु और वातावरण का ध्यान

जलवायु और वातावरण का पौधों की वृद्धि पर गहरा प्रभाव पड़ता है। पौधों की वृद्धि के लिए अनुकूल तापमान, नमी और प्रकाश की आवश्यकता होती है। इसलिए, पौधों को ऐसे स्थान पर रखें जहां उन्हें पर्याप्त धूप मिल सके और अत्यधिक ठंड या गर्मी से बचाया जा सके।

पौध पोषण प्रबंधन

स्वस्थ पौधों के विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति करना आवश्यक है। जैविक खादों के साथ-साथ माइक्रोन्यूट्रिएंट्स का भी ध्यान रखें। मिट्टी की जाँच के आधार पर खाद का प्रयोग करें और पौधों की आवश्यकता अनुसार समय-समय पर पूरक पोषण दें।

निष्कर्ष

स्वस्थ सब्जी पौध तैयार करने के लिए सही तकनीकों और विधियों का पालन करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। बीज का चयन, नर्सरी प्रबंधन, रोग नियंत्रण, और पौधों का प्रतिरोपण जैसे कदमों को सही ढंग से अपनाकर ही उच्च गुणवत्ता और मात्रा में सब्जी उत्पादन संभव है। इससे न केवल किसानों की आय में वृद्धि होती है, बल्कि समाज को भी पोषक और स्वस्थ सब्जियाँ प्राप्त होती हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
हिमाचल प्रदेश

टमाटर उत्पादन की मुख्य सिफारिशें

अंजली कुमारी एम.एस.सी) डॉ. वाइएस परमार उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय नौनी, सोलन (हि. प्र.)

बलबीर सिंह डोगरा (प्रधान वैज्ञानिक) डॉ. वाइएस परमार उद्यानिकी एवं वानिकी वि.वि. नौनी, सोलन (हि. प्र.)

शिवाली धीमान (पी.एच.डी. स्कॉलर) डॉ. वाइएस परमार उद्यानिकी एवं वानिकी वि.वि. नौनी, सोलन (हि. प्र.)

अनुज सोही (पी.एच.डी.) डॉ. वाईएस परमार उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय नौनी, सोलन (हि.प्र.)

टमाटर, जिसे वैज्ञानिक नाम सोलानेम लाइकोपर्सिकम के नाम से भी जाना जाता है, भारत में सबसे लोकप्रिय और व्यापक रूप से उगाई जाने वाली सब्जियों में से एक है। टमाटर की खेती से बेहतर उत्पादन और गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए कुछ मुख्य सिफारिशों का पालन करना आवश्यक है। यहाँ टमाटर उत्पादन की मुख्य सिफारिशें दी गई हैं:

जलवायु और मिट्टी

जलवायु: टमाटर की खेती के लिए गर्म और आर्द्र जलवायु उपयुक्त होती है। 20-30°C तापमान टमाटर की बढ़वार और फसल के लिए आदर्श है। ठंड और पाला टमाटर की फसल के लिए हानिकारक हो सकता है।

मिट्टी: टमाटर के लिए अच्छी जल निकासी वाली दोमट या बलुई दोमट मिट्टी सबसे उपयुक्त है। मिट्टी का pH 6.0 से 7.5 के बीच होना चाहिए। अत्यधिक अम्लीय या क्षारीय मिट्टी टमाटर की खेती के लिए उपयुक्त नहीं होती।

प्रमुख किस्में

देशी किस्में: पन्त बहार, अर्का मेघाली, अर्का विकास, अर्का सौरभ, पूसा रूबी।

हाइब्रिड किस्में: पूसा हाइब्रिड-2, पूसा हाइब्रिड-4, अर्का मेघाली, अर्का अनुपमा, अर्का विकास।

बीज और नर्सरी प्रबंधन

- बीज की बुवाई से पहले उन्हें 24 घंटे तक पानी में भिगोकर रखना चाहिए। बीज की बुवाई 10-15 सेंटीमीटर ऊँचे उठाए हुए बेड पर करनी चाहिए।
- बुवाई के 4-6 सप्ताह बाद जब पौधों में 4-6 पत्तियां आ जाएं तब उन्हें मुख्य खेत में रोपा जाता है।

खेत की तैयारी

- खेत को 2-3 बार अच्छी तरह से जोतकर तैयार करें।
- प्रत्येक एकड़ में 15-20 टन गोबर की खाद मिलाएं।
- अंतिम जुताई के समय 60 किलो नाइट्रोजन, 40 किलो फॉस्फोरस और 40 किलो पोटाश प्रति एकड़ खेत में मिलाएं।

रोपाई और दूरी

- टमाटर की रोपाई कतारों में की जाती है, जिनके बीच की दूरी 60-75 सेंटीमीटर और पौधे से पौधे की दूरी 45-60 सेंटीमीटर होनी चाहिए।
- रोपाई के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करें।

सिंचाई प्रबंधन

- टमाटर के पौधों को नियमित रूप से सिंचाई की आवश्यकता होती है।
- फल बनने के दौरान पौधों को अधिक पानी की जरूरत होती है।
- ड्रिप सिंचाई पद्धति से पानी की बचत होती है और पौधों को आवश्यकतानुसार पानी प्राप्त होता है।

खाद और उर्वरक

- पौधों की बढ़वार के लिए नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश की संतुलित मात्रा आवश्यक है।
- 60 किलो नाइट्रोजन, 40 किलो फॉस्फोरस और 40 किलो पोटाश प्रति एकड़ की दर से बुवाई के समय डालें।
- रोपाई के 30-40 दिन बाद 30 किलो नाइट्रोजन प्रति एकड़ की दर से डालें।

फसल चक्र और अंतरफसल

- फसल चक्र अपनाकर मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखा जा सकता है और रोगों का प्रकोप कम किया जा सकता है। अंतरफसल के रूप में मटर, गोभी, या प्याज की खेती की जा सकती है, जिससे अतिरिक्त आय प्राप्त होती है और भूमि का अधिकतम उपयोग होता है।

रोग और कीट प्रबंधन

- **रोग:** पत्तियों का झुलसना, बैक्टीरियल ब्लाइट, तम्बाकू मोज़ेक वायरस आदि रोग टमाटर की फसल को प्रभावित कर सकते हैं। रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन और नियमित निगरानी से रोगों पर नियंत्रण पाया जा सकता है।
- **कीट:** फल छेदक, सफेद मक्खी, एफिड्स जैसे कीट टमाटर की फसल पर आक्रमण कर सकते हैं। जैविक और रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग कर इनकी रोकथाम की जा सकती है।

फसल कटाई

- टमाटर की कटाई तब की जाती है जब फल पूरी तरह से पके और लाल हो जाते हैं। कटाई के लिए सुबह या शाम का समय सबसे उपयुक्त होता है।
- ताजगी बनाए रखने के लिए कटाई के बाद फलों को ठंडे स्थान पर रखें।

पैदावार

- अच्छी फसल प्रबंधन तकनीकों को अपनाने से प्रति एकड़ 10-15 टन तक की उपज प्राप्त की जा सकती है।

बाजार और प्रसंस्करण

- कटाई के बाद टमाटर को जल्दी से बाजार में भेजना चाहिए।
- प्रसंस्करण के लिए टमाटर का उपयोग सॉस, केचप, और पेस्ट बनाने में किया जा सकता है, जिससे किसानों को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है।

टमाटर उत्पादन की यह तकनीक किसानों को बेहतर उत्पादन और अधिक मुनाफा दिलाने में मदद कर सकती है। आधुनिक कृषि पद्धतियों को अपनाकर, उच्च गुणवत्ता वाली किस्मों का चयन करके, और प्रभावी प्रबंधन तकनीकों का प्रयोग करके टमाटर की खेती को सफल बनाया जा सकता है। इन सिफारिशों का पालन करके टमाटर की खेती से बेहतर उत्पादन और गुणवत्ता प्राप्त की जा सकती है। यह किसानों के लिए आर्थिक रूप से लाभकारी फसल साबित हो सकती है।

|| समृद्ध किसान, समृद्ध भारत ||

मा. नरेन्द्र जी मोदी
प्रधानमंत्री

मा. शिवराज सिंह जी चौहान
किसान कल्याण एवं कृषि विकास मंत्री (भारत सरकार)

Organiser
Yuva Udaan Foundation

मा. एदल सिंह जी कंषाना
किसान कल्याण एवं कृषि विकास मंत्री

मा. डॉ. मोहन जी यादव
मुख्यमंत्री
म.प्र.शासन

Yuva Udaan Present
भारत AgriTech
Conference Exhibition Shopping

Central India's Leading Exhibition On
ADVANCED AGRI TECHNOLOGY,
HORTICULTURE, DAIRY &
ORGANIC PRODUCTS

6th EDITION

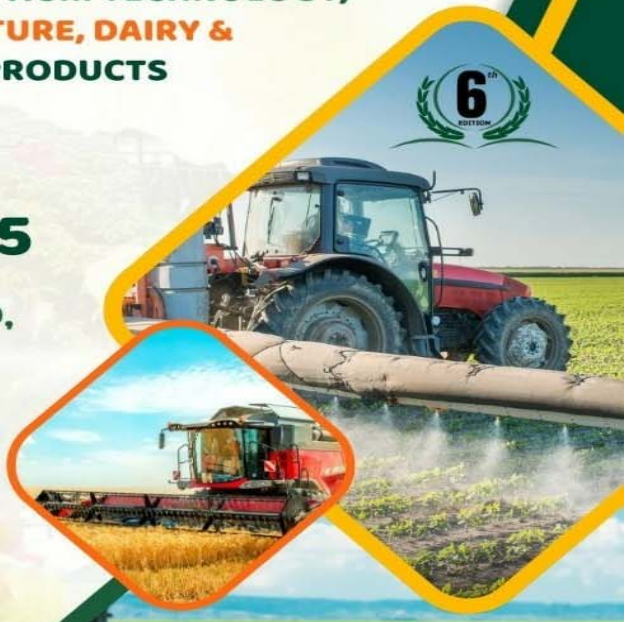

18-19-20 JANUARY 2025

COLLEGE OF AGRICULTURE GROUND,
INDORE

300+ EXHIBITORS | 5000+ DEALERS | 1,00,000+ PROGRESSIVE FARMERS
20 + WORKSHOP & CONFERENCE | 10 + Gov. Pavilion

In Association With
MINISTRY OF AGRICULTURE AND FARMERS WELFARE
NABARD

BOOK YOUR SPACE NOW
+91-9926111130 ; 9074674426
info@bharatagritech.org
www.bharatagritech.org

मध्य भारत में राष्ट्रीय कृषि व
उद्यानिकी तकनीकी प्रदर्शनी

आत्मनिर्भर कृषि
आत्मनिर्भर मध्यप्रदेश

विकसित भारत अभियान

9th INTERNATIONAL
AGRI & HORTI
TECHNOLOGY EXPO

20-21-22 DECEMBER 2024
CIAE Ground, Nabi Bagh, Berasia Road,
Bhopal, Madhya Pradesh

India's Leading Exhibition on
Agriculture, Horticulture, Floriculture, Organic Farming, Dairy & Food Technology

ORGANIZE BY: BME Bharti Media & Events Pvt. Ltd.

SUPPORTED BY:

MEDIA PARTNERS:

www.iahtexpo.com

www.bhartimedia.co.in

For Stall Booking: 011-47321635, 9212271729, 9873609092
E-mail: iahtbhopal@gmail.com

Announcing

India Farm-Tech
AN EXHIBITION ON
FARMING TECHNOLOGY

21-22-23-24
February 2025
Rajmata Vijayaraje Scindia Krishi
Vishwavidyalaya (RVSKVV) Campus,
Gwalior, Madhya Pradesh, India

International Exhibition & Conference on
Agriculture, Horticulture
& Dairy Technology

LARGEST AND
MOST SUCCESSFUL
International
Agriculture Exhibition of
Madhya Pradesh

BOOK YOUR STALL NOW

Our Milestones

Event Organized : 90
Exhibitors : 6500
Exhibition Organizing Expertise : 5+ Countries
Industry Cluster : 10

SCAN ME

For Stall Booking
+91 75677 02022
+91 75677 02023

Organizers: Radeecal Communications, Colossal Communications
Jointly Organized By: RVSKVV
Media Partner :

agri@farmtechindia.in / www.farmtechindia.in

Postal Regd. No.: Gwalior/40020242/2022-2024

R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946

मध्य भारत कृषक भारती

सितम्बर-2024

शिवा कृषि केन्द्र एण्ड ट्रेडर्स

श्री एन.के. वर्मा

मोबाइल : 9425525951, 9340972086

हमारे यहां उन्नत किस्म के खाद, बीज, कीटनाशक कृषि दवाईयां एवं स्पेयर्स पार्ट्स उपलब्ध हैं

हमारे यहां सभी प्रकार के इलेक्ट्रीकल्स, इलेक्ट्रॉनिक सामान उपलब्ध हैं

तिरंगा चौक, बालाजी जनरल के आगे, नरेन्द्र बैटरी के बगल में, जिला-गरियाबंद (छत्तीसगढ़)

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान संपादक राजू गुर्जर द्वारा सर्वोदय प्रिंटिंग प्रेस, महाडिक की गोठ, जनक हॉस्पिटल के पीछे कम्पू रोड, लश्कर-ग्वालियर से मुद्रित एवं ई.एम.-120, कुशवाह मार्केट के पास दीनदयाल नगर ग्वालियर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: राजू गुर्जर. मोबा. 9425101132, 94245-22090